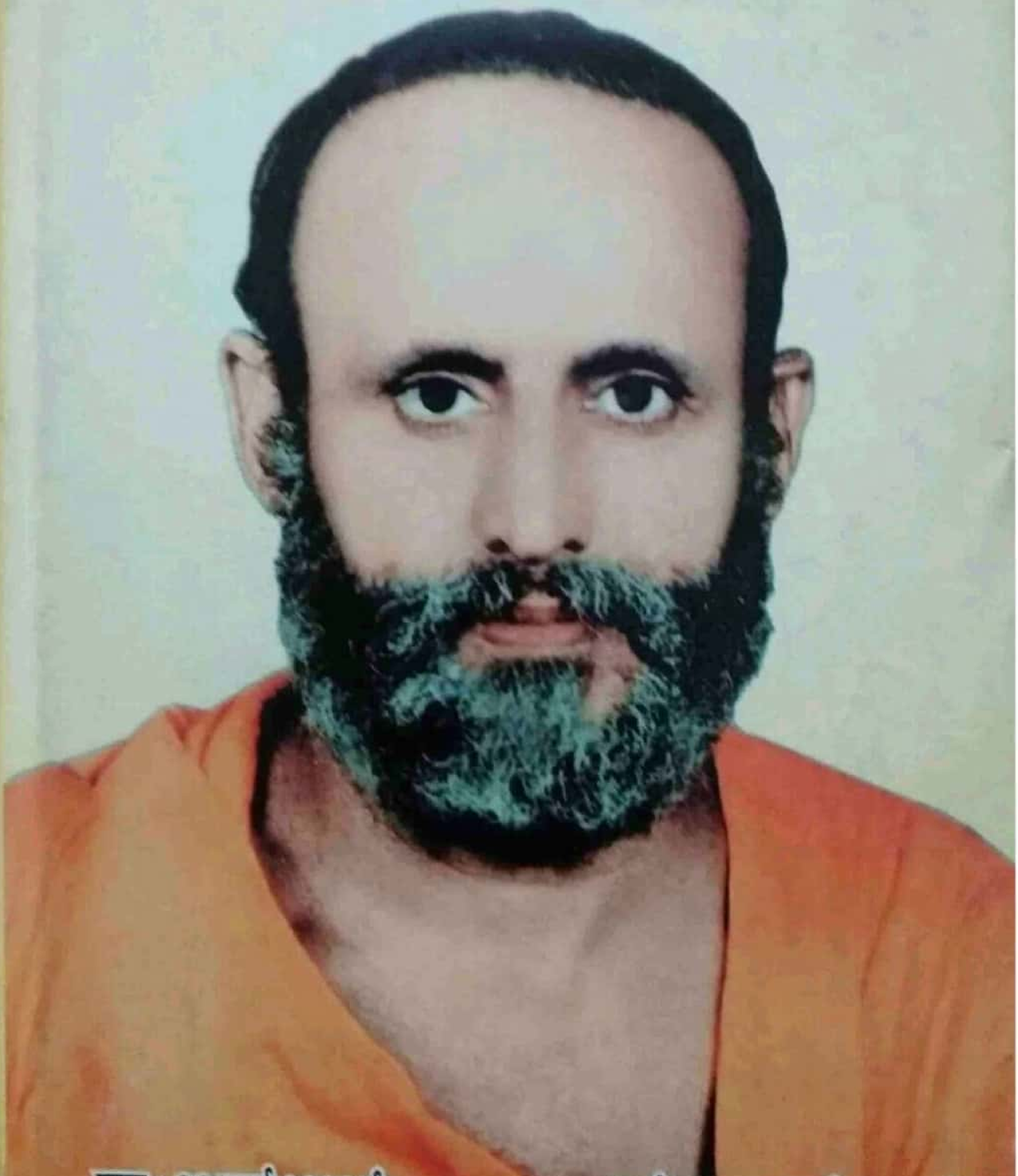
ओ३म्

स्वामी ओमानन्द जीवन-चरित



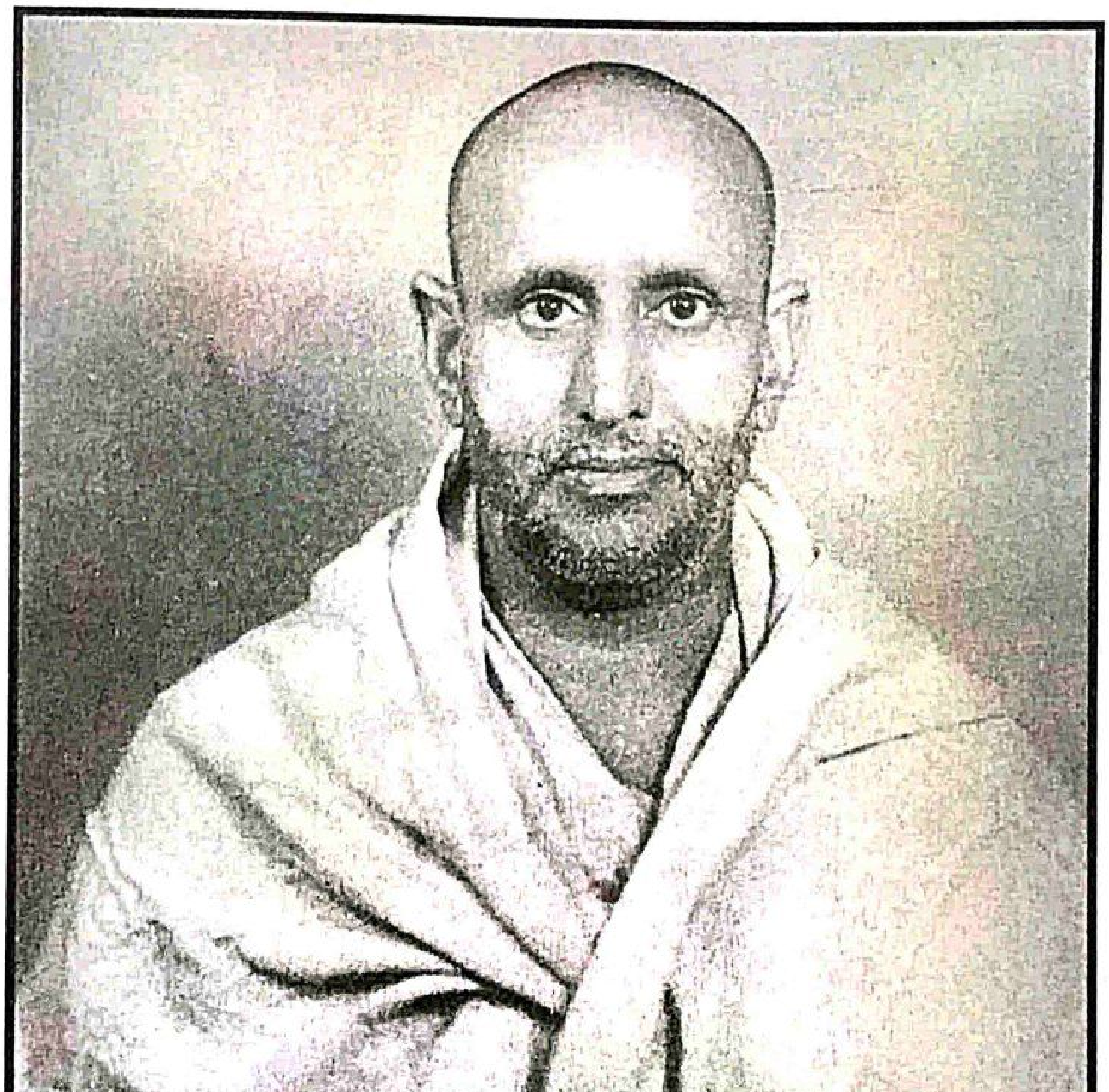
जन्म : २२ मार्च १९११ ई०

स्वर्गवास : २३ मार्च, २००३ ई

ओ३म्

स्वामी ओमानन्द सरस्वती जीवन-चरित

(जीवन-चरित, स्वलिखित संस्मरण, पत्र, अभिनन्दन-पत्र एवं चित्रावली)



(चैत्रबदी ८ संवत् १९६७ वि०)
जन्म : २२ मार्च १९११ ई०

(चैत्रबदी ६ संवत् २०५९ वि०)
देहान्त : २३ मार्च २००३ ई०

लेखक :

आचार्य वेदव्रत शास्त्री

● प्रकाशक :
हरयाणा साहित्य संस्थान
गुरुकुल झज्जर, झज्जर (हरयाणा)
दूरभाष : ०१२५१-२५२०४४

● प्रथम संस्करण : १०००

● २२ मार्च २०११ ई०

● चैत्र बदी अष्टमी २०६७ वि०

● मूल्य : ४०० रुपये

● मुद्रक :
वेदव्रत शास्त्री
आचार्य प्रिंटिंग प्रेस
दयानन्दमठ, गोहानामार्ग, रोहतक-१२४००१
दूरभाष : ९२५४०५३१११, ९७२९०५३१११

प्राक्कथन

स्वामी ओमानन्द सरस्वती का जीवनचरित लिखने का प्रयास उनके जीवनकाल में ही किया जाता तो अधिक विस्तृत और प्रामाणिक होता। सन् १९८३ में स्वामी जी के सार्वजनिक अभिनन्दन के शुभावसर पर एक विशाल अभिनन्दनग्रन्थ प्रकाशित किया गया था। उसमें स्वामी जी के समकालीन विद्वानों ने उनके जीवनसम्बन्धी घटनाओं का वर्णन अपने लेखों में किया था। उसी ग्रन्थ में डॉ० योगानन्द शास्त्री द्वारा लिखित स्वामी ओमानन्द जी का सन् १९८० तक का धारावाहिक संक्षिप्त जीवनचरित भी प्रकाशित हुआ था। मैंने उसी में कुछ संशोधन एवं परिवर्तन करते हुए कुछ अन्य जीवनसम्बन्धी घटनाओं का भी समावेश कर दिया है। डॉ० सुरेन्द्रकुमार और पुरातत्त्वविद् श्री विरजानन्द दैवकरणि द्वारा लिखित स्वामी जी के साथ कीगई यात्राओं का विवरण भी यथास्थान प्रकाशित किया गया है।

स्वामी ओमानन्द जी ने अपने जीवंनसम्बन्धी कुछ संस्मरण लिखवाये थे वे परिशिष्ट-१ में देदिये हैं। स्वामी जी द्वारा विभिन्न व्यक्तियों को समय-समय पर लिखे गए १५९ पत्र मुझे मिले हैं वे सब परिशिष्ट-२ में प्रकाशित किये हैं। इसी प्रकार हरयाणा सरकार, भारत सरकार और सार्वजनिकसंस्थाओं द्वारा स्वामी जी के स्वागत-सत्कार में विशेषसमारोहों में दिएगए अभिनन्दन-पत्र, मान-पत्र अथवा स्मृतिपत्र आदि मुझे प्राप्त हुए हैं वे परिशिष्ट-३ में मुद्रित किये हैं। परिशिष्ट-४ में स्वामी जी के देश-विदेश में लिए गए चित्र भी यथोपलब्ध इस जीवनचरित के साथ जोड़ दिए हैं। सन् १९८० से २००३ तक के अन्तिम जीवनकाल की विशेष घटनाओं का भी पृथक् अष्टम अध्याय लिख दिया है।

स्वामी ओमानन्द जी के संस्मरणों में दिए गए विवरण में उनके जीवनसम्बन्धी अनेक नई घटनाएं पाठकों को इसके पढ़ने से ज्ञात होंगी। इसी प्रकार स्वामी जी के द्वारा लिखे गये पत्रों से जहां अनेक ऐतिहासिक घटनाओं और स्थानों का ज्ञान होगा वहां पाठक स्वामी जी के मनोभावों को भी हृदयंगम कर पायेंगे। अभिनन्दन-पत्रों द्वारा सरकार और जनता का जो स्वामी जी के प्रति सम्मान वा प्रतिष्ठा थी उसकी अभिव्यक्ति होती है और यह भी ज्ञात होता है कि स्वामी जी किन तिथियों में किस प्रसंग में कहां-कहां गये थे।

किसी व्यक्ति वा स्थान के चित्र तो प्रत्यक्ष प्रमाण होते हैं। उनको देखकर चित्र के साथ सम्बद्ध सभी व्यक्ति और स्थानों का विवरण तुरन्त ज्ञात होजाता है।

स्वामी ओमानन्द जी प्रतिवर्ष अपने साथ एक वा अधिक डायरी रखते थे। उसमें प्रतिदिन के कार्यक्रम का लेख होता था। मुझे सब डायरियां तो नहीं मिलीं किन्तु जो भी मिलीं उनका सार लिखकर मैंने एक पृथक् अध्याय लिखने की तैयारी की थी, उससे यह ज्ञात होजाता कि स्वामी जी कब कहां और किस निमित्त गये और अपने कार्यक्रम में उन्होंने क्या किया वा कहा। किन्तु वह विवरण असावधानी से तिरोहित होगया। उसे पुनः तैयार करने का अब समय नहीं रहा।

इस जीवनचरित के लेखन, मुद्रण और प्रकाशन में जिनसे जैसा और जितना भी सहयोग मिला उन सबके प्रति मैं आभार प्रकट करता हूं और स्वामी जी के सम्बद्ध लेख, पत्र, अभिनन्दन-पत्र, चित्र आदि उपलब्ध करवाने और उनको यथास्थान समायोजित करने और उनके प्रूफ संशोधन में पुरातत्त्वविद् श्री विरजानन्द दैवकरणि से सर्वाधिक सहायता प्राप्त हुई है अतः उनको नामोल्लेखपूर्वक विशेष धन्यवाद देता हूं।

मुझ से जितना जैसा बन पड़ा, मैंने सीमित समय में स्वामी ओमानन्द सरस्वती के जीवनचरितसम्बन्धी सामग्री एकत्रित करदी है जो भविष्य में इस सम्बन्ध में लिखनेवाले सज्जनों के काम आयेगी। अभी स्वामी जी के जीवनचरित-सम्बन्धी पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। उसका प्रयोग जीवनचरित के द्वितीय संस्करण में करने का प्रयास किया जायेगा। स्वामी जी के बहुआयामी विशाल व्यक्तित्व से पाठक प्रेरणा लेकर समाज और राष्ट्र की सेवा करने के लिए प्रवृत्त होंगे ऐसी आशा करता हूं।

—वेदव्रत शास्त्री

विषय-सूची

ओं तत्सत्परमात्मने नमः

प्रथम अध्याय

हरयाणाप्रान्त का गौरव

हरयाणा अतिप्राचीनकाल से ही कर्म और अध्यात्म की भूमि रहा है। इन दोनों का समन्वय इस धरती की सबसे बड़ी विशेषता है। वैदिककाल और उसके उपरान्त सहस्राब्दियों तक यह ऋषि-मुनियों की तपःस्थली वैदिक ऋचाओं से गुंजायमान और अध्यात्म-सुधा से अनुप्राणित रही है। इसी कारण मनु ने इसको **'ब्रह्मर्षि देश'** की संज्ञा दी है। कालान्तर में यहां कर्म ने अपना प्रखररूप दिखाया। तब इसे **'कुरुक्षेत्र'** की गरिमा और **कुरुजांगल** का नाम मिला। मोहमाया के जाल में फंसे अर्जुन को गीता का उपदेश भी योगिराज श्रीकृष्ण ने इसी भूमि पर दिया। समय और आगे बढ़ा, तब इतिहास-प्रसिद्ध वीर यौधेयों ने इसको अपनी कर्मभूमि बनाया। तब इसको **'बहुधान्यक'** और **'यौधेय देश'** के नाम से जाना गया।

५वीं शती ई० पूर्व से ४थी शती ई० तक का यह वह समय था जब भारतीय इतिहास को बहुत कुछ मिला। विश्वविजय का मनोरथ लेकर पश्चिम से पूर्व की ओर बढ़ते हुए सिकन्दर के सपने भी इसी भूमि पर चकनाचूर हुये। कुषाणों का विस्तृत साम्राज्य भी इसी भूमि के वीर सपूत यौधेयों के पैरों तले रौंदा गया। महमूद गजनवी को भी यहीं लूटा गया। १८५७ के स्वातन्त्र्य-संग्राम की ज्वाला भी यहीं से भड़की और उसके बाद यहां के वीर रेवाड़ी के राव कृष्णगोपाल, बल्लभगढ़ नरेश नाहरसिंह और झज्जर के नवाब अब्दुल रहमान ने हंसते-हंसते मातृभूमि के लिये प्राणोत्सर्ग किया। इस धरती ने हजारों ऐसे वीर पैदा किये हैं, जिन्होंने प्राणों तक की परवाह न कर, राष्ट्र की बलिवेदी पर अपना सर्वस्व स्वाहा कर दिया। फांसी की जयमाला को गले का हार बनाया और संगीनों के प्रहारों को सीना तानकर सहा। पैशाचिक यातनायें जिनके साहस का उपहास न कर सकीं, बड़े से बड़े प्रलोभन जिनके मार्ग में कभी रोड़ा न बन सके; लोकैषणाएं जिनके संकल्प का विकल्प न बन सकीं, निराशा जिनको कभी छू न पाई, बड़े से बड़ा प्रलोभन जिनको विचलित न कर सका और बड़ी से बड़ी बाधा जिनकी राह न रोक सकी, जिनका जीना भी औरों के लिए था और मरना भी औरों के लिए और **'चरैवेति चरैवेति'** जिनका जीवन-मन्त्र बन गया। नरपुंगवों की इसी अविरल परम्परा में ही हमारे चरितनायक आचार्य भगवान्देव जी का स्थान है।

आचार्य भगवान्देव जी स्वयं में एक व्यक्ति होसकते हैं। परन्तु देश और समाज के लिए वे एक विशाल संस्था थे। उनमें वह सब कुछ था जो एक व्यक्ति को मानव से ऊपर उठाकर महापुरुष बना देता है और महापुरुष को कालान्तर में देवत्व प्रदान कराता है। किन्तु सबसे बड़ी बात तो यह है कि उन्हें स्वयं न कभी बड़प्पन भाया, न उन्होंने कभी बड़प्पन को ओढ़ने का प्रयास किया और न कभी इस पर सोचा ही होगा। कारण कि उनके पास इन सबके लिए समय कहां था। जीवन को निरन्तर कठोर साधना की भट्ठी में झोंके रखकर विविधकार्यों की पूर्ति हेतु अहर्निश जुटे रहकर सोद्देश्य-चिन्तन की लगाम कसे नाना उत्तरदायित्वों का बोझा जिस तन मन पर पड़ा हो उसमें इन सब बातों को सोचने के लिये स्थान फिर रह भी किस कोने में जाता है। हमारे चरितनायक के स्वभाव जीवन और कार्यों से जो भलीभांति परिचित हैं वे जानते हैं कि वे कितने महान् थे। उन्होंने जो कार्य किया है उसका मूल्यांकन कब होगा, यह तो आनेवाला समय ही बतलायेगा।

जाटखत्री गोत्रोत्पत्ति और नरेला का इतिहास

खत्री शब्द क्षत्री वा क्षत्रिय का अपभ्रंश है। इस गोत्र के लोग पंजाब लाहौर के क्षेत्र में पर्याप्त संख्या में हैं। स्वामी श्रद्धानन्द, महाशय कृष्ण आदि आर्यनेता इसी गोत्र में उत्पन्न हुए थे। बलिदानी वीर हकीकतराय भी खत्रीपुत्र ही था।

जाटखत्री गोत्र का उद्‌भव ईसा की ११वीं शताब्दी में हुआ। इस पर बांकनेर (दिल्ली) निवासी मा० मांगेराम आर्य एम.ए. ने एक खोजपूर्ण लेख अप्रैल १९७५ के **'सुधारक'** मासिक पत्र में छपवाया था वह इस प्रकार है—

"सन् १०५० ई० के लगभग एक भाग्यशाली एवं वीरपुरुष लाहौर से चलकर ग्राम बांकनेर की भूमि पर विश्राम के लिए रुका। उस समय यहां राजपुर नाम का गांव बसा हुआ था। यह पुराना गांव यौधेयकाल का मालूम पड़ता है। यहां के खेड़े से ११०० वर्ष पुराने सिक्के लेखक के पुत्र ऋषिप्रकाश को मिले, जो उसने परम श्रद्धेय स्वामी ओमानन्द जी की सेवा में अर्पित कर दिए। ये सिक्के गुरुकुल झज्जर के संग्रहालय में रखे हैं। पूज्य स्वामी जी का कहना है कि यह खेड़ा सम्भवत: यौधेयों का बहुत बड़ा नगर था। यदि यौधेयों का कोई सिक्का मिल जाए तो इसकी पुष्टि होजाएगी।

पाठकों को वीरपुरुष का नाम जानकर अत्यन्त प्रसन्नता होगी, उनका नाम था जसवन्तसिंह खत्री। पूज्य जसवन्तसिंह घोड़ों का व्यापार करने इधर से गुजर

रहे थे। जब वे विश्राम कर रहे थे तो एक भैंस खूंटा पड़ाकर उनके पास से भागी जारही थी। पीछे से एक लड़की की आवाज सुनाई दी, ''भैंस को घेरियो''। पूज्य जसवन्तसिंह जी ने झट उठकर भागती हुई भैंस के रस्से पर पैर रखा। भैंस रस्से के दबने से झटका खाकर गिर पड़ी। लड़की को भैंस सौंपदी। लड़की पूज्य जसवन्तसिंह जी की वीरता और बल से अत्यन्त प्रभावित हुई। लड़की ने घर जाकर अपने पिता महासिंह जी से इस युवक से विवाह करने की इच्छा व्यक्त की। सारा गांव इकट्ठा हुआ। लड़की के दृढ़संकल्प के सामने सारा गांव झुक गया और उस लड़की का विवाह पूज्य जसवन्तसिंह जी के साथ हर्षोल्लास के साथ सम्पन्न किया। उस निष्ठावान्, दृढ़संकल्पवाली लड़की का नाम था ''पूज्या अनकौर''।

नवदम्पति अपने घोड़ों के साथ अजमेर की ओर गए। वापस आते समय फिर राजपुर गांव में सबसे मिलकर लाहौर पहुंचे। इस बीच छः मास बीत चुके थे। पूज्या अनकौर गर्भवती हो चुकी थी। जब यह गौरवशाली जोड़ा घर पहुंचा, तो पूज्य जसवन्तसिंह के कुलवासियों को यह जानकर बड़ा दुःख पहुंचा कि एक खत्री लड़का एक जाट की लड़की को घर में ले आया। पूज्य जसवन्तसिंह जी के सामने एक विचित्र अवस्था बन गई। उसके सामने दो प्रश्न रखे गए कि या तो इस जाट की लड़की को छोड़दे या वह स्वयं घर छोड़दे। इस निर्णायक घड़ी में वीर जसवन्तसिंह जी ने घर छोड़कर वीराङ्गना अनकौर को साथ रखने का दृढ़संकल्प लिया और लाहौर से तुरन्त राजपुर चले आये। राजपुरवासियों ने पूज्य जसवन्तसिंह जी के साहसपूर्ण पग का स्वागत किया। ग्रामवासियों ने यह निर्णय किया कि जहां पर लड़की रहे वहां पर माता-पिता को नहीं रहना चाहिये। अतः सारा ग्राम कुल यहां से चला गया और सारे ग्राम की सम्पत्ति पूज्य जसवन्तसिंह जी को दहेज में देदी गई। यहां के जाट जाति के लोगों ने १२ मील दूर **कुतुबगढ़** गांव बसाया, सैनी जाति के लोगों ने पास में **लामपुर** नाम का गांव बसाया। ठठेरा जाति के लोग **गोहाना** जाकर बस गए। अब उजड़े हुए गांव में रहना पूज्य जसवन्तसिंह जी को पसन्द न था। उन्होंने गांव से बाहर (जहां पर इस समय आर्यसमाज बांकनेर विद्यमान है) अपना मकान बनाया। इसी मकान में उनके यहां एक पुत्र का जन्म हुआ। उन्होंने नवजात शिशु का नाम नानू ननियारा रखा, क्योंकि उसका जन्म उसके नाना के गांव में हुआ और अपनी जाति जाट और गोत्र खत्री घोषित किया। इस प्रकार जाटखत्री का इतिहास प्रारम्भ हुआ। कुतुबगढ़ के पूज्य निवासियों का हम आज भी नाना कहकर मान करते हैं।

राजपुर के पास ढाई मील की दूरी पर **भोरगढ़** में राजा जयचन्द राज्य करते थे। जिनका पक्का तालाब आज भी बना हुआ है। इस तालाब के दक्षिण में जोहरी सराय थी, जिसे मुसलमान आक्रमणकारियों ने लूटकर नष्ट कर दिया था। एक दिन राजा जयचन्द अपने २० सिपाहियों के साथ घोड़ों पर सवार होकर राजपुर गढ़ी के पास से गुजरा। पूज्य जसवन्तसिंह जी भी अपने घोड़े पर सवार होकर उनके साथ चल पड़े। दो मील की दूरी पर पूज्य जसवन्तसिंह जी ने एक भयंकर जंगली जन्तु का शिकार किया। राजा जयचन्द के सिपाहियों ने कहा कि शिकार उन्होंने मारा है। बात बढ़ गई, झगड़ा हुआ। पूज्य जसवन्तसिंह जी ने सभी सिपाही कत्ल कर दिए। पूज्य जसवन्तसिंह जी तथा राजा जयचन्द अपने-अपने घर लौट आए। कुछ काल पश्चात् इसी कत्लस्थान पर **कतलूपुर** नाम का गांव बसा जो आज भी विद्यमान है।

कुछ समय पश्चात् राजा जयचन्द ने पूज्य जसवन्तसिंह जी को उनकी वीरता से प्रभावित होकर अपना सेनापति नियुक्त किया। राजा जयचन्द निस्सन्तान थे, उनकी दो निष्ठुर रानियों ने राजा को कत्ल करा दिया और स्वयं शासक बन गईं। वीर जाटखत्री सेनापति ने इन दुष्टस्वभाव की रानियों पर भरोसा न किया, इन दोनों को कत्ल करवा दिया और स्वयं राजा बन गया। अपनी वीरांगना अनकौर तथा पुत्र नानू को भी अपने साथ यहीं रखा। कुछ वर्ष राज्य करने के बाद पूज्य जसवन्तसिंह जी का स्वर्गवास होगया। उसके पश्चात् उनका योग्य पुत्र नानू राजा बना।

पूज्य नानू जी ने अपनी राजधानी अलग नगर बसाकर बनाई, जिसका नाम अपने नाम पर 'ननेरा' रखा, जिसको अंग्रेजों ने 'नरेला' नाम से पुकारा। पूज्य नानू के तीन पुत्र हुए। उद्या, पपोहा तथा मामू। इनके नाम पर ननेरे (नरेला) में तीन पाने हैं। पुरानी चली आरही रूढ़ि से ऐसा लगता है कि श्री उद्या तथा श्री पपोहा एक माता के गर्भ से तथा श्री मामू दूसरी माता से जन्मे थे। क्योंकि आज जब भी कुश्ती दंगल आदि होते हैं तो ये दो पाने एक ओर और मामू दूसरी ओर। और मामू पाने के साथ हमारा गांव बांकनेर भी रहता है। जिसका साथ रहने का कारण आगे की पंक्तियों में स्पष्ट होजायेगा। श्री मामू के कई पुत्र हुए उनमें से एक श्री कन्हैयालाल जी जिन्होंने **कुण्डली** गांव बसाया। श्री बांके जी के नाम पर इस गांव का नाम **बांकनेर** प्रचलित होगया। श्री बांके जी अपने साथ श्री पं० गंगू को भी लाये थे, इसी तरह हमारे गांव के पण्डितों का तथा मामूरपुर पाने के पण्डितों का

निकट सम्बन्ध चला आरहा है। जसवन्तसिंह की संतान ने **सोनीपत, रायपुर, शाहपुर, कुलासी,** आदि बसाए।

श्री बांके जी के दो पुत्र जसमल तथा राहू हुए। श्री राहू जी का एक पाना पूर्व दिशा में पुराने राजपुर खेड़े के साथ लगता है।

श्री जसमल जी के छह पुत्र हुए श्री भुराड़ा, श्री पठान, श्री मोहन, श्री रग्घू, श्री नत्थू तथा श्री पूर्ण। लेखक श्री मोहन जी की वंशावली में से है।

९.३.१९७५ को भारतकेसरी सतपाल, भारतकुमार करतारसिंह तथा इनके पूज्य गुरु श्री हनुमानजी का आर्यसमाज बांकनेर के २३वें वार्षिकोत्सव पर नोटों तथा फूलमालाओं से ग्रामवासियों ने आंख बिछाकर अभूतपूर्व स्वागत किया। ट्रैक्टरों, जीप, मोटरसाइकलों का लम्बा जलूस नरेला मण्डी से आर्यसमाज बांकनेर तक निकाला गया। पूज्य स्वामी ओमानन्द सरस्वती ने मार्मिक शब्दों में पहलवानों को आशीर्वाद दिया। मार्च १९५८ में पूज्य आचार्य भगवान्देव जी का ५२ बैलों की जोड़ी में नरेला से आर्यसमाज बांकनेर तक शानदार जलूस निकालकर हार्दिक स्वागत किया था। श्री गुरुदयाल तथा श्री नत्थुवा ने ग्राम बांकनेर में आर्यसमाज का कार्य इस क्षेत्र में सबसे पहले १९१४ ई० में एक आर्य महासम्मेलन के रूप में प्रारम्भ किया तथा कुछ वर्ष शिथिल रहा। १९४५ ई० पुनः आर्यवीरदल के रूप में लेखक तथा साथियों ने पूज्य आचार्य भगवान्देव जी से प्रेरणा लेकर आर्यसमाज नरेला के सहयोग से प्रारम्भ किया। सैकड़ों की संख्या में आर्ययुवक तैयार किये तथा श्री उदयसिंह जी तथा श्री जोगेन्द्रलाल जी ने साथियों के सहयोग से १०.९.१९५० को गांव में आर्यसमाज की विधिवत् स्थापना की। आर्यसमाज बांकनेर ने हैदराबाद सत्याग्रह, हिन्दीरक्षा आन्दोलन, गोरक्षा आन्दोलन में सत्याग्रही भेजे जिसमें मा० चेतराम जी, चौ० देवीसिंह, पं० खेमचन्द जी, श्री पृथ्वीसिंह जी, श्री साहबसिंह जी, श्री महासिंह जी, श्री भगवान्सिंह जी के नाम उल्लेखनीय हैं। सामाजिकक्षेत्र शिक्षाक्षेत्र में आर्यसमाज बांकनेर ने सराहनीय कार्य किया है।

यह संक्षिप्त इतिहास, जाट-खत्री की प्रिय कहानी, ग्राम के माननीय सज्जनों से सुनकर, सोनीपत के भाटों की पुस्तकों की सहायता से तथा अन्य साधनों से प्राप्त करके आपके सम्मुख रखी है।"

नरेलानिवासी हरि भारद्वाज ने जनवरी २०१० में **"नानू का ननेरा"** नाम से ननेरा का इतिहास उपन्यास के रूप में लिखा है। उसका आधार भी यही किंवदन्ती

है। वैसे नाना के घर वा गांव को नानेरा कहा जाता है जैसे कि सास के घर वा गांव को सासरा कहते हैं। नाना का नानेरा, सास का सासरा इत्यादि शब्दों में 'का' के स्थान पर 'रा' का उच्चारण राजस्थानी भाषा से आया प्रतीत होता है। राजस्थानी भाषा में सर्वत्र क के स्थान पर र का उच्चारण किया जाता है और अन्त में ओ लगा दिया जाता है जो नानेरो सासरो आदि में दृष्टिगोचर होता है। नाना के निवासस्थान पर बसे हुए गांव को नानेरा वा ननेरा कहा जाने लगा हो ऐसा भी संभव है। अंग्रेजों ने ननेरा को नरेला बना दिया और दिल्ली को डेलही वा देलही।

नरेला के दो समकालीन महापुरुष

ईसा की बीसवीं शताब्दी में नरेला गांव में दो विशिष्ट खत्रीपुत्र उत्पन्न हुए। प्रथम चौ० अमोलाल के प्रथमपुत्र **श्रीराम** का जन्म ५ जनवरी १९०४ ई० में हुआ जो पिता की ताड़ना पर १५ वर्ष की आयु में घर गांव छोड़कर घूमता फिरता नाथों के प्रमुख डेरे अस्थलबोहर में आगया और यहां पर महन्त श्री पूर्णनाथ जी से दीक्षा लेकर सन् १९२० में श्रेयोनाथ बन गया। पढ़-लिखकर २१ मार्च १९३७ को अस्थल बोहर मठ की गद्दी का उत्तराधिकारी चुना गया और २८ फरवरी १९३९ के शुभ दिन इसको प्राचीन मठ के 'महन्त' पद पर आसीन करके महन्त पूर्णनाथ जी मठ को छोड़कर यात्रा पर निकल गए।

श्रेयोनाथ जी ने मठ का विकास किया। अनेक लोकोपकारक कार्य किए और ७ जनवरी १९८५ सोमवार पूर्णिमा के दिन दिवंगत होगए।

दूसरा विशिष्ट खत्रीपुत्र नरेला के बड़े जमींदार और नम्बरदार चौ० कनकसिंह मामूरपुरनिवासी के घर में २२ मार्च १९११ ई० (चैत्र बदी अष्टमी संवत् १९६७ वि०) को भगवान्सिंह उत्पन्न हुआ। ब्रह्मचारी भगवान्देव जी ने संवत् १९९९ वि० ८ नवम्बर १९४२ रविवार को (दीपावली पर) गुरुकुल झज्जर का आचार्य बनकर इसका संचालन किया और इसके माध्यम से ६१ वर्ष तक आर्यसमाज और देश की जो सेवा की उसको संक्षेप में आप इस पुस्तक में पढ़ेंगे।

दोनों महापुरुष एक ही गांव और गोत्र में पैदा हुए और एक ही जिला रोहतक के रोहतक और झज्जर में बैठकर आजीवन परोपकार में लगे रहे। दोनों की परस्पर मित्रता थी और एक-दूसरे का पूरा सम्मान करते थे। गांव के नाते में भी दोनों भाई थे।

भगवान्‌सिंह की १७ पीढियां

सन् १२५० से २००३ तक (७५३ वर्ष)

- १ नन्दलाल
  - २ मोतीराम
    - हरिराम
    - राजपाल
    - देवीराम
    - देवराज
    - महीपाल ३
      - महाराम ४
        - मेहरसिंह
        - ५ विजयसिंह
          - ६ नरसिंह
            - ७ दुलेराम
              - ८ निहालसिंह
                - ९ हरकिशन
                  - १० अभयसिंह
                    - ११ नान्हू
                      - १२ बल्लू
                      - हरलाल
                      - न्यौता
                  - सेढू
                  - कृपा
                  - काशीराम
                - लालचन्द
                - बनवारी
                - केसरिया
              - हरपाल
            - भगतराम
            - रामनाथ
          - महासिंह
          - वहालसिंह
        - ज्ञानसिंह

१३ दौलता

१४ बहादुर

दुर्गा | १५ निहालसिंह | मेहरसिंह | सूरजमल | रायसाल | महाराम

१६ कनकसिंह

१७ भगवान्‌सिंह (२२ मार्च १९११ से २३ मार्च २००३ तक)



नोट—भगवान्‌सिंह का बाल्यकाल में पिताजी ने विवाह कर दिया था किन्तु यह गृहस्थी नहीं बना। ब्रह्मचर्य से सीधा संन्यास लेकर स्वामी ओमानन्द सरस्वती बन गया। स्वामी दयानन्द सरस्वती की भांति इसने भी प्रजातन्तु (वंशबेल) तोड़ दिया।

जन्म

चौ० कनकसिंह की प्रथम धर्मपत्नी मैदानगढ़ी (दिल्ली) की थी। उससे एक पुत्री **मथुरी** उत्पन्न हुई थी। तत्पश्चात् उसका देहान्त होगया। प्रथम पुत्री मथुरी पुरखास गांव में ब्याही थी। इससे एक पुत्र **बनवारीलाल** हुआ। उसको चौ० कनकसिंह ने अपने घर पर (नरेला में) ही रखा और उसका पालन-पोषण भी किया। उस समय चौ० कनकसिंह जी के घर में पुत्र नहीं था। जमीन जायदाद पर्याप्त थी। अतः पिता निहालसिंह जी ने चौ० कनकसिंह का दूसरा विवाह रोहतक जिले के गोच्छी गांव के चौ० पेमराज अहलावत की पुत्री तथा बुज्जन की बहन नान्हीदेवी से किया था। इससे दूसरी पुत्री **सूधो** हुई, उसका विवाह चौ० लखीराम दहिया मटिण्डू (जि० रोहतक) के साथ हुआ। उसका पुत्र **मा० सत्यवीरसिंह दहिया** कन्या गुरुकुल नरेला का महामन्त्री है। एक पुत्री भी हुई थी, उसका अब देहान्त होचुका है।

दो पुत्रियों के पश्चात् प्रथमपुत्र का जन्म चैत्र बदी अष्टमी संवत् १९६७ वि० (२२ मार्च सन् १९११ ई०) रविवार के दिन हुआ। बहुतकाल प्रतीक्षा के पश्चात् तीसरी सन्तान के रूप में पुत्ररत्न की प्राप्ति पर परिवार एवं सगे-सम्बन्धियों में प्रसन्नता होना स्वाभाविक था। क्षेत्र और समाज में जाना माना प्रतिष्ठित परिवार होने के कारण पुत्रजन्म पर हजारों व्यक्तियों ने घर आकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की और बधाइयां दीं।

कुलपरम्परा के अनुसार प्रथमपुत्र का नाम **भगवान्‌सिंह** रखा गया। घर-परिवार में प्यार से ''**भानु**'' नाम से पुकारा जाता था। किसको पता था कि यही प्यारा बालक भानु भविष्य में ''**भानु**'' (सूर्य) के समान देदीप्यमान तेजस्वी बनकर संसार को चमत्कृत करेगा। इसी भानु वा भगवान्‌सिंह ने गुरुकुल में अध्ययनकाल में **ब्रह्मचारी भगवान्‌देव** नाम से प्रसिद्धि पाई और गुरुकुल झज्जर के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने पर **आचार्य भगवान्‌देव** नाम से प्रख्यात हुए तथा संन्यास आश्रम में **स्वामी ओमानन्द सरस्वती** नाम धारण करके विश्वविख्यात संन्यासी बने। तत्पश्चात् कनकसिंह जी की तीसरी पुत्री **जादो** हुई जो कराला (दिल्ली) में ब्याही गई थी।

इसके पश्चात् चौ० कनकसिंह जी की चतुर्थपुत्री **राजो** का जन्म हुआ था। इसका विवाह आचार्य भगवान्‌देव जी ने टीकरी (दिल्ली) निवासी चौ० लेखराम (दराल) के पुत्र जागेराम जी से करवाया था। इसके एक पुत्री हुई थी, उसका देहान्त होगया।

४ पुत्री और १ पुत्र के पश्चात् चौ० कनकसिंह जी के घर में छठी सन्तान के रूप में एक और पुत्र ने जन्म लिया था, उसका नाम **सत्यवीर** रखा गया था। उसका बाल्यकाल में ही देहान्त होगया था, इसलिए इस घर का उत्तराधिकारी इकलौता पुत्र भगवान्सिंह ही रह गया।

विवाह तथा विवाह-विच्छेद

यद्यपि चौ० कनकसिंह जी आर्यसमाज से प्रभावित थे पुनरपि उस समय की प्रचलित प्रथा के अनुसार अपने पुत्र भगवान्सिंह का विवाह सात-आठ वर्ष की आयु (सन् १९१८-१९ ई०) में ही बादली (झज्जर) निवासी प्रतिष्ठित किसान चौ० भरतसिंह गुलिया की पुत्री **सरूपा** के साथ गाजे बाजे के साथ कर दिया। तब सरूपा भी सात-आठ वर्ष की ही थी। उस काल में देहात में कन्याओं को पढ़ाने की परम्परा नहीं थी। सन् १९३६ में आर्यसमाज नरेला के वार्षिक उत्सव पर भगवान्सिंह ने बाल्यकाल के विवाह-सम्बन्ध को नकारते हुए आजीवन ब्रह्मचारी रहने का व्रत धारण कर लिया और गृहस्थी नहीं बने।

सरूपा के माता-पिता और भाइयों ने सरूपा का विवाह किसी दूसरे से करने की बात चलाई तो उसने निषेध करते हुए कहा कि **वह ब्रह्मचारी रहेगा तो मैं भी रहूंगी।** सरूपा के बड़े भाई सूबेदार रामसिंह जी ने मुझे बतलाया कि जब मैंने सरूपा को विवाह के लिए बार-बार कहा तो उसने यहां तक कह दिया कि **''मैं तेरी गंडासे से नाड़ काट दूंगी''**। सरूपा ने भी दूसरा विवाह नहीं करवाया। कुछ समय अपनी ससुराल नरेला में अकेली रही और अन्त में अपने पीहर आकर भाइयों के पास बादली में एक तपस्विनी के रूप में ८५ वर्ष की निष्कलंक आयु पूरी करके ४ मार्च १९९६ को दिवंगत होगई। ससुराल की करोड़ों की सम्पत्ति में से एक कौड़ी भी नहीं ली।

परिवार-परिचय

भगवान्सिंह का परिवार अपने क्षेत्र में संभ्रान्त (खानदानी) परिवार रहा है। आपके दादा श्री निहालसिंह तथा श्री सूरजमल दो सहोदर भाई थे। ये दोनों सम्मिलित रूप से रहते थे और ६०० बीघा भूमि के स्वामी थे। निहालसिंह से कनकसिंह का जन्म हुआ। ये अपने पिता के इकलौते पुत्र थे इस कारण दायाद में चौ० कनकसिंह को विशाल सम्पत्ति और ३०० बीघा भूमि मिली। चौ० कनकसिंह सत्यवादी, ईमानदार और गम्भीर व्यक्ति थे। इनके खेत में हर समय अनेक व्यक्ति

मजदूर के रूप में काम करते थे। उन सबके साथ इनका व्यवहार अतीव मधुर होता था! साथ ही समय-समय पर ये उनकी आर्थिक सहायता भी करते थे। इस कारण गांव के गरीबवर्ग के सभी व्यक्ति इनको अपना रक्षक मानते थे। सामाजिक स्तर पर भी जब कभी उनके साथ भेदभाव का व्यवहार किया जाता तो चौ० कनकसिंह उसके विरुद्ध आवाज उठाते थे, इसीलिए वे लोग इनको देवता मानकर सम्मान करते थे।

चौधरी कनकसिंह नरेला के गिने-चुने व्यक्तियों की अग्रिम पंक्ति में आते थे। वे गांव के नम्बरदार भी थे। नरेला की भूमि अत्यधिक उपजाऊ भूमि है। यह भूमि अन्न के रूप में सोना उगलती है। जिन परिवारों के पास केवल दस-पन्द्रह बीघा भूमि है वे भी केवल उसी पर निर्भर रहकर पूरे परिवार का सानन्द निर्वाह करने में सफल हैं। चौ० कन कसिंह जी तो ३०० बीघा भूमि के स्वामी थे, जिसमें जलसिंचन के लिए पांच कुए थे। एक बड़ा उद्यान (बाग) था। उन्हें विरासत में पैतृकसम्पत्ति भी बहुत मिली थी। इस प्रकार उनकी आर्थिक सम्पन्नता का आकलन सहज में ही किया जासकता है। दूसरी ओर समाज में उनका ऊंचा स्थान था। विशेपकर इसलिए कि वे हर सामाजिक कार्य में बढ़-चढ़कर भाग लेते थे। सामाजिक कार्यों में दान भी बहुत देते थे। सम्पन्नता का अभिमान उनको छू भी नहीं गया था।

उस समय उत्तर भारत में आर्यसमाज का बोलबाला था। आर्यसमाज ही राष्ट्रीयता का प्रचार करनेवाली सबसे बड़ी और अग्रगण्य संस्था थी। आर्य-प्रचारक महर्षि दयानन्द और महात्मा गांधी के सन्देशों को जन-जन तक पहुंचाने के लिए गांव-गांव में जारहे थे। यही प्रचारक उस समय समाज-सुधार और जन-जागृति के अगुआ थे। नरेला गांव में इस प्रकार के उपदेशकों के भोजन और निवास का प्रबन्ध श्री चौ० कनकसिंह के घर पर ही होता था। आपकी माताजी अतिथिसत्कार में अतिदक्ष थीं। वे स्वभाव से बहुत ही मृदु एवं धर्मपरायणा तथा सामाजिक मर्यादाओं में विश्वास रखनेवाली महिला थीं। वह अतिथिसत्कार में किसी प्रकार की कोई कसर न उठा रखती थी। इसी कारण इस परिवार को दूर-दूर तक जाना पहचाना जाने लगा।

यहां यह लिखना भी आवश्यक है कि भगवान्‌सिंह के दादा चौ० निहालसिंह उस समय के अच्छे पढ़े-लिखे व्यक्ति थे। वे कुछ समय उत्तरप्रदेश की एक मुसलमान बेगम की रियासत में अच्छे पद पर काम कर चुके थे। उसके बाद वे

बहुत समय तक सरकारी पटवारी भी रहे। उर्दूभाषा की उनकी अच्छी योग्यता थी। वे आम बोलचाल में भी देहाती भाषा की अपेक्षा उर्दू भाषा का ही अधिक प्रयोग किया करते थे। उन्होंने अपने पुत्र कनकसिंह को दूसरी कक्षा के बाद स्वयं घर पर ही पढ़ाया। उन्हीं के द्वारा पढ़ाये जाने के कारण ही श्री कनकसिंह उर्दू भाषा की कठिन से कठिन पुस्तक और समाचारपत्र सरलता से पढ़ लेते थे। उस समय उर्दू के साप्ताहिक-पत्रों का प्रचलन था। उन्हें समाचार-पत्रों का इतना शौक था कि वे साप्ताहिक-पत्र अपनी आयुभर डाक द्वारा मंगवाकर पढ़ते रहे। उन दिनों गांव में केवल आप और दूसरे चौ० अभयराम (चौ० रामदेव के पिता) दो ही व्यक्ति थे जिनको समाचार-पत्र पढने का शौक था। उनकी पढ़ाई में एक कमी अवश्य रह गई कि वे पढ़ तो सब कुछ लेते थे परन्तु लिख नहीं सकते थे। कारण कि उन्होंने लिखने का अभ्यास ही नहीं किया। केवल पढ़ने का ही अभ्यास करते रहे। वे अपने हस्ताक्षर भी उर्दू भाषा में नहीं कर सकते थे। अपितु जहां कहीं उनको हस्ताक्षर करने की आवश्यकता पड़ती तो मुण्डी हिन्दी (महाजनी) में किया करते थे परन्तु उस मुण्डी भाषा को भी लिख नहीं सकते थे। मात्र हस्ताक्षर ही कर सकते थे। वे नरेला गांव के मामूरपुर पाना में रहते थे और अपने ठोले के नम्बरदार थे।

नरेला में आर्यसमाज की स्थापना

भगवान्सिंह के जन्म से पूर्व ही इनके पिता आर्यसमाज के प्रचार में रुचि लेते थे। वे न केवल प्रचार सुनते थे अपितु उपदेशकों के भोजन निवास आदि की भी पूरी व्यवस्था करते थे। उन्होंने गांव में आर्यसमाज की स्थापना करने का निश्चय किया। उन्होंने चौ० अभयराम तथा अन्य साथियों के साथ मिलकर गांव में विधिवत् आर्यसमाज की स्थापना* सन् १९२९ में की और आर्यसमाज का प्रथमोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया। चौ० कनकसिंह समाज के संस्थापक मंत्री व चौ० अभयराम प्रधान चुने गये। ये दोनों कई वर्ष तक इन पदों पर काम करते रहे। इसी अवसर पर आपके पिता और दूसरे कई व्यक्तियों ने यज्ञोपवीत धारण किये। उसी दिन से उन्होंने पुरानी रूढ़ियों को छोड़ दिया। प्रतिदिन स्नान और दोनों समय सन्ध्या करना आरम्भ कर दिया। अपने इस व्रत को उन्होंने आजीवन निभाया। इसके उपरान्त वे प्रतिवर्ष गांव में आर्यसमाज का उत्सव नियमित रूप से कराते

* आर्यसमाज नरेला के इतिहास में स्थापना जनवरी १९३० में लिखी है। यह स्थापना तिथि स्वामी ओमानन्द जी की आत्मकथा और दीनदयाल जी के लेख से मेल नहीं रखती। भगवान्सिंह जी ने १९२८ में नरेला का स्कूल छोड़ दिया था और १९२९ में मैट्रिक की परीक्षा दी थी।

रहे। गांव के अन्य सभी प्रतिष्ठित लोगों का उन्हें इस कार्य में भरपूर सहयोग मिलता था। स्वर्णकार श्री चन्द्रभान और ओम्‌देवा ने आर्यसमाज के लिए कमरा दिया, जो नरेला में मस्जिद के साथ था। जब तक आर्यसमाज का वह मन्दिर, जिसमें वर्तमान में आर्यसमाज चलता है, न बना तब तक समाज का सब कार्य स्वर्णकार महानुभावों द्वारा दिये स्थान पर ही चलता रहा। आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव धराणी जोहड़ के साथ मैदान में होते रहे। आर्यसमाज मन्दिर की आधारशिला महात्मा नारायण स्वामी जी के करकमलों द्वारा भव्य समारोह में २७ मार्च १९३३ में स्थापित कीगई। इन्हीं आर्यसंस्कारों का प्रभाव बालक भगवान्‌सिंह पर पड़ा, जो उनको भगवान्‌सिंह से आचार्य भगवान्‌देव और उससे आगे स्वामी ओमानन्द सरस्वती तक के लम्बे तपस्यापूर्ण जीवन व्यतीत करने का मार्ग प्रशस्त कर सका।

गांव में आर्यसमाज की स्थापना के साथ ही समाज में फैली कुरीतियों को दूर कर, समाजसुधार का कार्य भी उन्होंने आरम्भ कर दिया। गांव में उन्होंने सांग पर पाबंदी लगवादी। सांग का हरयाणा में बहुत विकृत रूप होगया था और उसका भावी-पीढ़ी पर बुरा प्रभाव पड़ता था। अतः उसका विरोध करना आवश्यक था। इस कार्य के लिए उन्होंने बहुत ही बुद्धिमत्ता से कार्य लिया। गांव के प्रतिष्ठित व्यक्तियों की सहमति प्राप्त कर उनको इसके विरोध में एकत्रित और एकजुट कर दिया। इस प्रकार स्वयं एकाकी विरोध करने की अपेक्षा उस विरोध को सार्वजनिक रूप प्रदान कर दिया।

बाल्यकाल और शिक्षा

आर्यसमाज के कार्यों में निरन्तर भाग लेने और श्रद्धापूर्वक उसके सिद्धान्तों का पालन करते रहने से चौ० कनकसिंह अटूट आस्थावान् आर्यसमाजी बन गये। उनके परिवार में आर्य-वातावरण की झलक स्पष्ट दिखलाई देने लगी। अब उनके और चौ० अभयराम के प्रभाव से दूसरे व्यक्ति भी आर्यसमाज में आने लगे। आर्यसमाज के रूप में अब यहां एक प्रबल राष्ट्रीय विचारधारा का प्रसार होने लगा। इसी बीच चौ० कनकसिंह ने अपने पुत्र का यज्ञोपवीत संस्कार कराने का निश्चय किया। उन्होंने एक दिन आर्यसमाज सब्जीमण्डी दिल्ली से विद्वान् पुरोहित पं० गंगाशरण को बुलवाकर भगवान्‌सिंह का यज्ञोपवीत संस्कार करवा दिया। पुत्र के साथ ही अपने दौहित्र बनवारीलाल का भी यज्ञोपवीत संस्कार करवाया।

भगवान्‌सिंह के जन्म से पूर्व चौ० कनकसिंह के दो पुत्रियां थीं, कोई पुत्र नहीं था। इस कारण उन्होंने अपने दोहते बनवारीलाल को अपने पास रख लिया

था। जिसको वे पुत्रवत् रखते थे। उनका परिवार अब भी नरेला में ही रहता है। कालान्तर में भगवान्सिंह के जन्म के बाद भी ये उन्हीं के यहां रहे। भगवान्सिंह यद्यपि बनवारीलाल के मामा थे, किन्तु आयु में बड़ा होने के कारण वे बाबू बनवारीलाल को सदा ही बड़े भाई का आदर देते थे और उनकी बात को मानते थे। इस प्रकार चौ० कनकसिंह ने इन दोनों का यज्ञोपवीत-संस्कार करवाकर बाल्यकाल से देवपथ का पथिक बनाने का प्रयास किया।

कदाचित् यही कारण था कि भगवान्सिंह इस मार्ग पर इतने आगे बढ़े कि पिता को उसकी कल्पना भी नहीं थी। एक समय वह भी आया जब पिता इस मार्ग की एक सीमा से आगे पुत्र को बढ़ने नहीं देना चाहते थे और पुत्र आगे ही नहीं, बहुत आगे बढ़ना चाहता था। इसके लिए पुत्र को बहुत संघर्ष करना पड़ा, परन्तु अन्ततोगत्वा हुआ वही जो पुत्र चाहता था।

जब बालक भगवान्सिंह आठ वर्ष का हुआ तो पिता ने अप्रैल १९१९ में उसको गांव की प्राथमिक पाठशाला (प्राइमरी स्कूल) में अध्ययनार्थ प्रविष्ट करा दिया। यहां से भगवान्सिंह ने मार्च १९२३ में चतुर्थ श्रेणी उत्तीर्ण की। आगे की शिक्षा के लिए आपको इसी वर्ष अप्रैल मास में, हेली रिफार्म हाई स्कूल, जो आजकल मुत्सद्दीलाल राजकीय उच्च विद्यालय (हायर सैकेण्ड्री स्कूल) नरेला के नाम से जाना जाता है, में प्रवेश दिलाया गया।

इस स्कूल के हैडमास्टर रामचन्द्र भारती थे। वे आर्यसमाजी थे। विद्यार्थियों को आर्यविचारधारा में ढालने का भारती जी भरसक प्रयास करते थे। कक्षाओं में महर्षि दयानन्द के चित्र दिखलाते और उनके जीवन की अनेक घटनायें बतलाया करते थे। स्कूल में उन्होंने ही भगवान्सिंह को आर्यसमाज की ओर आकर्षित किया। पारिवारिक संस्कार आर्यसमाजी थे ही। मास्टर धर्मसिंह (झिंझोली निवासी) भी आर्यसमाजी थे। उन्होंने स्कूल से छुआछूत मिटाने के लिये हरिजन लड़कों का प्रवेश आरम्भ किया। गांव के कई लोगों ने इस पर आपत्ति की परन्तु गांव के गणमान्य व्यक्तियों, जिनमें भगवान्सिंह के पिता भी थे, ने हरिजन लड़कों के प्रवेश का समर्थन किया। परिणामस्वरूप प्रवेश प्रारम्भ होगया। आगे चलकर स्वयं भगवान्सिंह ने पूरे क्षेत्र के गांवों में घूम-घूमकर हरिजनभाइयों में जाकर सहभोजों का आयोजन और रात्रिपाठशालाओं का संचालन कर एक नया आदर्श प्रस्तुत किया। इनमें ये संस्कार स्कूल के समय से ही विद्यमान थे। आर्यसमाज के संसर्ग ने इनको कार्यरूप में परिणत करने के लिये प्रेरित किया।

गांव में एक दिन भजन होरहे थे। अपने दूसरे मित्रों से मिलकर इन्होंने एक शरारतपूर्ण योजना बनाई कि इस भजनी का मजमा उखाड़ना है। रात्रि का समय था। दिन में देखी एक मरी हुई बिल्ली को ये सब उठा लाये और गायक के पास लोगों के बीच में उसे फेंक दिया। लोग हक्के-बक्के रह गये और वहां से स्त्रियां और बच्चे डरकर भाग खड़े हुये। पकड़े जाने के भय से बिल्ली फेंकनेवाले भी सभी दौड़ गये। बाल्यकाल में इस तरह की चंचलता इनको बहुत सूझती थी। पढ़ाई का कार्य आप घर पर केवल उतना ही करते थे, जितना कि अध्यापक घर के लिये काम देते थे। शेष पूरा समय खेल-कूद में ही व्यतीत करते थे। इस पर भी भगवानसिंह अपने सहपाठियों में बहुत होनहार विद्यार्थी माने जाते थे। प्रारम्भ से ही ये बहुत कुशाग्रबुद्धि थे किन्तु उसका उपयोग पढ़ाई में न कर खेल या चंचलता में अधिक करते थे।

उच्चकोटि के नटखट

एक बार की बात है कि गांव के एक वृद्ध व्यक्ति जो हजामत का कार्य करते थे, सोये हुये थे। उन्होंने बड़ी-बड़ी दाढ़ी-मूछें रखी हुई थीं। उस वृद्ध को सोता देख एक बार इनको चंचलता सूझी। इन्होंने अपने कुछ साथियों को इकट्ठा किया और उनको साथ लेजाकर उस बूढ़े व्यक्ति की दाढ़ी में आग लगादी। इन बच्चों के लिये तो वह मात्र एक तमाशा था परन्तु उस बेचारे पर क्या बीती होगी। किन्तु बच्चे तो बच्चे ही होते हैं। उनका स्वभाव बन्दर जैसा होता है। वे कुछ भी कर सकते हैं।

एक बार गांव से बाहर कुछ अंग्रेज शिकार करने आये। वे सड़क पर गाड़ी खड़ी कर शिकार के लिये दूर खेतों में निकल गये। गांव में उस समय शिकार को बहुत बुरा समझा जाता था किन्तु अंग्रेजों को कौन रोके। वे उस समय देश के शासक थे परन्तु बच्चों के लिये बादशाह और सेवक में अधिक अन्तर नहीं होता। भगवानसिंह और इनके दो साथी शौच आदि के लिए इधर आये तो इन्होंने शिकार करते अंग्रेजों की देशस्थिति को भांप लिया और उनकी कार के नट और बोल्ट उतारकर चलते बने। अंग्रेज वापस आने लगे तो उन्हें शिकार का भाव मालूम पड़ा। वे बड़े लाल-पीले हुये परन्तु करते भी क्या? क्रांतिकारी वीर बालक तो वहां से रफूचक्कर होचुके थे।

कमबख्ती खरीदना

एक बार कई साथी बच्चे मिलकर दुकान पर गये और दुकानदार के हाथ में एक पैसा थमाकर बोले—लालाजी इसकी हमें कमबख्ती देदो। लाला जी ने इनको नीचे से ऊपर तक बड़े ध्यान से देखा और बड़े सरलभाव से कहा, ''बेटा! उसको खरीदने की आवश्यकता नहीं। तुम्हारी शादी होने पर कमबख्ती तो खुद ही आजावेगी।'' लाला जी का यह उत्तर सुनकर बालक भगवान्‌सिंह बड़ा गम्भीर होगया और मन ही मन निश्चय किया कि कमबख्ती को नहीं आने दूंगा। पर इन्हें क्या पता था कि इनके पिताजी ने उसका प्रबन्ध तो पहले ही कर दिया था। उसी समय जबकि तुम विवाह नाम से भी परिचित न थे।

चोरी का त्याग

भगवान्‌सिंह बाल्यकाल में बहुत नटखट तो थे ही। एक बार की बात है, वे अपने कई अन्य सहपाठियों के साथ मिलकर अवकाश के दिन स्कूल गये। स्कूल की एक खिड़की तोड़कर अन्दर घुसे और वहां रखी पुस्तकों में से अच्छे-अच्छे चित्र को फाड़कर ले आये तथा एक चाकू और कुछ पेंसिल चुरा लाये। पिताजी को जब इस घटना का पता चला तो उन्होंने बालक भगवान्‌सिंह की बहुत पिटाई की और नाक से लकीर निकलवाकर आगे कभी ऐसा कार्य न करने की प्रतिज्ञा करवाई। पिता चौ० कनकसिंह पुत्र भगवान्‌सिंह से भरपूर स्नेह रखते थे। किन्तु यदि पुत्र किसी प्रकार की त्रुटि करता तो वे उसे न केवल डाटते ही थे अपितु बहुत पिटाई भी कर देते थे। वे जानते थे कि बच्चों को केवल अन्धा प्यार देना उनको पथभ्रष्ट करना है। इसलिए जब कभी भगवान्‌सिंह कोई भी अच्छा कार्य करता तो पिता की ओर से उसको भरपूर प्रशंसा और उत्साह मिलता था। यदि वह अनावश्यक उच्छृंखलता करता तो उसे पिता से कड़ा दण्ड भी मिलता था। हर त्रुटि पर कड़ा दण्ड ही मिलता रहा हो, ऐसा भी नहीं था। पिताजी बहुत ही सुलझे हुए और गम्भीर व्यक्ति थे। वे जानते थे बच्चों के साथ कब कैसा व्यवहार करना चाहिए। अतः बहुत बार वे भगवान्‌सिंह को मात्र अपनी भावभंगिमा से ही अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर और कभी समझाकर आगे के लिये सावधान कर देते थे। उनका तरीका बहुत ही मनोवैज्ञानिक था। इसी कारण बाल्यकाल में भगवान्‌सिंह अपने अन्य साथियों से सर्वथा भिन्न था। उसने बालसुलभ चंचलस्वभाववश यदि कोई गलती कर भी दी तो उसको दुबारा कभी नहीं दोहराया। इसमें पिता की देखरेख और पुत्र के प्रति उनका सन्तुलित व्यवहार ही मुख्य कारण था।

धूम्रपान का त्याग

बारह-तेरह वर्ष की आयु में दूसरे समवयस्क बच्चों के संसर्ग में आकर भगवान्‌सिंह ने दो-तीन बार हुक्के की घूंट मारी। उनके पिताजी को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने पुत्र को बहुत ही प्यार से अपने पास बुलाया। पहले तो उन्होंने भगवान्‌सिंह की पढ़ाई और वाक्‌पटुता आदि की प्रशंसा की और जब उन्होंने देखा कि पुत्र अब बहुत प्रसन्न है तो उन्होंने कहा "देखो बेटे। हमें तो हुक्का पीने की बुरी आदत पड़ गई है। प्रयास करने पर भी हम छोड़ नहीं पारहे हैं। परन्तु तुम्हें यह कुटेव नहीं डालनी चाहिये। यह बुरी आदत है। इस पर भी यदि तुम हुक्का पीना अच्छा समझो तो चोरी से कभी मत पीना, मेरे सामने पी लेना, मुझे बुरा नहीं लगेगा। किन्तु छिपकर पीना अच्छा न होगा।" पिता की बात ने प्रभाव डाला। उस दिन के बाद साथियों के कहने पर भी बालक भगवान्‌सिंह ने कभी हुक्के को नहीं छुआ। उस समय की पुरानी पीढ़ी में अधिकांश आर्यसमाजी व्यक्ति हुक्का पीते थे। कारण कि हरयाणा में आर्यसमाज के जो प्रचारक उस समय थे, उनमें पं० बस्तीराम जी का स्थान सर्वोच्च था और वे स्वयं हुक्का पीने के आदी थे। वे उन सबके लिये उदाहरण बन जाते थे, जिनको हुक्का पीने की आदत थी।

अध्ययन-कुशलता एवं बालहठ

हाई स्कूल में आपकी पढ़ाई का कार्य भली प्रकार चलता रहा। वक्तृत्वकला में दक्ष होने के कारण स्कूल में होनेवाली साप्ताहिक सभा का आपको मन्त्री चुना गया। पिछली सभा की कार्यवाही का अंकन और वाचन बहुत भली प्रकार करने तथा सभा का संचालन उत्तमता से करने पर गुरुजनों की ओर से भरपूर प्रोत्साहन और शाबाशी मिलती रही और इस तरह बालक भगवान्‌सिंह के मन में आगे बढ़ने की भावना भी पल्लवित होती गई। ये अग्रगामी एवं होनहार विद्यार्थियों में अगुआ माने जाने लगे। स्वयं इनके मन में भी सर्वश्रेष्ठ बनने की भावनायें जागीं। किन्तु इसी बीच एक ऐसी घटना घटी जिसने इस प्रवाह को रोक दिया। वैसे तो साधारण-सी ही बात थी, परन्तु भगवान्‌सिंह ने उसको अधिक बढ़ाकर देखा। अपना अपमान समझा और स्कूल छोड़ देने की ठानली। हुआ यह कि एक दिन वे अपना संस्कृत का पाठ याद नहीं कर पाये, उस पर अध्यापक ने इनको डाट फटकार लगाई और कुछ शारीरिक मार भी डालदी। उस समय विद्यार्थियों के प्रति गुरुओं की ओर से ऐसा कर देना एक साधारण बात थी। किन्तु स्वाभिमानी

भगवान्‌सिंह अपनी हठ पर दृढ़ रहा। इस पर इनके पिता चौ० कनकसिंह ने अपने दौहित्र बाबू बनवारीलाल, जो उन दिनों दिल्ली के पहाड़ी धीरज स्थित हीरालाल जैन हाईस्कूल में अध्यापक थे, को बुलाया और उनको पूरा वृत्तान्त सुनाया। बाबू जी ने इनको दिनभर समझाया तो बहुत कठिनाई से इस बात पर सहमत हुये कि मैं नरेला स्कूल की अपेक्षा किसी दूसरे स्कूल में पढ़ लूंगा। परन्तु वहां भी संस्कृत का विषय नहीं लूंगा। पिता ने भी उनकी बात मान ली। परिणामस्वरूप इनको मोरीगेट पर स्थित सेंट स्टीफेन्स (मिशन) हाई स्कूल में प्रवेश दिला दिया। यह स्कूल उन दिनों दिल्ली में सर्वोत्तम स्कूलों में गिना जाता था।

वेशभूषा

भगवान्‌सिंह ने आर्यसमाज के संसर्ग के कारण गांव में पढ़ते हुये ही खद्दर पहनना आरम्भ कर दिया था। सिर पर ये साफा वा टोपी पहनते थे। जिस समय ये इस सेंट स्टीफेन्स स्कूल में प्रवेश के लिए आये तो स्कूल के अध्यापक फतहमसीह ने प्रवेश देने से मना कर दिया। परन्तु स्कूल के प्रिंसिपल, जो कि स्कॉटलैण्ड के रहनेवाले थे, ने भगवान्‌सिंह को स्कूल में प्रविष्ट कर लिया। यह प्रिंसिपल बहुत ही सादा और उच्च विचारों का व्यक्ति था। जब कभी प्रसंग आता तो स्वामी जी अनेक बार अपने व्याख्यानों में उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे। प्रिंसिपल सच्चे देशभक्त थे और देशभक्तों के प्रति अत्यधिक श्रद्धा रखते थे। स्वयं सदा वे स्काटिश वेशभूषा और जूते पहनते थे। दूसरी ओर वे विद्यार्थियों से भी यही अपेक्षा रखते थे कि सब भारतीय परिधान में रहें। कदाचित् इसीलिए भगवान्‌सिंह को खद्दर के कपड़ों में देखकर बहुत प्रसन्नता के साथ प्रवेश के लिये तैयार होगये। पढ़ाई में तो ये अच्छे थे ही। यहां पढ़ते हुए भगवान्‌सिंह मेदगंज में बाबू बनवारीलाल के साथ रहने लगे। घी तथा अन्य खाद्यसामग्री घर से आजाती थी और भोजन पकाने के लिए एक नौकर था। दिल्ली में पढ़ते और रहते हुए अभी थोड़ा ही समय व्यतीत हुआ था कि आर्यसमाज सदर बाजार और पहाड़ी धीरज के वार्षिकोत्सव डिप्टीगंज दिल्ली में हुये। अन्य साथियों के साथ भगवान्‌सिंह भी इन उत्सवों में सम्मिलित हुये। इन उत्सवों में संन्यासी, महात्माओं और विद्वानों के उपदेशों की विद्यार्थी भगवान्‌सिंह पर गहरी छाप पड़ी। इन सभी भाषणों में राष्ट्रीयता की व्याख्या के साथ-साथ वेदों के पढ़ने तथा उसके लिए संस्कृत अध्ययन पर अधिक बल दिया गया था। इसका यह प्रभाव हुआ कि जहां

भगवान्सिंह को पिता से विरासत में मिली आर्यसमाजी विचारधारा को बल मिला, वहां साथ ही संस्कृत को पुनः पढ़ना प्रारम्भ करने का संकल्प इन्होंने लिया। इतना ही नहीं, स्कूल की अर्द्धवार्षिक परीक्षा में अपनी कक्षा में अन्य विषयों सहित संस्कृत में भी सर्वप्रथम रहे। मार्च १९२९ में संस्कृत सहित बोर्ड ऑफ सैकेण्ड्री एजुकेशन, दिल्ली से मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की। इसका प्रमाणपत्र १ अगस्त १९२९ को मिला। इनका रोल नं० ९९२ था।

प्रधानाचार्य का प्रभाव

स्कूल के इस स्कॉटिश प्रधानाचार्य के जीवन ने भगवान्सिंह पर गहरी छाप डाली। वे वास्तव में महान् थे। एक दिन दिल्ली में लाला लाजपतराय का भाषण होना था। प्रिंसिपल ने यह कहकर स्कूल की छुट्टी करदी कि "जाओ लालाजी तुम्हारे देश के एक बहुत बड़े नेता हैं उनका भाषण सुनो और दर्शन करो।" कितना बड़ा दिल था उस व्यक्ति का जिसने खुद अंग्रेज होते हुए उस लाला लाजपतराय को महान् बताया और उसके दर्शन करने हेतु विद्यार्थियों को भेजा जो अंग्रेजों के बोरिया-बिस्तर बंधवाने के लिए देश के कोने-कोने में अलख जगा रहा था। इतना ही नहीं, साइमन कमीशन का विरोध करनेवाले विशाल प्रदर्शन का नेतृत्व करते हुए लगे घावों से जब लाला लाजपतराय का देहावसान होगया तो उस दिन भी प्रिंसिपल स्कॉट साहब ने रुंधे हुए गले से यह दुःखद समाचार सुनाते हुये स्कूल बन्द कर दिया और विद्यार्थियों से कहा कि तुम सब जाओ मन्दिर और मस्जिदों में लाला जी की आत्मा की शान्ति के लिये प्रार्थना करो और मैं चर्च (गिरजाघर) में जाकर प्रार्थना करूंगा।

स्कॉट साहब प्रिंसिपल होने के साथ-साथ पादरी भी थे। इस पर भी न जाने क्यों वे आर्यसमाज से प्रभावित थे। कदाचित् इसका कारण उन दिनों आर्यसमाज ही एक ऐसी संस्था थी जो कट्टर देशभक्त, जागरूक और स्वतन्त्रता के प्रति समर्पित थी। कांग्रेस में काम करनेवाले भी अस्सी-नब्बे प्रतिशत व्यक्ति आर्यसमाजी ही थे। सम्भवतः इसी कारण स्कॉट साहब उसे अच्छा मानते रहे होंगे। एक दिन उन्होंने कक्षा में पूछा कि आप में से आर्यसमाजी कौन-कौन हैं? इस पर भगवान्सिंह खड़े होगये। प्रिंसिपल ने उनको साधुवाद (शाबाशी) दिया। इस समय तक भगवान्सिंह पूरी तरह आर्यसमाज के रंग में रंगे जा चुके थे। एक बार परीक्षा में बाइबिल पर एक प्रश्न आया। इन्होंने उत्तर में वही सब लिखा जो सत्यार्थप्रकाश में बाइबिल के सम्बन्ध में लिखा है। परन्तु प्रिंसिपल ने इसका तनिक भी बुरा नहीं माना, अपितु भगवान्सिंह की तार्किक बुद्धि की प्रशंसा की और साहस पर पीठ

थपथपाई। सम्भवतः इन्हीं थपकियों ने ही इनके स्वभाव की उस विशेषता का बीजारोपण किया, जिसके कारण एक बार ठीक मार्ग चुनने के बाद संसार का बड़ा से बड़ा प्रलोभन भी इनको विचलित नहीं कर पाया।

स्वयं लिखित बाल्यकाल का वर्णन

स्वामी जी ने गोदुग्ध अमृत है (दूध से चिकित्सा) पुस्तक में अपने बाल्यकाल का वर्णन इस प्रकार किया है—

''आर्यसमाज की शिक्षा से और महर्षि दयानन्द की दया से मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ कि वैदिक धर्म में दीक्षित और आर्यसमाज के रंग में रंगे हुये श्रद्धालु आर्य कृषक के घर में मेरा जन्म हुआ। मेरे इस शरीर के जन्म से पूर्व ही इस शरीर से सम्बन्ध के माता-पिता दोनों ही आर्यसमाजी थे। उस समय घर पर गाय-भैंस आदि दूध-घी के पशु पर्याप्त संख्या में थे। उस समय तक गोचरभूमि सभी ग्रामों में पशु चरने के लिए थी, जिसे बनी कहते थे। सभी गौवें अधिक रखते थे, घी के लिए भैंसों का पालन-पोषण भी होने लग गया था। माता-पिता सच्चे आर्यसमाजी थे। घर पर घी दूध की खूब मौज थी अतः बचपन में यथेच्छा घी दूध दही मलाई और मक्खन खूब खाने को मिला, मुझे घरवाले बलपूर्वक खिलाते थे, मैं अकेला पुत्र और बहुत लाडला भी था। अतः खाने-पीने की कमी कैसे होसकती थी।

उन दिनों दाल, शाक सब्जी किसानों के घरों अथवा ग्रामों में बहुत कम तथा कभी-कभी बनती थी। सब भोजन दूध, दही और तक्र (छाछ) के साथ ही खाते थे। प्रायः सभी को घी दूध खाने को प्रचुर मात्रा में मिलता था। मेरे बाल्यकाल में घी दो तीन सेर एक रुपये का बिकता था। दूध कोई बेचता ही नहीं था। यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध थी—**जिसने दूध बेच दिया उसने पूत बेच दिया**। अब देश का दुर्भाग्य है कि दोनों ही दूध और पूत (पुत्र) खूब बिकने लगे हैं। जिस देश में दूध और पूत (पुत्र) बेचना महापाप समझा जाता था वहां दूध तो प्रायः सभी बेचने लगे हैं और पैसे वाले तथा पढ़े-लिखे लोग जहेज (दहेज) के नाम पर प्रायः सभी अपने पुत्रों को भी बेचने लगे हैं। दूध मांगा हुआ मिल जाता था किन्तु मूल्य से किसी भाव से नहीं मिलता था।

मेरे बाल्यकाल में मेरे से पहली पीढ़ी के बहुत से लोग प्रतिदिन एक-एक सेर घी खाते थे। युवावस्था में सभी पहलवानी (कुश्ती) करते थे। अतः सभी अच्छा घी दूध खाते थे और अपने बच्चों को भी खिलाते थे। मैं अधिक मात्रा में घी

दूध आदि खाता था और भी कुछ न कुछ सारे दिन खाता ही रहता था क्योंकि मैं लाडला होने से बहुत चटोरा भी था। मीठा और चटपटा खाना ही अधिक खाता था। माता-पिता घर पर जिस वस्तु को न खाने देते वह मैं बाजार में जाकर पैसों से खरीदकर खालेता था। मिठाई, चाट, बर्फी, दहीबड़े आदि खूब पेट भरकर खा लेता था।

१४ वर्ष की आयु तक यह क्रम चलता रहा। फिर धर्मनिर्णय नाम की पुस्तक अपने एक साथी की प्रेरणा से पढ़ने को मिली। उसके पढ़ते ही आंखें खुल गईं, जीवन का तख्ता पलट गया। चटोरापन और शरारतें समाप्त होगईं। भोजन न पचने से जो स्थिर रूप से कोष्ठबद्धता (कब्ज) रहती थी जिसके लिए प्रायः प्रति सप्ताह रविवार को सौंफ सनाय की पुड़िया विरेचन के रूप में लेनी पड़ती थी। आहार व्यवस्था के बदलने से और प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक व्यायाम प्राणायाम करने से कोष्ठबद्धता (कब्ज) का कष्ट दूर होगया। ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन बड़ी तत्परता और लगन से करने लगा। दूध घी सब पचने लगा, स्वास्थ्य भी दिन-प्रतिदिन उन्नत होने लगा।

गाय के घी दूध से विशेष प्रेम होगया। जब घर पर गाय का दूध-घी न होता तो मैं भैंस का भी लेलिया करता क्योंकि व्यायाम, प्राणायाम बहुत करता और मन में बलवान् बनने की धुन और लग्न लगी थी। सन् १९३१ ई० में सरदार भगतसिंह जी को फांसी लगने पर कालिज की शिक्षा अधूरी छोड़कर योगाभ्यास में लग गया। उस समय यह प्रसिद्ध था कि गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य पं० देवशर्मा जी 'अभय' आर्यसमाज में बहुत बड़े योगी हैं। मेरी इच्छा थी कि समाज के किसी बड़े महात्मा के चरणों में रहकर मैं योगाभ्यास करूं। महात्मा नारायण स्वामी जी से इस विषय में मैं जिज्ञासा कर चुका था। दसवीं श्रेणी को बीच में छोड़कर ही योगाभ्यासार्थ मैं जंगलों पर्वतों में जाना चाहता था। बालक होने और पथप्रदर्शक न मिलने से उस समय पढ़ता ही रहा। लाहौर में जन्मशताब्दी पर स्वामी ब्रह्मानन्द जी की प्रेरणा पर और उनका पत्र लेकर आचार्य देवशर्मा जी की सेवा में गुरुकुल कांगड़ी हरद्वार पहुंच गया। एक मास तक उनकी सेवा में रहकर योगाभ्यास करता रहा। उनके चरणों में रहते हुए कुछ शंकायें भी करता रहता था। मैं उन दिनों नमक मीठा नहीं खाता था, जब तक मिलता तो गौ का घी दूध ही खाता था। उनका मेरे लिये आदेश हुआ कि मैं गाय का ही घी दूध खाने का व्रत लेलूं। मैंने उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर गाय का घी दूध खाने का ही व्रत ले लिया।''

ब्रह्मचर्यपालन का संकल्प

दसवीं श्रेणी उत्तीर्ण करने तक भगवान्सिंह पक्के आर्यसमाजी होगये थे। सत्यार्थप्रकाश का कई बार पारायण कर चुके थे। इन्हीं दिनों दीनदयाल स्वर्णकार (धर्मदेव के पिता) और मोतीराम आर्यसमाज में जाकर प्रतिदिन व्यायाम और कुश्ती करते थे। भगवान्सिंह भी इनसे बहुत प्रभावित थे और प्राय: इनके पास खड़े होकर देखते रहते थे। एक दिन दीनदयाल जी ने इनको अपने पास बिठाकर ब्रह्मचर्य और व्यायाम के सम्बन्ध में उपदेश दिया और कहा—''नौजवान हम तो बुढ़ापे की ओर बढ़ रहे हैं, तुम्हारा समय है, कुछ बनो और कुछ करके दिखाओ।'' सच्चे दिल से निकले उनके उद्‌बोधन ने अपना काम किया और भगवान्सिंह ने उसी दिन से ब्रह्मचारी रहकर कुछ कर गुजरने का संकल्प लिया।

धर्म-निर्णय पुस्तक का अध्ययन

इन्होंने दिल्ली दरीबा से ढूंढ़कर तहकीके धर्म (धर्म-निर्णय) पुस्तक खरीदी परन्तु इसका एक ही भाग वहां मिल पाया, दूसरा भाग इनके लिए सूबेदार शिवलाल मेरठ से लाये। इस पुस्तक ने तो मानो काया ही पलटदी। अब भगवान्सिंह नियमितरूप से व्यायाम, स्नान और सन्ध्या करने लगे। जीवन को साधना में ढालने लगे। परिणाम यह हुआ कि दुबले-पतले और यकृत् के रोगी भगवान्सिंह अब हृष्ट-पुष्ट होगये। अब इन्होंने प्रात: चार बजे उठने के लिये अलार्म घड़ी खरीदनी चाही। परन्तु पिताजी ने यह कहकर कि यह शौकीनी की वस्तु है, मना कर दिया। पर जब ये नहीं माने तो बाबू बनवारीलाल दिल्ली से अलार्म घड़ी दिलवाकर लाये। अब पिताजी भी धर्म-निर्णय पुस्तक इनसे सुनने लगे। इससे इन्हें इस तरह की पुस्तकें पढ़ने के लिये और भी उत्साह मिला।

महाविद्यालय के प्राध्यापक और उनकी देशभक्ति

सेंट स्टीफेन्स स्कूल से मैट्रिक उत्तीर्ण कर ये हिन्दू कॉलेज में प्रविष्ट होगये। यहां भी कई प्राध्यापक ऐसे मिले जिन्होंने इनकी देशभक्ति की भावनाओं को न केवल प्रोत्साहन ही दिया अपितु उनको कार्यरूप में परिणत करने के लिए भी प्रेरित किया। यहां अंग्रेजी भाषा के प्राध्यापक प्रो० एन.के. निगम थे। ये सरदार भगतसिंह आदि क्रान्तिकारियों के साथी थे। अनेक क्रान्तिकारी इनके घर आकर ठहरते थे किन्तु उस समय किसी को इस बात का पता न था। प्रो० निगम पढ़ाते

समय बहुधा देश की परिस्थितियों और उनमें युवकों के कर्त्तव्य एवं भूमिका के सम्बन्ध में बतलाते थे। वे बहुत गम्भीर व्यक्ति थे। इतिहास के प्रवक्ता प्रो० गणपतराय थे। प्रो० इन्द्रसेन भी इसी कॉलेज में थे जो बाद में पांडिचेरी के अरविन्द आश्रम में चले गये। ये सब खद्दर पहनते थे और राष्ट्रीय गतिविधियों में भाग लेते थे। विद्यार्थियों पर भी इनकी विचारधारा का प्रभाव होना स्वाभाविक था। भगवान्सिंह विशेषरूप से इनकी बातों से प्रभावित थे। यहां से आपने एफ.ए. (बारहवीं) पास किया।

कॉलेजशिक्षा का त्याग

एक दिन समाचार मिला कि २३ मार्च १९३१ को भगतसिंह को फांसी देदीगई है। जिस समय युवक भगवान्सिंह ने यह हृदयविदारक समाचार सुना तब ये एक पेड़ के नीचे बैठे पढ़ रहे थे। पुस्तक इनके हाथ से छूट गई। ये कुछ समय तो स्तब्ध हुये बैठे रहे। फिर वहीं बैठे-बैठे निश्चय किया कि अब आगे पढ़ना छोड़कर देश-कार्य में लगूंगा। इस समय केवल इन्होंने ही नहीं अपितु हजारों युवकों ने कॉलेज छोड़ दिये थे। भगतसिंह की फांसी युवकों के लिये एक बहुत बड़ी चुनौती बनकर आई थी। उस दिन सम्पूर्ण राष्ट्र शोक में डूब गया था। उन्हीं घड़ियों में भगवान्सिंह ने उस शिक्षा को तिलांजलि देदी जिसको भगतसिंह के हत्यारे अंग्रेजों ने भारतीयों को क्लर्क बनाने के लिये चला रखा था। इसीलिए भगवान्सिंह ने संकल्प लिया—**''हमें क्लर्क नहीं बनना, हमारी राह दूसरी है।''** इस निर्णय के साथ इन्होंने दिल्ली छोड़दी और गांव में रहकर ही आर्यसमाज और कांग्रेस का कार्य प्रारम्भ कर दिया।



द्वितीय अध्याय

राष्ट्रीय आन्दोलन में पदार्पण

यह सन् १९३१ का वह समय था जब परतन्त्रता में जकड़ा भारत अपने इस कलंक को मिटाने के लिए खड़ा होगया था। लगभग दो वर्ष पूर्व रामप्रसाद बिस्मिल, रोशन, लाहिड़ी और अशफाक फांसी का फंदा गले में डालकर शहादत देचुके थे। **''मेरी छाती पर पड़ी चोट अंग्रेजी साम्राज्य के कफन की कील बनेगी।''** लालाजी की मृत्युशय्या से दीगई यह चुनौती नवयुवकों को ललकार रही थी। वीर भगतसिंह की फांसी ने तो राष्ट्र को झकझोरकर रख दिया था। दूसरी ओर गांधी जी स्वदेशी आन्दोलन के द्वारा राष्ट्र में आजादी के लिए लड़ मरने की भावना जगाने हेतु मैदान में उतर चुके थे। १९२९ के लाहौर अधिवेशन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पास कर चुकी थी। अब उसकी प्राप्ति के लिए योजनाओं को मूर्तरूप देने की प्रक्रिया प्रारम्भ होचुकी थी। ऐसे समय में नवयुवक भगवान्सिंह ने कॉलेज छोड़कर चुनौतीभरे मार्ग में पदार्पण किया। दिल्ली में पढ़ते समय आर्यसामाजिककार्यों में भाग लेने और क्रान्तिकारी साहित्य पढ़ते रहने से इस कार्य के लिये इनकी मानसिक पृष्ठभूमि पहले ही से दृढ़ बनचुकी थी। अब इन्होंने अपनी पूरी शक्ति और समय इसी कार्य में लगाने का निश्चय कर लिया।

नमक और मीठे का त्याग

एक बार कांग्रेस की ओर से कार्य करने के लिए स्वामी स्वरूपानन्द जी महाराज नरेला आये। उन्होंने नरेला को केन्द्र बनाकर राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए कार्य आरम्भ किया। स्वामी जी को आर्यसमाज मन्दिर के कमरे में ही ठहराया गया। युवक भगवान्सिंह उनके निकट सम्पर्क में आये। स्वामी स्वरूपानन्द जी के तप त्यागमय जीवन से इनको बहुत अधिक प्रेरणा मिली। स्वामी जी की प्रेरणा से इन्होंने नमक और मीठे का सर्वथा परित्याग कर दिया। मिर्च पहले ही छोड़ चुके थे। जीवनभर इस व्रत को निभाने का इन्होंने प्रण किया। तब से जीवनान्त तक अपने इस प्रण पर अडिग रहे। कहने और सुनने में यह बात छोटी होसकती है किन्तु वे व्यक्ति भलीभांति जानते हैं कि इस प्रकार के व्रत निभाना कितना कठिन है, जिन्होंने जीवन में इस प्रकार के नियम निभाने का भरसक प्रयास किया

है किन्तु सफल नहीं होपाये। ज्ञान और कर्मेन्द्रियों पर काबू पाने के लिए जहां कई और तप आवश्यक हैं वहां जिह्वा के स्वाद पर नियन्त्रण सबसे अधिक आवश्यक है। देवपथ के पथिक के लिए कदाचित् यह प्रथम चुनौती है। इस चुनौती को भगवान्सिंह ने न केवल स्वीकार ही किया, अपितु इस पर सफलता भी पाई। इसके लिये वे अपने आपको स्वामी स्वरूपानन्द जी का आभारी मानते थे।

स्वामी स्वरूपानन्द जी गरीबों के सच्चे सेवक थे। वे कट्टर आर्यसमाजी और महर्षि स्वामी दयानन्द जी के परमभक्त थे। वे कहा करते थे कि हम तो केवल पांच आने में पढ़े हैं। रात्रि में केवल पांच आने का तेल जलाकर हमने अपनी पढ़ाई पूरी की है। वे जन्मना ब्राह्मण परिवार से थे परन्तु जातपात में उनका नितान्त विश्वास नहीं था।

इन्हीं स्वामी जी महाराज के संसर्ग में रहकर युवक भगवान्सिंह के संस्कार और अधिक पक्के हुये और इन्होंने अब जीवनभर ब्रह्मचारी रहकर देश-सेवा करने का संकल्प मन में धारण कर लिया। ये अब आर्यसमाज के कार्यों के साथ-साथ कांग्रेस की गतिविधियों में भी सक्रिय भाग लेने लगे। इन्होंने कांग्रेस के जलसों में भाग लेना और स्वयं जगह-जगह पर मीटिंगें करके राष्ट्रीय आन्दोलन को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

अंग्रेज सरकार तथा पिता जी से संघर्ष

युवक भगवान्सिंह की गतिविधियों पर अंग्रेज सरकार के गुप्तचरों की निगाहें रहने लगीं। गांववालों ने भी इनके पिता को कहा कि भगवान्सिंह को रोको अन्यथा घर पर आपत्ति आजायेगी। उस समय अंग्रेजों का बहुत दबदबा था और गांव के अधिकांश बड़े लोग उनके साथ सहानुभूति रखते थे, कुछ डर से तो कुछ लालच के कारण। कुछ गिने-चुने सिरफिरे लोग थे जो अंग्रेजों और उनके पिट्ठुओं से टकराने का साहस बटोर पाते थे। विशेषकर बड़े जमींदार तो अधिक ही डरते थे। इसका परिणाम ब्रह्मचारी भगवान्सिंह को भी भुगतना पड़ा। इनके पिता इनसे खिन्न रहने लगे। एक दिन ऐसा आया जब उन्होंने अपनी अप्रसन्नता बड़े कठोर शब्दों में प्रकट कर ही दी। घटना इस प्रकार घटी कि एक दिन युवक भगवान्सिंह माजरा डबास में हुये कांग्रेस के जलसे में बोलने गये। जलसे में बड़ी भीड़ थी। गुप्तचरों का होना स्वाभाविक था। भगवान्सिंह बड़े जोश में बोले और इन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष के लिए लोगों का आह्वान किया। लोगों को

इनका भाषण बहुत पसन्द आया। प्रतिक्रियास्वरूप बीच-बीच में अनेक बार तालियों की गड़गड़ाहट हुई। जलसा समाप्त होने के बाद जब ये घर लौटे, उससे पहले ही पिताजी को वहां की कार्यवाही का सब पता चल गया था। परिणाम यह हुआ कि पिताजी ने घर में घुसते ही क्रोध में तमतमाकर कहा—''यह सब नहीं चलेगा। मुझे देखते बहुत दिन होगये हैं। तुम्हें घर और कांग्रेस दोनों में से एक को चुनना होगा। घर छोड़दो अथवा कांग्रेस छोड़दो। अब यह तुम पर है, तुम क्या फैसला करते हो।'' भगवान्‌सिंह ने उस समय पिताजी की बात का कोई उत्तर नहीं दिया, चुप रहे। इन्हें यह तो आभास था कि पिताजी अप्रसन्न हैं किन्तु यह अनुमान उन्हें भी नहीं था कि पिताजी इतने कठोर होजायेंगे और मुझे इस कठिन परीक्षा में डाल देंगे। अस्तु! इन्होंने बहुत शान्तचित्त होकर इस पर विचार किया और दोनों ही न छोड़ने का निश्चय किया। सोचा पिताजी आज नहीं तो कल शान्त हो ही जायेंगे।

दूसरे दिन चौ० अभयराम (चौ० रामदेव के पिता) और इनके पिता जी ने इनको समझाने के लिए बिठा लिया। बहुत देर तक समझाते रहे कि आप कांग्रेस से नाता तोड़लें परन्तु ब्रह्मचारी भगवान्‌सिंह का अन्त में एक ही उत्तर था—''देखिये मैं आप दोनों का अत्यधिक आदर करता हूं किन्तु इसे मेरी धृष्टता मत मानिये, मेरे विचार ऐसे हैं। मुझे चाहे फांसी लगे मैं कांग्रेस नहीं छोड़ सकता।'' पिताजी पुत्र के स्वभाव से भलीभांति परिचित थे इसलिये उन्होंने फिर कभी इन पर इस प्रकार का दबाव नहीं डाला और ये कांग्रेस के काम में और अधिक उत्साह से जुट गये।

नमक-सत्याग्रह का समर्थन

महात्मा गांधी की लोकप्रियता चरम उत्कर्ष पर थी। गांधी जी द्वारा आरम्भ किया गया ''नमक-सत्याग्रह'' प्रबल जन-आन्दोलन का रूप धारण कर चुका था। गांधी जी के इस सत्याग्रह से लगभग ५० वर्ष पहले महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने ''प्रथम सत्यार्थप्रकाश'' में नमक-कर के विरोध में लिखकर इस दिशा में जन-जागरण की नींव डालदी थी। इसके कारण सभी आर्यसमाजी नमक-कर विरोधी सत्याग्रह में सबसे आगे आये और उन्होंने गांधी जी के इस सत्याग्रह को जन-जन तक पहुंचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। परिणामस्वरूप विरोध प्रकट करने हेतु देश में जगह-जगह पर नमक बनाया जाने लगा। दिल्ली में सीलमपुर में

नमक बनने लगा। युवक भगवान्‌सिंह भी नमक देखने सीलमपुर गये। वहां से लौटकर इन्होंने अपने अन्य युवक साथियों को एकत्र करके नरेला में भी नमक बनाना प्रारम्भ किया। इस रूप में इन्होंने एक महान् राष्ट्रीय-यज्ञ का शुभारम्भ नरेला में कर दिया। इनके इस कार्य में सैकड़ों लोगों ने भाग लिया। इसी के साथ नरेला में कांग्रेस का एक बड़ा संगठन बन गया। इस संगठन में युवकों का नेतृत्व भगवान्‌सिंह ने ही सम्भाला। नित्य प्रातः प्रभातफेरी निकालने का नियम बना लिया। इन प्रभातफेरियों में भाग लेनेवाले लोग आज भी ब्रह्मचारी जी के उत्साह को याद कर प्रसन्न हो उठते हैं। प्रभातफेरी के लिए सबको एकत्र करना और पूरे नरेला गांव को गांधी जी व राष्ट्रीय नारों से गुंजा देना इनके नित्यकर्म में सम्मिलित होगया। दिनभर कांग्रेस के जलसों में व्याख्यान देकर पूरे क्षेत्र में कांग्रेस एवं आजादी के लिए विशेष कार्य किया। थोड़े ही दिन बाद नरेला में माता कस्तूरबा पधारीं। उनके सामने जलसे में ब्रह्मचारी भगवान्‌सिंह और इनके साथियों ने योगासन और लाठी चलाने का प्रदर्शन किया। माता कस्तूरबा इनसे बहुत प्रभावित हुईं और उन्होंने इनको अपने हाथ से पारितोषिक दिया।

नरेला में कांग्रेस का कार्य

लोग पहले-पहल नरेला में कांग्रेस के कार्यों में भाग लेने से डरते थे परन्तु थोड़े दिन बाद स्वामी स्वरूपानन्द जी की प्रेरणा, कार्य और उत्साहवर्धन तथा भगवान्‌सिंह आदि युवकों के परिश्रम से ऐसी स्थिति पैदा होगई कि उसी नरेला में अब लोगों में कांग्रेस का कार्य करने के लिए प्रतिस्पर्धा पैदा होगई। एक समय ऐसा भी आया जब नरेला में ६९ आदमी गिरफ्तार हुये, इनमें सनोठ निवासी मास्टर राजेराम भी थे। बाद में श्री नत्थवा तथा श्री गोपाल ने कांग्रेस के काम के लिये नम्बरदारी छोड़ी और जेल गये। नत्थवा के सुपुत्र श्री हरनन्द, श्री जयलाल स्वर्णकार, श्री रतिराम (स्वामी ईशानन्द सिंघोलावासी) और पं० टेकचन्द आदि अनेक लोगों ने जेल-यातनाएं सहन कीं।

आर्यसमाजियों पर अंग्रेज सरकार के झूठे मुकदमे

जेल जानेवाले प्रत्येक आर्यसमाजी और कांग्रेसी पर अंग्रेज सरकार ने झूठे मुकदमे बनाये और गांव से ही शिनाख्ती गवाह भी तैयार कर लिये। समस्या उस समय बहुत भयावह बन गई जब स्वयं भगवान्‌सिंह के पिता चौ० कनकसिंह भी सरकारी गवाह बना लिये गये। लोगों ने व्यंग्य करना प्रारम्भ किया। भगवान्‌सिंह ने

इसके विरुद्ध अनशन कर दिया। पिता ने पुत्र का आग्रह माना और प्रतिज्ञा की कि मैं भविष्य में सरकारी गवाह नहीं बनूंगा, न ही सरकार की कोई सहायता करूंगा। इसके उपरान्त चौ० कनकसिंह भी प्रत्यक्षरूप में कांग्रेस के सहयोगी बन गए। इनके अपने घर का कुलपुरोहित पं० रविदत्त था, जो कांग्रेसवालों के खिलाफ गवाही देता था, उसको भी भगवान्‌सिंह ने विरोध में गवाही न देने के लिए तैयार करने का प्रयास किया किन्तु वह नहीं माना। इसी कारण इन्होंने उसका अपने घर से पुरोहिताई का सम्बन्ध समाप्त कर दिया। अन्ततोगत्वा उसको भी अपनी भूल पर पश्चात्ताप हुआ। कांग्रेस के कार्यकर्ताओं पर बननेवाले मुकदमों के गवाहों को तोड़ने का काम सदा ही भगवान्‌सिंह अपने ऊपर लेते रहे और उसमें उन्हें सदा सफलता मिली।

मेरी योगजिज्ञासा की वार्ता

(ब्रह्मचारी भगवान्‌देव की जुलाई १९३६ की संचिका से)

गुरुकुल वृन्दावन की यात्रा

मैंने पूज्य पंडित प्रियरत्न जी आर्ष (बाद में स्वामी ब्रह्ममुनिपरिव्राजक) की "**योगमार्ग**" तथा "**क्रियात्मक विज्ञान**" पुस्तकें पढ़ीं, तब से उनके दर्शन की तथा उनके पास रहकर योग सीखने तथा उनके बताये मार्ग के अनुसार अभ्यास करने का विचार था। मेरे मित्र पं० हरिनाथ जी शास्त्री उनसे लाहौर दयानन्द ब्राह्ममहाविद्यालय में पढ़े थे। उनके द्वारा पता चला कि पं० प्रियरत्न जी गुरुकुल वृन्दावन में वेदभाष्य का कार्य कर रहे हैं। शास्त्री जी गुरुकुल गये और मेरे विषय में पंडित जी से वार्तालाप किया। उन्होंने अनुमति देदी। मैंने भी सङ्कल्प करलिया कि मैं और शास्त्री जी स्कूल की छुट्टियां होने पर गुरुकुल जायेंगे। फिर शास्त्री जी ने पंडित जी को इस विषयक पत्र लिखा, किन्तु किसी कारण पंडित जी ने उत्तर न दिया। मैंने अपने आपको भाग्यहीन समझा। पंडित जी थे गुरुकुल में ही। शास्त्री जी, मा० धर्मसिंह जी गुरुकुल पहुंच गये। मैं कुछ निराश (थोड़ा-सा) होगया। फिर शास्त्री जी का पत्र पहुंचा जिसमें मुझे गुरुकुल पहुंचने के लिए तथा पंडित प्रियरत्न जी की अनुमति (स्वीकृति) के विषय में लिखा था। मैं शीघ्र समाज, दुकान तथा कांग्रेस आदि के कार्य ठीक-ठाक कर ३ जुलाई को प्रातःकाल वृन्दावन के लिए सवार होगया। मेरे अन्दर बड़ा उत्साह था। मैं मथुरा भूतेश्वर स्टेशन पर उतरा और पैदल ही ६ मील गुरुकुल पहुंच गया। मार्ग में वर्षा आई,

किन्तु मेरा उत्साह नहीं टूटा। वजन काफी था, कुछ थकावट हुई। वृन्दावन समाजमन्दिर पहुंचकर कुछ त्राटक किया। यह मैंने पूर्व से ही आरम्भ कर रक्खा था। मार्ग में इस दिन नहीं होसका था। फिर गुरुकुल में स्नानार्थ गया तथा शास्त्री जी तथा पंडित प्रियरत्न जी से मिलना था।

गुरुकुल के मुख्यद्वार पर मेरे सौभाग्य से पं० प्रियरत्न जी के ही दर्शन सबसे पूर्व हुए। फिर स्नानादि किया। फिर पण्डित जी से अभ्याससम्बन्धी वार्तालाप हुआ। मैं इन दिनों प्रातःकाल १८ वा २० तथा सायंकाल प्रायः ७ वा ८ प्राणायाम किया करता था। पण्डित जी ने प्रातःकाल १० तथा सायं ५ (पांच) अधिक से अधिक करने को कहा। तथा तीन दिन प्रातः-सायं दोनों समय कान-आंख बन्द कर १० वा १५ मिनट अन्तर्ध्वनि सुनने को कहा। मैंने उसी दिन यह अभ्यास शुरू कर दिया। प्राणायाम पहले कभी-कभी लगातार करता था, अब वैसे करना बन्द कर दिया। जिस दिन गर्मी अधिक होती थी उस दिन कम करता, किन्तु मेरी प्राणायाम घटाने की इच्छा नहीं थी, क्योंकि मेरे पूज्य गुरु आचार्य देवशर्मा जी की इतना करने की आज्ञा थी और मैं इसे अधिक नहीं समझता था। पं० प्रियरत्न जी ने जो शंकाओं का समाधान किया तथा जो उपदेश दिया वह निम्नलिखित है—

१. **प्रश्न**-अभ्यास के समय भोजन कैसा करना चाहिये?
   उत्तर-भोजन सात्त्विक गेहूं, चावल, गाय का दूध, घी, दही आदि तथा साग-सब्जी, फल खाने चाहियें। लालमिर्च आदि मसाले, प्याज, लहसुन आदि सब चीजें तथा अजीर्ण करनेवाले भोजन का निषेध किया।

२. **प्रश्न**-शीर्षासन कितने समय तक करें?
   उत्तर-दो वा तीन मिनट, अधिक नहीं। इससे अधिक करने से आंखों को हानि होगी। जिसे कोई श्वेत बाल आदि का रोग हो, उसे अधिक करना चाहिए।

३. **प्रश्न**-योग का ग्रन्थ कौन-सा पढ़ना चाहिये?
   उत्तर-योगदर्शन (पतञ्जलिमुनिकृत), वाचस्पतिमिश्र तथा व्यासभाष्य का स्वाध्याय करें।

पंडित जी ने सायंकाल भोजन के पश्चात् मिलने का समय देदिया। मैंने अन्तर्ध्वनि का अभ्यास आरम्भ कर दिया। तीन दिन (छः बार) यह अभ्यास किया। क्रमशः आवाज साफ सुनाई देने लगी। तीसरे दिन अच्छी प्रकार सुनाई देने लगी।

८ जुलाई—फिर कर्पूर का अभ्यास (गन्धतन्मात्रा) आरम्भ कर दिया। पहले दिन कर्पूर की गन्ध थोड़ी देर तथा तेज कुछ ठंडी-सी ज्ञात होती। सायंकाल गंध कुछ सुहावनी प्रतीत हुई। पण्डित प्रियरत्न जी आर्ष से दिन में उनके कमरे में वार्तालाप हुआ। जनेऊ (यज्ञोपवीत), चोटी, मेखला के विषय में प्रश्न किये।

उत्तर-यज्ञोपवीत में सूत्र (धागे) तीन होने चाहियें, छः रखना मूर्खता है। चोटी मर्मस्थान पर रक्षार्थ होती है, किन्तु अब तो केवल चिह्नरूप रहगई है। आर्यों अनार्यों में भेद ज्ञान के लिए होती थी। मेखला के स्थान पर केवल लंगोट रहगया। यह पुरुषार्थ ब्रह्मचर्यपालन कटिबद्धतार्थ होती थी।

प्रश्न-आर्षग्रन्थ कौन-सा पढ़ना चाहिये, जिससे संस्कृत का बोध बढ़े?

उत्तर-वह तो पढानेवाले की बुद्धि के अनुसार लेने चाहियें।

इस दिन पं० विश्वेश्वर जी दर्शनाध्यापक गुरुकुल वृन्दावन से योगदर्शन (समाधिपाद) पढना आरम्भ किया। केवल एक पहला सूत्र इस दिन पढ़ा। सायंकाल कर्पूर के अभ्यास में अधिक आनन्द आया, समाजमन्दिर में किया था। इस दिन यह ध्यान किया कि कर्पूर की गन्ध किस स्थान को छूती है तथा उसका स्पर्श कुछ कर्पूर की गन्ध से सुहावना ज्ञात हुआ।

९ जुलाई—इस दिन कर्पूर के अभ्यास में कुछ रोचकता आई। कर्पूर की गंध तीन बार ली। कर्पूर की गन्ध से विभिन्न गंध (तथा रोचक) आने लगी। सायंकाल रोचकता कुछ बढ़ी किन्तु गन्ध कुछ सूक्ष्म होगई। आज अभ्यास में १८ वा १६ मिनट प्रातः तथा सायंकाल दोनों समय में लगाये। पं० प्रियरत्न जी से भी वार्तालाप किया। उन ने मेरा उत्साह बढाया कि लगे रहो, तुम्हें शीघ्र ही सफलता होगी। मन थोड़ा-थोड़ा गन्ध को पकड़ने लगा।

१० जुलाई—को कर्पूर की गंध दो बार ली तथा बीस मिनट सायं प्रातः अभ्यास किया, मन को केन्द्र में रक्खा तथा यह अनुभव किया कि कर्पूर की टक्कर कहां लगती है तथा उसका स्पर्श कैसा है? गंध की रोचकता तथा सूक्ष्मता बढ़ती गई।

११ जुलाई—केवल गंध एक बार सूंघी तथा गंध सूंघने से पूर्व ही मन को २ मिनट तक नाक के केन्द्र पर रक्खा था। आज अभ्यास २५ मिनट तक किया। अभ्यास के पश्चात् ओ३म् वा गायत्री मन्त्र का जप मानसिक करता था। गंध में रोचकता तथा सूक्ष्मता बढ़ी।

दिन में पंडित जी (आर्ष जी) से मिला, किन्तु वार्तालाप नहीं हुआ।

सायंकाल भोजन के पीछे मिलने गया, किन्तु नहीं मिले। प्रतीक्षा भी की, किन्तु वे मिले नहीं। मैं आकर सोरहा, क्योंकि प्रातः डीग जाना था। आज योगदर्शन अधिक पढा। नारायण स्वामी जी का भाष्य पढ़ना आरम्भ कर दिया। योगमार्ग, राजयोग आदि (स्वामी विवेकानन्द) का स्वाध्याय किया। योगदर्शन उर्दू का (जगदीशचन्द्र वाचस्पति) भाष्यकार का भाष्य पढकर समाप्त किया।

१२ जुलाई—यह अभ्यास का ५वां दिन था। इस दिन कर्पूर प्रातः १ वा ३/४ घंटा पूर्व अभ्यास से और सायंकाल तीन वा ढाई घण्टे पूर्व डीग (भरतपुर राज्य) जाकर सूंघा। इस दिन कर्पूर की गंध से अत्यन्त भिन्न तथा अत्यन्त सूक्ष्म गंध आई। इस दिन मन गंध को बहुत थोड़ा पकड़ता था तथा थोड़ा जमता था। थोड़ा कुछ सफलता में कुछ संशय-सा होने लगा। डीग जाने से पूर्व पंडित जी (आर्ष जी) से मिला। उनने अभ्यास के विषय में पूछा तथा यह कहा डीग जाना व्यर्थ-सा ही है। मैंने कहा मेरे साथी जारहे हैं, फिर उन्होंने कुछ उत्तर न दिया, किन्तु यह कहा कि अभ्यास दोनों समय करते रहो। मन को नाक के केन्द्र पर टिकाये रक्खो तथा गंध का मन द्वारा ध्यान लगाकर स्पर्श आदि विचार करो। मन को इधर-उधर न जानेदो। जहां जाये, तुरन्त पकड़लो और वहीं लगादो, इधर-उधर न जानेदो। श्रद्धापूर्वक लगे रहो, सफलता अवश्य होगी। अभ्यास व्यायाम से पूर्व किया करो। व्यायाम से थकावट होकर तथा गर्मी के कारण मन नहीं लगता। अधिक गर्मी हो तो प्राणायाम न करो। मैंने इस दिन डीग में अपनी प्रतिज्ञा के विरुद्ध शास्त्री जी के विश्वास पर उनके ससुर के घर भैंस के घृत की पूरी खा ली। मुझे शास्त्री जी ने सायंकाल बताया। मैंने सायंकाल भोजन नहीं किया तथा मन में यह विचार किया कि इसका कुछ न कुछ प्रायश्चित्त अवश्य करूंगा। मेरे मन में यह विचार आया कि सात दिन घी (न) खाऊंगा व मौनव्रत आदि रक्खूंगा।

भरतपुरराज्य डीग में तालाब पर अभ्यास, स्नान आदि में बड़ा आनन्द आया। मन में यह विचार आया काश ऐसा तड़ाग नरेले में हो, क्या ही आनन्द की बात हो। डीग में भरतपुर राज्य के महल तथा तालाब, बाग, दुर्ग आदि देखे, जो अच्छे थे। डीग शहर तथा वहां का हिन्दी पुस्तकालय तथा समाजमन्दिर आदि देखे। वहां के समाज के कार्यकर्ता से मिला। रात्रि को शास्त्री जी के ससुर ने राजा किशनसिंह उसके पिता रामसिंह तथा पितामह जसवन्तसिंह के हालात सुनाये। जसवन्तसिंह के अतिरिक्त वह दोनों अच्छे नहीं थे। जसवन्तसिंह चार बजे उठता, खूब व्यायाम करता, अखाड़े में मिट्टी आदि लगाकर स्नान करता, पाव भर मक्खन

तथा मिश्री नित्यप्रति खाता, तख़्त पर सोता, अत्यन्त प्रजाप्रिय, न्यायकारी, दयालु था। नौकर को सजा जरूर देता, किन्तु नौकरी से नहीं हटाता, अनाथों का रक्षक था।

१९ जुलाई—इस दिन प्रात:काल तो अभ्यास में थोड़ी रोचकता थी तथा सूक्ष्मता अधिक थी। आनन्द भी थोड़ा आया, मन भी थोड़ा-थोड़ा लगा। यह डीग तड़ाग पर किया था। कुछ मन में संशय होगया, किन्तु अभ्यास ५० मिनट किया। केवल करना ३५ मिनट था। रात्रि को जब बीच में आंख खुली, तब कर्पूर सूंघा था, वा अभ्यास से उठते समय। फिर इसके पीछे कर्पूर सूंघना बन्द कर दिया। वहां से लौटकर पंडित प्रियरत्न जी से मिला। वार्तालाप हुआ। उन ने अभ्यास के विषय में पूछा। उन ने मेरा उत्साह बढ़ाया और कहा तुम्हें सफलता अवश्य होगी, श्रद्धापूर्वक लगे रहो। तुम्हें बतानेवाले हैं। मुझे बड़ी कठिनता हुई थी। मैं हठयोगियों से, दार्शनिकों से मिलता था। किसी ने पंचतन्मात्रा (योगदर्शन में हैं) के विषय में कुछ भी नहीं बताया। मेरे मन में स्वयं यह समझ आगई और मुझे सफलता हुई। अब तो बहुत-से सज्जनों ने इसका अभ्यास किया है तथा सफलता प्राप्त की है। आप घबरायें नहीं।''

गुरुकुल काङ्गड़ी के ब्रह्मचारियों ने तथा पं० देवराज जी ने पंचतन्मात्रा में सफलता प्राप्त की। मन को नाक के केन्द्र पर रखो। गन्ध के स्पर्श आदि का विचार ध्यानपूर्वक करो। ज्यों ही गन्ध आये, मन को तुरन्त वहीं टिकाकर पकड़ लो। मन को कहीं न जाने दो और खूब ध्यान लगाकर उसका अनुभव करो। व्यायाम से पूर्व अभ्यास करो। गर्मी अधिक है। व्यायाम प्राणायाम न करो। केवल प्रात:काल भी थोड़ा करो। गर्मी में मेरा (पं० प्रियरत्न जी का) भी मन सन्ध्या में थोड़ा लगता है अथवा सन्ध्या भलीभांति नहीं होती।

सायंकाल मैंने स्नानकर गाय का ताजा दूध १ सेर पिया। फिर जमना के तट पर अभ्यास किया। अत्यन्त आनन्द आया। मन को गंध का अनुभव अधिक तथा रोचक हुआ। मन में बड़ा आनन्द आया। मन खूब लगा और संस्कार भी पीछे देर तक बना रहा। कुछ गर्मी थी, मच्छर काटते थे। प्राणायाम, व्यायाम नाममात्र किये। फिर सन्ध्या के पीछे गुरुकुल आया। पं० प्रियरत्न आर्य मार्ग में मिले। फिर अभ्यास के विषय में पूछा। मैंने सब कुछ बताया। वे प्रसन्न हुए और मेरा साहस बढ़ाया तथा यह उपदेश दिया कि तुम्हें रसतन्मात्रा आदि कार्यरूप को करने की आवश्यकता नहीं, केवल कारणरूप करते जाइये। गंध के पीछे रस रूप आदि का स्वयं अभ्यास होजायेगा। मन अभ्यास में जिधर जाये, जाने दो और ध्यानपूर्वक

तन्मात्राओं का कारणरूप में अभ्यास करते हुए प्रकृति के परमाणु तक पहुंच जाओ, फिर ग्रहणमार्ग की योग्यता आती जायेगी। सायंकाल जमना पर देर तक न बैठो, अन्धेरा तथा जंगली जीव-जन्तु का वैसे तो हमें कोई डर नहीं, किन्तु सावधान रहना चाहिये।

मैं देर से अभ्यास करके आया था। मैंने योगरहस्य मार्ग में पढ़ा तथा योगदर्शन स्वयं तथा पं० विश्वेश्वर जी से पढ़ा और उनसे वार्तालाप भी हुआ।

१४-१५-१६ जुलाई—इन दिनों पं० विश्वेश्वर जी से योगदर्शन साधनपाद पढ़ा। उनके बड़े भाई क्षमानन्द जो आजकल नंगे रहते हैं, एक धोती बांधते हैं। तीन वर्ष से स्नान नहीं किया। पहिले कपड़े धोते तथा बदलते नहीं थे। अन्त में फट जाता था, टुकड़े होजाते थे, तब दूसरा लेते थे। कांग्रेस के मुख्य कार्यकर्ता थे। ''त्यागभूमि'' पत्र के संपादक थे। मद्रास तथा अजमेर से ४ वर्ष, २ वर्ष की कैद काटकर आये थे, तब से वैराग्य है। हर समय कुछ विचारते हैं। दोनों समय पर्याप्त मात्रा में पक्का भोजन मिठाई वा पूड़ी आदि खाते हैं। कुछ वर्ष से पढ़ने लगे, पहिले नहीं पढ़ते थे। अब भी लिखते नहीं। बी.ए. पास हैं इस प्रकार कई वर्ष से रहते हैं। पहिले खाट पर बैठे रहते थे, अब थोड़ा टहलते भी हैं। गूढ विचारों में निमग्न रहते हैं और मस्त हैं। भोजन खूब हजम होता है। विवाह नहीं किया है। रेल में सफर सेकेंड क्लास में करते हैं। सोना.....

पं० प्रियरत्न जी ने सारा वृत्तान्त परमानन्द का उपदेश आदेश देकर अपनी पुस्तक पढाकर सुधारने का बताया। वह अमेरिका डचगयाना का है, छठी श्रेणी में है। पढने में अत्यन्त कमजोर आवारागिर्द, अत्यन्त चरित्रहीन था। कुछ सुधार का सुपना पर आया। तेजोनरायण अध्यापक ने उससे बलात्कार किया। उसे पं० प्रियरत्न जी ने अपनी जान खतरे में डालकर वीरतापूर्वक प्रयत्न करके निकलवाकर छोड़ा। उसकी पार्टी के गुण्डे मास्टरों तथा लड़कों ने पं० प्रियरत्न जी को बदनाम करने का खूब प्रयत्न किया, किन्तु कुछ नहीं हुआ। सत्य की जय हुई। पण्डित जी पूर्ण प्रयत्न कर रहे हैं कि इस लड़के को यहां के गुरुकुल (व्यभिचारशाला) से निकालकर लाहौर ब्राह्ममहाविद्यालय में भिजवादूं। उसके पिता से पत्रव्यवहार कर रहे हैं। पण्डित जी ने सब लड़कों तथा अध्यापकों से बोलना बन्द कर रखा है। गुण्डे लड़के पंडित जी पर भी आवाजें कसने लग गये थे। परमानन्द लड़के को भी ये लड़के तथा आश्रम अध्यक्ष वीरेन्द्र खूब तंग करते हैं। उसे गिराने का प्रयत्न करते हैं। सुना जाता है वह पक्का है। उसे अच्छी पुस्तकें पढ़ने नहीं देते। न

कुछ अन्य प्रार्थना वा भजन आदि पढ़ने देते हैं। गुरुकुल की इस दुर्दशा को देखकर तथा सुनकर बड़ा दुःख हुआ। करता क्या, अशक्त था। पंडित जी ने लड़के के पत्र, कुछ उपदेश आदि दिखाये तथा सुनाये। पण्डित जी का साहस सराहनीय है। गुरुकुल के आचार्य आदि योग्य नहीं, व्यवस्था अत्यन्त खराब है। लड़के उद्दण्ड, चरित्रहीन, आवारागिर्द, पतित होते हैं। गुरुकुल के अधिकारी, कर्मचारी कोई सन्तुष्ट नहीं, न किसी को कुल की उन्नति का ध्यान है। महाविद्यालय में कई ब्रह्मचारी भूदेव, चन्द्रदेव (रोशनसिंह शहीद के पुत्र) आदि अन्य कुछ खद्दर पहिनते हैं। स्वाध्यायशील, प्रेमी, गुणग्राहक आदि दीखते हैं। भूदेव जी ने संस्कृत का बोध बढ़ाने को कहा तथा स्वयं सहायता करने को भी कहा। (A Sanskrit guide published in Gurukul Kangri) की पुस्तक खरीदने को कहा। उनको पढ़ाने की इच्छा थी, किन्तु थोड़े दिन ठहरना था, अतः ऐसा नहीं किया।

अभ्यास में पहिले की अपेक्षा अधिक मन लगा तथा गंध मधुर, रोचक, सूक्ष्म प्रतीत होने लगी। मुख में मीठा पानी आने लगा, जिससे कई बार खांसी उठती थी तथा मन नाक के केन्द्र से हट जाता। मन अन्त तक गंध का अनुभव करता था। कई बार बीच में हटता अवश्य रहता था। गन्ध नाक के केन्द्र पर मन के जमते ही आने लगती थी। सायं गर्मी के कारण व्यायाम, प्राणायाम नाममात्र करता था। केवल आधा सेर ताजा दूध अभ्यास से पूर्व पीता था। अभ्यास के समय गर्मी अधिक लगती तथा पसीना अधिक आता था।

पं० प्रियरत्न जी अभ्यासविषय में पूछते रहते तथा उपदेश आदि देते रहते। मेरा उनसे एक-एक घण्टे तक वार्तालाप होता था। उनका उपदेश यह था कि मन को सदा केन्द्र पर रखो, गंध पर टिकाये रखो, इधर-उधर न जाने दो, मैंने बताया कि जिह्वा पर कुछ मीठा-सा रस आता है तथा गन्ध के आनन्द के कारण होठ थोड़े खुल जाते हैं। उनने बताया मन उधर न जावे। आगे रस तन्मात्रा की भूमि है, इसलिए यह रस आता है। मन को केन्द्र पर रखो। कभी कच्ची भूमि बदल जाय। रविवार के पीछे बदलना। मैंने प्रतिज्ञा करली, कच्ची भूमि नहीं बदलूंगा। मन केन्द्र पर ही रखने का प्रयत्न करूंगा कि कपूर की गंध का ध्यान न करूं, उसे भूल स्वयमेव कारण गंध आयेगी। ध्यान करो कि केन्द्र पर से छोटे-छोटे परमाणु गंध के टूटकर जाते हैं। गन्ध का निरीक्षण करो। प्रातःकाल अधिक बैठो। मन को गन्ध से हटने दो। संस्कार पीछे तक जमा रहता है।

इन दिनों योगदर्शन, सोमसरोवर, राममूर्ति की व्यायाम, योगमार्ग, मोक्षसाधन (स्वामी सियाराम जी) आदि की पुस्तकों का स्वाध्याय किया।

पं० प्रियरत्न जी ने मुझे दयानन्द ब्राह्ममहाविद्यालय में पढने के लिए कई बार जाने को कहा, स्वयं सिफारिश लिखने तथा होसका तो छात्रवृत्ति दिलाने को कहा। मैंने समाज व गृहकार्य के कारण विवशता दिखाई। उनने कहा—परवाह न करो, संसारार्थ सब कुछ छोड़ देना चाहिये। मैंने नियम टूट जाने की विवशता दिखाई। मैंने सब घर के हालात बताये और पूछा यदि मैं सारी आयु ब्रह्मचारी रहूं तो कुछ पाप का भागी तो न हूंगा। हम बहिन भाई की भांति रह सकते हैं।

उत्तर—नहीं, उससे कोई सम्बन्ध न रखो। पाप कोई नहीं। पढने में मन लगावो। उस (स्त्री) के साथ रहने से गिरने की सम्भावना है। आप से संसार को अधिक लाभ पहुंच सकता है। आप उपदेशक बनकर बहुत कार्य कर सकोगे। आपको आगे अभ्यास (आम-केले) रसतन्मात्रा का परीक्षण करने की कोई आवश्यकता नहीं। आपको इसी प्रकार अभ्यास करते-करते सब तन्मात्राओं का अभ्यास होजावेगा। अपने गन्ध (कर्पूर, तुलसी आदि) रसतन्मात्रा (बर्फ) के परीक्षण का वृत्तान्त बताया। हिप्नोटिज्म आदि का प्रयोग चिकित्सा अथवा जीवनसुधार में कर सकते हैं।

नोट—पण्डित जी ने अपने जीवन का वृत्तान्त भी बतलाया, उसको यहां छोड़ दिया है।

इनके उपदेश से मैंने यह समझा कि यह योगमार्ग कठिन (दुर्लभ) है। विशेषप्रयत्न चाहिये। अभी तो मेरे अन्दर बहुत त्रुटियां हैं।

पं० प्रियरत्न जी ने बताया—मन को केन्द्र में रखो। कर्पूर, पीपरमेंट आदि की गंध आये तो सूक्ष्म ध्यान द्वारा निकाल मन को केन्द्र पर रखते हुए गंध के विभाग बनाओ। एक अणु को लेकर उसके अन्दर घुस जाओ। गंध का ध्यान रक्खो कि कैसी है। गंध को ऊपर की ओर चढ़ादो। जब अत्यन्त अधिक आनन्द आये जिसे तुम सहन न कर सको और मन जिह्वा की ओर बलात् जाने लगे वा जिह्वा पर रस आने लगे, गर्मी के कारण तथा मक्खी, मच्छरों के अधिक होने से अभ्यास में धीरे-धीरे सफलता होती नहीं। पण्डित जी ने मुझे श्री दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय में जाने के लिए बार-बार प्रेरणा की। मैंने कहा विचार कर यह कार्य करना चाहिए।

ब्रह्मचारी भगवान्देव की दिनचर्या

(१ जुलाई १९३६ से १८ अगस्त १९३६ तक)

प्रात: ४ बजे उठना, रात्रि को १० बजे सोना, रात्रि को भोजन न करके केवल दूध पीना।

प्रात:काल ईश्वर का ध्यान, व्यायाम, प्राणायाम, स्नान, सन्ध्या अग्निहोत्र, स्वाध्याय आदि करना। पं० टेकचन्द जी (नरेला) और स्वामी स्वरूपानन्द जी और मा० धर्मसिंह जी से कांग्रेस पार्टी के सदस्य बनाने में विचार-विमर्श करना तथा विद्यार्थियों को ब्रह्मचर्य, आचार, सत्संग, स्वाध्याय आदि का उपदेश देना। गोघृत और गोदुग्ध के सेवन का नियम किया तथा इनके न मिलने पर सूखी रोटी आम के साथ खाना। सायंकाल जौ का सेवन करना। इनका पेट बचपन से ही खराब रहता था, अत: तीन-चार बार शौच जाना पड़ता था। कांग्रेस के प्रचार के साथ-साथ चरखा कातने का कार्य भी करते थे। एक अगस्त १९३६ को प्रतिज्ञा की कि खाट पर नहीं बैठना है सो यह नियम ४ अप्रैल १९७० तक संन्यास दीक्षा तक लगातार चलता रहा। १ अगस्त १९३६ को ही यह नियम भी किया कि दिन में कभी नहीं सोऊंगा।

इन्हीं दिनों गुरुकुल वृन्दावन में रहकर पं० प्रियरत्न जी आर्ष (स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक) से योगाभ्यास सीखते रहे तथा पं० विश्वेश्वर जी से योगदर्शन पढ़ते रहे। उसी समय काशी के गोसाईं जी से भी दर्शन पढ़ा।

पैदल यात्रा

गुरुकुल वृन्दावन से देहली की ओर पैदल यात्रा आरम्भ कर दी। २४ मील दूर कोसी पहुंचकर विश्राम किया। शरीर और पैरों में थकावट होगई। अगले दिन प्रात: केला खाकर पैदल चल दिये। दोपहर को जौ का कच्चा आटा पानी में घोलकर पिया और सायंकाल तक २६ मील चलकर पलवल पहुंचे।

पलवल में ब्रह्मचारी प्रकाशस्वरूप (हरयाणा) तथा मा० स्वरूपसिंह जी (जीन्दवालों) के दर्शन किये और योगविषय पर वार्तालाप किया। ब्रह्मचारी प्रकाशस्वरूप को लंगोटबंध देखकर त्यागवृत्ति अपनाने की भावना जागी। उसी समय मार्ग में यह प्रतिज्ञा करली कि साइकल पर नहीं चढ़ना है। पलवल में ब्रह्मचारी प्रकाशस्वरूप, मा० स्वरूपसिंह तथा अन्य सज्जनों को व्यायाम, प्राणायाम सिखाया। दिन में पलवल शहर तथा आर्यसमाज का पुस्तकालय देखा। पुस्तकालय

से धार्मिक ट्रेक्ट खरीदे। ब्रह्मचारी प्रकाशस्वरूप, मा० स्वरूपसिंह तथा अलीगढ़वाले शास्त्री जी से खद्दर पहनने की प्रतिज्ञा कराई। मा० स्वरूपसिंह ५ मील तक पैदल साथ चले। स्वयं विना घी के सूखी रोटी खाई और सायंकाल बदरपुर पाठशाला में २६ वा २७ मील पैदल चलकर पहुंचे। पैदल चलने का अभ्यास न होने के कारण तथा नंगे पैर रहने से पैरों में थकावट और दर्द होगया।

सायंकाल में आचार्य देवशर्मा जी, श्री गोपाल, पं० शिवलाल जी तथा भगत जी ग्राम दीघोट (रसूलपुर, पलवल) से भेंट हुई। मार्ग में गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ भी देखा। पलवल पाठशाला में कुछ उपदेश भी दिया। बच्चों को आसन, प्राणायाम सिखाये तथा पाठशाला की व्यवस्था हेतु सम्मति दी। बदरपुर पाठशाला से प्रात: फल दूध खा-पीकर यात्रा आरम्भ करदी तथा २७-२८ मील की यात्रा की। रात्रि को ग्यारह बजे पहुंचने से योगाभ्यास थोड़ी देर तक ही किया।

इस पूरी यात्रा में सन्ध्या, स्वाध्याय, प्राणायाम, योगाभ्यास लगातार करते रहे।

१ अगस्त १९३६ से १८ अगस्त तक इस प्रकार दिनचर्या रही—बिना घी के सूखी रोटी खाई। स्वाध्याय, प्राणायाम, व्यायाम भी नित्य की भांति करते रहे। स्कूल के लड़कों को उपदेश दिया। पुस्तकालय का कार्य करके आर्यमित्र पत्रिका देखी। रतिराम जी से वार्तालाप किया।

पं० श्री कृष्णा नायर जी के पास चन्दगीराम विद्यार्थी की सहायतार्थ जाना तथा अपनी यात्राविषयक वार्ता की। सोनीपत पैदल जाना आना। पं० जवाहरलाल के दर्शन तथा उनका व्याख्यान सुनना। आर्याभिविनय का पाठ दैनिक करना। नरेला में कुश्ती देखना और बाजार में श्रावणी पर्व मनाते हुए वेद के स्वाध्याय पर बल देना। सायंकाल आर्यसमाज मन्दिर नरेला में यज्ञ करना, बांकनेर में कुश्ती देखना। पं० प्रियरत्न जी आर्ष को तथा अमरीका में पत्र लिखा। चर्खा कातने का नियम बहुत दिन से टूटा हुआ है।

७ अगस्त को सारा दिन जयलाल के साथ पुलिस की मारपीट के कारण उनके साथ स्टेशन, हस्पताल, उनके घर तथा आश्रमादि में बीता। रात को कांग्रेस का पब्लिक जलसा करके पुलिस के विरुद्ध घृणा प्रकट की गई। एक प्रस्ताव पेश करके अनुमोदनार्थ व्याख्यान दिया।

पं० सातवलेकर द्वारा प्रकाशित "सन्ध्या" पुस्तक पढी। विद्यार्थियों तथा नवयुवकों में विशेषकर उपदेश और प्रचार का कार्य प्रतिदिन चलता रहता था। खद्दर पहनना, सत्यार्थप्रकाश पढ़ना तथा अन्य धार्मिकग्रन्थों के स्वाध्याय हेतु छात्रों

को उपदेश देना आदि। यह सब करते हुए भी स्वयं का व्यायाम, प्राणायाम, सन्ध्या, ध्यान, स्वाध्याय, यम-नियमपालन, बालकों को आसन सिखाना आदि कार्य अजस्र चलते रहते थे। इन्हीं दिनों किसान सभा में जाकर गोरक्षाविषयक वार्ता करके गोरक्षा पर भाषण दिया। चमारोंवाले कुयें पर जाकर उनसे सम्पर्क करना, ईसाई मत का खण्डन करके वेदप्रचार आदि करना।

''योगजिज्ञासा की वार्ता'' और ''दिनचर्या'' श्री ब्रह्मचारी भगवान्देव जी की सन् १९३६ की संचिका से श्री विरजानन्द जी दैवकरणि ने उद्धृत की है। पाठक ब्रह्मचारी भगवान्देव जी की पारिवारिक स्थिति पर ध्यान दें। इनके पिता का सर्वप्रकार से सम्पन्न प्रतिष्ठित परिवार था। यह उसका एकमात्र उत्तराधिकारी था। २५ वर्ष का पूर्ण यौवनकाल था। बाल्यकाल में विवाहिता समानवया पत्नी ''सरूपा'' घर में बैठी थी और यह अपने बाग में आश्रम बनाकर तपस्या-साधना और देशसेवा में तल्लीन था। माता, पिता, बहन, पत्नी, परिवार, रिश्तेदार आदि का गृहस्थी बनकर प्रजातन्तु (वंशबेल) को आगे बढ़ाने का आग्रह था। ऐसी स्थिति में सन् १९३६ में आपने नरेला आर्यसमाज के वार्षिक उत्सव पर नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की दीक्षा की घोषणा करदी थी।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
महात्मनां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति॥

नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की दीक्षा

इस समय भगवान्सिंह को कई मोर्चों पर लड़ाई लड़नी पड़ रही थी। एक ओर आर्यसमाज के कार्य की चिन्ता तो दूसरी ओर कांग्रेस के कार्य को आगे बढ़ाकर देश को स्वतन्त्र कराने का कठिन लक्ष्य। तीसरी ओर बढ़ते हुए ईसाई मिशनरियों के प्रभाव को रोकना, हरिजनों के प्रति छुआछूत दूर करने के लिए सहभोज करना और रात्रि पाठशाला चलाकर उन्हें शिक्षित करना तथा इधर आर्षग्रन्थों का अध्ययन कर विद्वत्ता प्राप्त करने की इच्छा और इन सबसे ऊपर अपने आपको तप-त्याग की भट्ठी में तपाने की चिरपालित अभिलाषा, जो कि संघर्ष के मार्ग में उतरने और आगे बढ़ने के लिये कदाचित् पहली शर्त नजर आरही थी। इसी शर्त एवं चुनौती को वे अपने मन से स्वीकार कर चुके थे। इसके लिए अब उन्होंने सार्वजनिकरूप से आगे आने का निश्चय किया। सन् १९३६ ई० में आर्यसमाज नरेला के वार्षिकोत्सव पर हजारों लोगों की उपस्थिति में आपने आजीवन ब्रह्मचारी रहने की भीषण प्रतिज्ञा की और नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की दीक्षा

लेली। तत्कालीन प्रथा के अनुसार माता-पिता ने बाल्यावस्था में ही विवाह कर दिया था, उसको भी सर्वदा के लिए तिलांजलि देदी। घरवालों में घोर निराशा छागई। कहा गया कि इसने तो हमारे कुल का दीपक ही बुझा दिया। पर कौन जानता था कि इसी एक दीपक से वे हजारों लाखों दीपक प्रज्वलित होंगे जो सामाजिक कुरीतियों की राख में दबकर जलते हुए ही बुझे समान हैं। जो लोग आचार्य भगवान्देव जी के कार्य से परिचित हैं वे जानते हैं कि आचार्य जी के समाजसुधार और शिक्षा के क्षेत्र में किये गये कार्यों ने कितना बड़ा क्रान्तिकारी परिवर्तन किया है।

भगवान्सिंह से ब्रह्मचारी भगवान्देव

अब युवक भगवान्सिंह ने आजीवन ब्रह्मचारी रहने का व्रत लिया। घर-बार छोड़कर मोहमाया से छूटकर सांसारिकबन्धन तोड़ दिये और ये देवमार्ग के पथिक बनगये। अत: इनका नाम भगवान्सिंह से ''ब्रह्मचारी भगवान्देव'' होगया। अब इनको सभी इसी नाम से अभिहित करने लगे।

एक वह समय था जब कांग्रेस के कार्यों में अगुआ बनने पर पिता ने इनको घर छोड़ने के लिये कहा था—तब इन्होंने घर न छोड़ने का निश्चय किया था और अब वह समय आगया, जब माता-पिता सगे-सम्बन्धी सब घर न छोड़ने का आग्रह कररहे थे तो ब्रह्मचारी जी घर छोड़ने के लिए न केवल उतावले ही थे, अपितु सर्वदा के लिये छोड़ रहे थे। कैसी विपरीत परिस्थिति थी। इसे समय का खेल कहें, भाग्य का चक्र अथवा परिस्थितियों की देन। पाठक ही निर्णय करें।

आर्य विद्यार्थी आश्रम की स्थापना

नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की दीक्षा के साथ ही ब्रह्मचारी भगवान्देव ने घर सर्वथा त्याग दिया और नरेला में अपने बाग में ''आर्य विद्यार्थी आश्रम'' की स्थापना करके आश्रम में असहाय विद्यार्थियों को पढ़ाने की व्यवस्था की। कालान्तर में इसके साथ ही एक औषधालय और गोशाला की स्थापना कीगई। पुस्तकालय का भी यहां निर्माण किया। ब्रह्मचारी जी ने स्वयं भी अब आर्षग्रन्थों को सुयोग्य विद्वानों से पढ़ना आरम्भ किया। यहीं पर उद्भट दार्शनिक पं० विष्णुदत्त जी से आपने दर्शनों का अध्ययन किया। साथ ही संस्कृतसाहित्य और वैदिकवाङ्मय का भी अध्ययन प्रारम्भ किया। यहीं पर रहते हुए आपने एक ''उपदेशक विद्यालय'' भी चालू किया। इसका उद्देश्य था—विद्वान् उपदेशक तैयार करना,

जो गांव-गांव में घूमकर प्रचार-कार्य करें। इस विद्यालय में स्वामी योगानन्द, पं० हरिशरण, पं० भद्रसेन तथा पं० सेवाराम (पुरोहित) आदि प्रमुख युवकों ने विद्याध्ययन किया। कुछ समय पश्चात् ब्रह्मचारी जी ने पं० भद्रसेन को व्याकरणादि पढ़ने के लिये गुरुकुल डोरली में भेज दिया जिससे वे विद्वान् बनकर आयें और आश्रम में विद्यार्थियों को पढ़ायें। इन्हीं पं० भद्रसेन जी से ब्रह्मचारी भगवान्देव जी ने व्याकरण महाभाष्य का अध्ययन पूरा किया था। पं० भद्रसेन जी आन्ध्रप्रदेश के ब्राह्मण थे, व्याकरण के पण्डित थे। १९४४ में गुरुकुल टटेसर के प्रथम आचार्य बने। उनका पुत्र कुशलसेन आई.आई.टी. दिल्ली में इंजीनियर है और पुत्री सुभाषिणी ३४/१ आचार्यपुरी गुड़गांव में सपरिवार रहती है।

ईसाई पादरियों के जाल का उच्छेद

इसके साथ ही आपने नरेला और आस-पास के गांवों में हरिजन तथा दूसरे गरीबवर्ग के लोगों में रात्रि पाठशालायें चलाने और उनमें आर्यसमाज के प्रचार का कार्य भी धूमधाम से आरम्भ किया। यह इसलिए भी आवश्यक था कि उन दिनों इस क्षेत्र में ईसाई मिशनरियों का जाल फैला हुआ था। वे धन और सेवा के नाम पर तीव्रगति से यहां के गरीब लोगों को ईसाई बना रहे थे। उस समय ईसाई बनने का अर्थ केवल इस धर्म में दीक्षित होजाना नहीं था अपितु ईसाई बननेवाले प्रत्येक व्यक्ति की भक्ति और आस्था भी भारतभूमि में न रहकर इंग्लैण्ड की धरती में होजाती थी। वे भारत में अंग्रेजीशासन के सबसे बड़े शुभचिन्तक और राष्ट्रवादियों के शत्रु बन जाते थे। इस प्रकार अंग्रेजीशासन को यहां चिरस्थायी और सुदृढ़ बनाने के लिए धर्म के नाम पर गहरा षड्यन्त्र रचा जारहा था। अंग्रेजी साम्राज्यवाद के पेड़ को इस प्रकार फूलते-फलते देख ब्रह्मचारी जी कैसे चुप बैठ सकते थे। इन्होंने अपनी सेवा और प्रचार-कार्य के द्वारा थोड़े समय में ही इस पेड़ को जड़सहित उखाड़ फेंका।

पाठकवृन्द! आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि सन् १९३१ की जनगणना में इस क्षेत्र में १० हजार लोगों ने अपने आपको ईसाई लिखवाया था। मुखमेलपुर जैसे छोटे गांव में भी अनेक लोग ईसाई बन गये थे। वहां एक कच्चा गिरजाघर भी बनाया था। नरेलाक्षेत्र के अनेक गांवों की यही दशा थी परन्तु ब्रह्मचारी जी ने इतना अधिक परिश्रम किया कि १९४१ की जनगणना में इस पूरे क्षेत्र में एक भी आदमी ने अपने आपको ईसाई नहीं लिखवाया। यह सब ब्रह्मचारी जी के ही कार्य का प्रताप था। चौ० हीरासिंह भूतपूर्व कार्यकारी पार्षद दिल्ली आदि प्रमुख व्यक्तियों ने

इस दिशा में बड़ा भारी कार्य किया। उन्होंने तो पूरी अंग्रेजी सरकार से भी टक्कर ली। गिरफ्तार भी हुए किन्तु इसके लिए ब्रह्मचारी जी ने जो कठोर परिश्रम किया उसकी मात्र कल्पना ही की जासकती है। दिनभर प्रचार, सेवा, औषध-निर्माण और औषधियां बिना पैसे गरीबों में बांटना, उनकी हर प्रकार की सहायता करना और रात में जगह-जगह पाठशालायें चलाना, यह ब्रह्मचारी जी के ही वश की बात थी। इनकी पाठशालायें भी एक-दो जगह नहीं, पच्चीस-तीस जगह चलती थीं। साथ ही जगह-जगह सहभोज करके अछूत माने जानेवाले लोगों को अपने साथ मिलाने का कार्यक्रम भी तीव्रगति से चला रखा था। क्योंकि हिन्दूसमाज की रूढ़ियों और समाज में प्रचलित छुआछूत का भूत दिखलाकर ईसाईप्रचारक अछूत समझे जानेवाले भाइयों के मन में हिन्दूसमाज-विरोधी एक ऐसी गहरी दरार डाल देते थे जो बड़ी ही कठिनाई से पाटी जासकती थी। यदि उस समय आर्यसमाज और कांग्रेस ने छुआछूतविरोधी अभियान इतना तेजी से न चलाया होता और जगह-जगह सहभोज आयोजित न किये होते तो कदाचित् हमें और लम्बे समय तक परतन्त्रता का दुःख भोगना पड़ता।

महात्मा गांधी तथा जवाहरलाल नेहरू का नरेला में आगमन

अन्यस्थानों के अतिरिक्त नरेला में भी बड़े-बड़े सहभोजों का आयोजन किया गया। गान्धी जी भी दो-बार नरेला पधारे और उन्होंने भी सहभोज में भाग लिया। एक सहभोज में खेड़ा गढ़ी स्कूल के हैडमास्टर श्री चौ० चन्दनसिंह होत्री (डॉ० रणजीतसिंह के पिता) अपने स्कूल के सब विद्यार्थियों को लेकर पधारे। वे कट्टर आर्यसमाजी थे। सहभोजों का प्रबन्ध करने का कार्यभार ब्रह्मचारी भगवान्‌देव, स्वामी स्वरूपानन्द, पं० टेकचन्द, चौ० हीरासिंह, वैद्य कर्मवीर आदि पर होता था। श्री दलेलसिंह जैन दिल्ली ने इसमें विशेष सहयोग दिया। जवाहरलाल नेहरू भी नरेला में आये। इन सबके जलसों का प्रबन्ध ब्रह्मचारी जी ही करते थे।

मिस सरकार से टक्कर

इस क्षेत्र में ईसाइयों की शक्ति का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि नरेला में एक क्रिश्चियन "मिस सरकार" ने १९ बीघा जमीन मोल ली। यह भूमि "क्रिश्चियन फैलोशिप आश्रम" नामक संस्था के लिये मुत्सद्दीलाल हाई स्कूल के समीप ही ली थी। इसका उद्देश्य था स्कूल के अबोध एवं युवक विद्यार्थियों को और हरिजनभाइयों को यहां बैठकर आसानी से ईसाई बनाया जा

सकेगा परन्तु ब्रह्मचारी जी के रहते उनका स्वप्न साकार कैसे होसकता था। ब्रह्मचारी जी ने भी उसके मुकाबले में कार्यक्रम आरम्भ कर दिये। चिढ़कर उस क्रिश्चियन महिला ने ब्रह्मचारी जी, श्री जयलाल जी स्वर्णकार, श्री ताराचन्द सु० श्री प्रभुदयाल जी आदि पांच व्यक्तियों पर मार-पिटाई का मुकदमा दर्ज करा दिया। ब्रह्मचारी जी ने भी वदले की कार्यवाही के रूप में उसकी भूमि पर झूठा हकसफा करा दिया। हकसफा चौ० नथवा पाना पपोसिया और चौ० धर्मसिंह जी (श्री मा० पूर्णसिंह जी आर्य के पिता) पाना मामूरपुर ने किया। श्री पं० मूलचन्द गौतम व श्री मनीराम जी ने पैरवी की और श्री हरनन्दसिंह सुपुत्र चौ० नथवा को मुख्त्यार बनाया। यह कार्य नीतिसम्मत ही था कि **"शठे शाठ्यं समाचरेत्"** इस मुकदमे में एडवोकेट लाला रतनलाल जी शाहपुर जट्ट (दिल्ली) वालों ने बड़ा ही सराहनीय कार्य किया। उन्होंने विना कोई पैसा लिये वकालत कर मुकदमा लड़ा। अन्त में मुकदमे में ब्रह्मचारी जी आदि की विजय हुई और ईसाई मिशनरियों को भागना पड़ा। नरेला के आसपास के ३३ गांवों में सहस्रों व्यक्ति ईसाई बन चुके थे किन्तु ब्रह्मचारी जी के कार्य के कारण एक भी ईसाई इन गांवों में नहीं रहा। इस कार्य में पं० मूलचन्द, पं० टेकचन्द एवं श्री सत्यवीर (छज्जूराम) सुपुत्र लाला काशीराम आदि का विशेष सहयोग मिला।

आर्यवीरदल आदि के द्वारा जनसेवा

ब्रह्मचारी जी ने यहां रहते हुये आर्यवीरदल की शाखा का भी नियमितरूप से संचालन आरम्भ किया। वर्षा आदि के समय जव तरह-तरह की बीमारियां फैलने लगतीं तो आप अपने सहयोगी मा० मामचन्द, पं० मूलचन्द आदि के साथ गांव-गांव में जाकर रोगियों की निःस्वार्थ सेवा में दिन-रात एक कर देते थे। आपकी इस सेवा ने चमत्कार दिखाया और पूरा क्षेत्र आपको देवता के समान मानने लगा। विद्यार्थी आश्रम में औषधालय चलाने के लिये श्री सत्यवीर सुपुत्र लाला काशीराम नरेलावालों ने दान दिया। वैद्य कर्मवीर जी दहकोरा से इसी औषधालय में काम करने के लिए नरेला आये थे। आगे चलकर सन् १९४२ की बाढ़ में इस आश्रम के औषधालय की तीस-चालीस हजार की दवाइयां पानी में बह गईं। बाढ़ के कारण ही गोशाला भी यहां से हटानी पड़ी।

सेवा का प्रभाव

ब्रह्मचारी जी की सेवा का कितना अधिक प्रभाव था यह इन घटनाओं से जाना जासकता है।

१. एक बार ब्रह्मचारी जी गुरुकुल के लिये अन्नसंग्रह कर रहे थे। जब ये चौ० जयलाल के घर पहुंचे तो घर पर उनकी मां मिली। परिवार का और कोई सदस्य न देख ब्रह्मचारी जी वापस लौटना चाहते थे परन्तु उस माता ने बहुत अधिक आग्रह करके इनको रोक लिया और अन्न लेजाने का आग्रह किया। ब्रह्मचारी जी अन्न लेकर आगये। बाद में जब ब्रह्मचारी भगवान्‌देव जी की माताजी आईं और उन्होंने इनको धमकाया, बतलाया कि तुम तो जयलाल के घर का सब अन्न ले आये हो, उनके यहां तो एक समय खाने का अनाज भी नहीं बचा। वास्तव में उस देवी ने अपने घर में जितना भी अन्न था वह सबका सब श्रद्धावश ब्रह्मचारी जी को देदिया था। क्योंकि ब्रह्मचारी जी ने रुग्णावस्था में उस देवी का उपचार एवं अत्यधिक सेवा की थी, इस कारण उसकी ब्रह्मचारी जी के प्रति बहुत अधिक श्रद्धा व भक्ति थी।

२. इसी तरह एक बार युवक जोतराम ब्रह्मचारी जी के पास आया और उनको दो आने हाथ में थमाकर कहने लगा—''ब्रह्मचारी जी यह तुच्छ-सी भेंट मैं आर्यसमाज निर्माणकार्य के लिये देरहा हूं। यह पैसे मुझे घरवालों ने देवी के मेले में जाने के लिए दिये थे।'' वैसे तो दो आने का दान अपने आप में छोटा-सा दान लगता है किन्तु उस व्यक्ति की भावनाओं को आप देखिये और उनका आकलन कीजिये तो यह बहुत बड़ा दान था। यह श्री चौ० जोतराम ब्रह्मचारी जी द्वारा नरेला में प्रारम्भ की गई रात्रि पाठशाला का सबसे पहला विद्यार्थी था।

३. ब्रह्मचारी जी की सेवा का प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा था। उनका कठोर तप और त्याग सेवा के साथ सोने पर सुहागे का काम करता था। ये बिना किसी भेदभाव के सबकी सेवा में जुटे रहते थे। मानवमात्र इनके लिये समान था। ये हिन्दुओं की भांति मुसलमानों में भी सेवा-कार्य बराबर करते रहते थे। इस कारण मुसलमान भाई भी इनको उसी तरह सम्मान देते थे। इन्हीं दिनों एक बार ब्रह्मचारी जी आर्यसमाज भवननिर्माण के लिए चन्दा कर रहे थे। नरेला बाजार में चन्दा करते-करते बीच में एक दुकान छोड़कर आगे चले गए। किसी सहयोगी ने वैसे ही कह दिया था कि यह मुसलमान की दुकान है इससे दान नहीं मिलेगा। ब्रह्मचारी जी ने उसकी बात पर विश्वास कर लिया और उस दुकान को छोड़ आगे वाली पर दान लेने लगे। जब तीन-चार दुकान आगे जाचुके तब उस मुस्लिम दुकानदार को पता चला कि ब्रह्मचारी जी चन्दा कर रहे हैं। वह दुकान पर बैठे ग्राहकों के बीच से अचानक उठा और दौड़कर ब्रह्मचारी जी के पास पहुंचा तथा

कहा—"ब्रह्मचारी जी! आप मुझे मुसलमान होने के कारण छोड़ गये। मैंने भी तो आर्यसमाज से बहुत कुछ सीखा है और लाभ उठाया है। मेरा भी दान अवश्य लीजिये।" यह कहते हुए उसने बहुत ही श्रद्धाभाव से एक रुपया ब्रह्मचारी जी को दिया। दान की रसीद देते हुए ब्रह्मचारी जी का उत्तर था—"आपका यह एक रुपया हमारे लिये एक लाख रुपयों के बराबर है। हमें भ्रम था क्षमा कीजिये।" वास्तव में ब्रह्मचारी जी की सेवा और उच्चचरित्र का ही यह चमत्कार था।

४. ब्रह्मचारी जी और इनके साथियों को आर्यसमाज में व्यायाम करते हुये देखकर कई मुस्लिम भाई भी आर्यसमाज में आने लगे थे। इनमें एक नत्थूखां भी था जिसने ब्रह्मचारी जी की प्रेरणा से मांस खाना छोड़ दिया था। ब्रह्मचारी भगवानदेव जी ने मुद्गर (मोगरी) चलाना लालू नामक मुसलमान से सीखा जो आर्यसमाज में आता था।

५. ब्रह्मचारी जी ने पिछड़ेवर्ग के लोगों को भी इसी तरह गले लगाया और उनको समाज में सम्मानपूर्ण स्थान दिलाने के लिये भरसक प्रयास किया। इस सेवा का ही यह परिणाम था कि हरिजन व भंगी कहे जानेवाले बहुतसे भाई आर्यसमाज के सदस्य बने। उनमें आत्मसम्मान की भावनायें इन्होंने जगाई और उनके लिये समाज की रूढ़ियों से लोहा लिया। ऐसा करते हुये अनेक कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ा। एक बार एक विचित्र घटना घटी। ब्रह्मचारी जी ने आर्यसमाज के उत्सव पर आये हुये उपदेशकों को फूलसिंह नामक सदस्य से, जो वाल्मीकि था, भोजन परोसवा दिया। समाज का रसोइया ब्राह्मण था। वह यह देखकर भाग गया। ब्रह्मचारी जी को स्वयं भोजन पकाना पड़ा।

६. उस समय मृत्यु होने पर वाल्मीकि भूमि में गाडे जाते थे, जलाये नहीं जाते थे। फूलसिंह पहला वाल्मीकि भाई था जिसका ब्रह्मचारी जी ने दाहसंस्कार करवाया। इसी तरह एक बाबा को भी गाड दिया था। उसके गाडे हुए शरीर को निकलवाया और दाहकर्म किया। इस दिशा में ब्रह्मचारी जी ने अथक परिश्रम किया और घर-घर जाकर इन सबको समझाया। तब इन्होंने अपने मुर्दों को जलाना आरम्भ किया। इस प्रकार इनकी सेवा और कार्य का प्रभाव समाज के प्रत्येक वर्ग में निरन्तर बढ़ता गया और लोगों की कुरीतियां व रूढ़ियां समाप्त होती गईं। ब्रह्मचारी जी आर्यसमाज, आर्य विद्यार्थी आश्रम और कांग्रेस का काम दिन-रात करते रहे। इसी काल में हैदराबाद का आर्यसत्याग्रह प्रारम्भ होगया।

□□□

तृतीय अध्याय

संस्कृतभाषा का विद्वान् बनने का निश्चय

सत्याग्रह से लौटकर ब्रह्मचारी भगवान्‌देव जी ने आर्य विद्यार्थी आश्रम के माध्यम से आर्यसमाज और कांग्रेस का कार्य और अधिक उत्साह से करना प्रारम्भ किया। सत्याग्रह में चले जाने के कारण जिस किसी कार्य में कहीं शिथिलता आई थी उसको गति प्रदान की। रात्रि पाठशालाओं और सामूहिक सहभोजों का आयोजन नये सिरे से प्रारम्भ किया। ब्रह्मचारी जी संस्कृतभाषा एवं वैदिकवाङ्मय में विद्वत्ता प्राप्त करने की बात मन में संजोये हुए थे। हैदराबाद सत्याग्रह में दयानन्द वेदविद्यालय के ब्रह्मचारियों से संपर्क हुआ तो इस भावना को और अधिक बल मिला। किन्तु यहां कार्य का इतना अधिक विस्तार होचुका था कि उसको छोड़कर जाना बड़ा कठिन होरहा था। दूसरों को संस्कृत पढ़ने तथा गुरुकुलों में भेजने की प्रेरणा और आर्थिक सहायता देने का कार्य तो करते ही रहते थे किन्तु स्वयं बहुत चाहते हुए भी नहीं जापारहे थे। इसी बीच एक दिन पं० हरिध्यानसिंह नरेलावालों ने व्यंग्यात्मक भाषा में कहा, "ब्रह्मचारी जी! आप संस्कृत पढ़ने के लिए दूसरों की बहुत मदद करते हो, पर स्वयं किसी गुरुकुल में जाकर क्यों नहीं पढ़ते?" उनकी बात सुनकर ब्रह्मचारी जी ने स्वयं संस्कृत में पाण्डित्य प्राप्त करने का निश्चय किया। इसी बीच में आप एक बार गुरुकुल डोरली के वार्षिकोत्सव पर गये। वहां आपने व्यायाम तथा योग-आसनों का प्रदर्शन किया। गुरुकुल के आचार्य पं० लेखराम जी अत्यधिक प्रभावित हुये। कठिन से कठिन आसन व मोगरी चलाना आपने जिस सरलता से दिखलाया वैसा गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को भी नहीं आता था। उन्होंने ब्रह्मचारी जी को कहा—आपको संस्कृत, व्याकरण तथा दर्शन आदि का अध्ययन पूरा करना चाहिये। यदि आप पूरा नहीं करेंगे तो आपकी तपस्या जड़ रह जायेगी। साथ ही उन्होंने कहा—हमारे गुरुकुल में आर्षपाठविधि नहीं है, परन्तु यदि आप चाहें तो मैं आपके लिए अलग से प्रबन्ध कर सकता हूं। कालान्तर में सरकार ने इस गुरुकुल को जब्त कर लिया।

दयानन्द वेदविद्यालय में प्रवेश

नरेला में आश्रम और दूसरे कार्यों को अपने सहयोगियों को सौंप ब्रह्मचारी जी दिल्ली में यमुना के किनारे स्थित (बाद में यूसुफ सराय) दयानन्द वेदविद्यालय

में पहुंच गये। श्री आचार्य राजेन्द्रनाथ शास्त्री जी वहां आचार्य थे। वे ब्रह्मचारी जी के स्वास्थ्य एवं लगन से अत्यधिक प्रभावित हुये। संस्कृत का कुछ ज्ञान तो इन्हें पहले से ही था अतः आचार्य जी ने इनको शीघ्र ही अष्टाध्यायी पढ़ने के लिए दे दी। यहां एक वर्ष पांच मास तक निरन्तर संस्कृतव्याकरण और साहित्य का अध्ययन करते रहे। साथ ही व्यायाम, मुद्गर आदि का अभ्यास भी चलता रहा। लाठी चलाना भी आपने यहीं सीखा। यहां आपने बौद्धिक तथा शारीरिक दोनों ही प्रकार का अत्यधिक परिश्रम किया। यहां का पानी आपके अनुकूल नहीं पड़ा। फलस्वरूप आपका स्वास्थ्य खराब रहने लगा।

गुरुकल चित्तौड़गढ़ में अध्ययन

एक बार चित्तौड़गढ़ गुरुकुल के संस्थापक स्वामी व्रतानन्द जी दयानन्द वेदविद्यालय में आये और उन्होंने ब्रह्मचारी जी को आश्वासन दिया कि आप हमारे यहां चलिये, वहां आपका सब प्रबन्ध कर दिया जायेगा। पानी भी वहां का बहुत अच्छा है जो आपके अनुकूल रहेगा। स्वामी जी की प्रेरणा पर आप वेदविद्यालय छोड़कर जनवरी १९३८ में गुरुकुल चित्तौड़गढ़ चले गये। वहां पांच मास रहकर आपने महाभाष्य आदि पढ़ा परन्तु अनुकूलता वहां भी नहीं बन पाई। अतः चित्तौड़गढ़ से भी वापस आना पड़ा। चित्तौड़गढ़ से लौटकर आपने आश्रम में रहते हुये ही आगे अध्ययन का क्रम जारी रखा। समाज-सुधार की अन्य गतिविधियां भी चलती रहीं।

हैदराबाद सत्याग्रह

सन् १९३९ ई० में आर्यसमाज के सामने एक बहुत बड़ी चुनौती आ खड़ी हुई। निजाम हैदराबाद ने अपने राज्य में आर्य-धर्म के प्रचार-प्रसार पर प्रतिबन्ध लगा दिया। अनेक पुराने हिन्दू-मन्दिर गिरा दिये और नये मन्दिर बनाना कानूनन बन्द कर दिया। सम्पूर्ण हिन्दूसमाज के लिये यह घोर अपमान की बात थी। हैदराबादराज्य की समस्त हिन्दूजनता ''त्राहि-त्राहि'' कर रही थी। इस आपत्ति के समय हिन्दुओं में केवल एक ही संस्था ऐसी थी ''आर्यसमाज'' जिसने निजाम से लोहा लेने की ठानी। देशभर के आर्यनेता वहां की परिस्थिति का अध्ययन करने हैदराबाद गये। उन्होंने वहां की दयनीय दशा देखकर स्थानीय आर्यनेताओं से परामर्श किया। भावी योजना तैयार करने के लिये शोलापुर में आर्यमहासम्मेलन होरहा था कि उसी समय हैदराबाद के प्रसिद्ध आर्यनेता श्री पं० श्यामलाल का शव शोलापुर आया। सम्मेलन में शव को देखकर भयंकर रोष छागया। पं० श्यामलाल

को निजाम सरकार ने बीदर जेल में भयंकर कष्ट देकर मार डाला था। पण्डित जी का शव भी सरकार नहीं देरही थी। बड़ी कठिनाई और चतुराई से प्राप्त किया। जब यह निश्चित होगया कि निजाम सरकार पण्डित जी का शव नहीं देगी तो पण्डित जी के मामा श्री दत्तात्रेय एडवोकेट ने बीदर जेल के जेल-विभाग के किसी एक अधिकारी के नाम से तार किया जिसमें शव देदेने का आदेश था। तार आते ही जेलर ने शव देदिया और आर्यनेता शव को लेकर शोलापुर पहुंच गये। शव का पहुंचना था कि आर्यमहासम्मेलन में उत्तेजना फैल गई। क्योंकि पण्डित जी के शव पर भयंकर चोटों के निशान थे और उनका शरीर मृत्यु से पूर्व ही अस्थिपंजर होचला था। उत्तेजना के क्षणों में ही सम्मेलन ने निजाम से लोहा लेने का निर्णय किया और हैदराबाद सत्याग्रह प्रारम्भ होगया।

सत्याग्रह के सम्बन्ध में महात्मा गांधी ने कहा था कि ''आर्यसमाज ने सत्याग्रह का निर्णय कर बहुत बड़ी भूल की है। उसने अपनी पहली परीक्षा में ही हिमालय से टक्कर लेली है।'' उनका कहना ठीक भी था क्योंकि निजाम की शक्ति उस समय बहुत अधिक थी। यदि आर्यस्माज के स्थान पर कोई और संस्था होती तो उसका असफल होना निश्चित था। यह तो आर्यसमाज ही था जो इस अग्नि-परीक्षा में से सफल होकर निकला।

ब्रह्मचारी भगवान्देव जी ने दिल्ली देहात में घूम-घूमकर हैदराबाद सत्याग्रह के लिये लोगों को तैयार किया और पहला जत्था लेकर इन्होंने स्वयं प्रस्थान किया। सत्याग्रह में जाने के लिये अपना विद्यार्थी आश्रम इन्होंने श्री सत्यवीर सुपुत्र लाला काशीराम जी अग्रवाल को सौंप दिया, जो ब्रह्मचारी जी के निकट सहयोगी थे। इनके जत्थे में नरेला और आसपास के तीस व्यक्ति थे, जिनमें कुछ नाम निम्न-लिखित हैं—

१. श्री अतरसिंह शास्त्री नरेला, २. श्री पं० गिरधारीलाल नरेला, ३. श्री चौ० जिलेसिंह नरेला, ४. श्री चौ० रामसिंह मामूरपुर (राजपाल आर्य के ताऊ जी), ५. श्री चौ० रामकिशन सुपुत्र तोफनसिंह (मा० पूर्णसिंह आर्य के ताऊ जी), ६. चौ० ग्यासीराम पाना उद्यान नरेला, ७. श्री रामसिंह हरिजन, ८. श्री महाशय चेतराम बांकनेर (आप हिन्दीरक्षा १९५७ ई० और गोरक्षा आन्दोलन १९६६ ई० में भी जेल गये), ९. श्री चौ० मौजीराम सबोली, १०. भगत मथुराप्रसाद माजरा डबास (आपने गुरुकुल झज्जर में भी काम किया था), ११. बाबा टेकन माजरा डबास, १२. चान्द पहलवान के मामा माजरा डबास।

जत्था ब्रह्मचारी जी के नेतृत्व में नरेला से चलकर दिल्ली पहुंचा। वहां इस जत्थे में स्वामी धर्मानन्द जी (नयागांव पलवलवाले) के साथ पांच सत्याग्रही और मिल लिये। ब्रह्मचारी जी स्वामी जी का बहुत आदर करते थे अतः इन्होंने जत्थे का नेतृत्व स्वामी धर्मानन्द जी को सौंप दिया। दिल्ली से चलकर १८ अप्रैल, १९३९ के दिन जत्था शोलापुर पहुंच गया। वहां दयानन्द वेदविद्यालय दिल्ली के ब्रह्मचारियों का जत्था पहले ही पहुंचा हुआ था। इनमें ब्रह्मचारी हरिशरण जी भी थे। सत्याग्रह के सर्वाधिकारी पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने दोनों जत्थों का निरीक्षण किया और परिचय प्राप्त किया। फिर वेदविद्यालयवाले जत्थे को भी इस जत्थे में मिला दिया। अब ८७ सत्याग्रही इस जत्थे में होगये। अब प्रश्न आया कि यह बहुत मजबूत जत्था है इसलिये इसको तुलजापुर के मोर्चे से सत्याग्रह करना है। तुलजापुर का मोर्चा सबसे खतरनाक मोर्चा था। वहां निज़ाम की पुलिस और मुसलमान दोनों मिलकर सत्याग्रहियों पर हमला करते थे। इस मोर्चे पर पहला जत्था पंजाब का पहुंचा था, उस पर बड़े घातक प्रहार किये गये थे। दूसरा जत्था श्री पं० जगदेवसिंह सिद्धान्ती जी के नेतृत्व में पहुंचा था। उस पर भी पुलिस ने लाठियां बरसाई थीं। सत्याग्रह करने से पूर्व सर्वाधिकारी की ओर से सत्याग्रहियों को आवश्यक निर्देश देदिये जाते थे और पूरा रिकार्ड तैयार कर लिया जाता था। प्रत्येक जत्थे का पृथक्-पृथक् चित्र (फोटो) भी लिया जाता था। २० अप्रैल को इस जत्थे का फोटो हुआ और २२ अप्रैल को ब्रह्मचारी जी के इस जत्थे ने स्वामी धर्मानन्द जी के नेतृत्व में तुलजापुर के मोर्चे पर सत्याग्रह किया परन्तु उस समय सत्याग्रहियों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब मोर्चे पर तैनात पुलिस ने अपनी प्रसिद्धि के विपरीत जत्थे पर किसी प्रकार का कोई वार नहीं किया। कारण यह था कि खुफिया पुलिस से उसको पहले ही पता चल गया था कि इस जत्थे में अधिकांश ब्रह्मचारी हैं जो बहुत शक्तिशाली हैं और यदि जनता की ओर से हमला हुआ तो वे मुकाबला करने के लिए तैयार हैं। हमला तो नहीं किया परन्तु किसी न किसी बहाने से तंग अवश्य किया गया। बहुत देर तक वहीं थाने में बिठाये रखकर और खाने-पीने को कुछ न देकर कष्ट देने का प्रयास किया परन्तु सत्याग्रही कब डगमग होनेवाले थे। उन्होंने उनकी हर शैतानी का मुकाबला बहुत गम्भीर रहकर किया और किञ्चित् भी विचलित वा उत्तेजित नहीं हुये।

जेल में कैसा व्यवहार होना है इसकी बानगी यहीं मिल गई थी। यहां एक वर्ष चार मास की बामुशक्कत (सश्रम) सजा सुनाकर आप सबको नलदुर्ग जेल में भेज दिया गया। नलदुर्ग से सबको अलग-अलग जेलों में भेजा गया। निज़ाम

सरकार की नीति एक जगह के सत्याग्रहियों को अलग-अलग रखने और कठोर दण्ड देने की थी जिससे उनका मन उखड़ जाये और वे माफी मांगकर चले जायें परन्तु सरकार अपने उद्देश्य में सफल नहीं होपाई। भयंकर रुग्णावस्था में भी किसी ने माफी नहीं मांगी। अनेक सत्याग्रही तो जेलों में ही शहीद होगये। इसी कारण सत्याग्रह में विजय हुई और निजाम को झुकना पड़ा। जिस निजाम को महात्मा गांधी ने हिमालय जैसी चट्टान की संज्ञा दी थी वह चट्टान आर्यों के तप, त्याग और बलिदान से टकराकर चकनाचूर होगई। इसी आर्यसत्याग्रह की सफलता ने आगे चलकर हैदराबादराज्य की पृथक् सत्ता समाप्त कर उसे भारतीय गणतन्त्र में मिला लेने के लिये सरदार पटेल को उत्साहित किया।

ब्रह्मचारी जी कई मास तक उस्मानाबाद और औरंगाबाद आदि जेलों में रहे। औरंगाबाद जेल में आपका सम्पर्क पं० मुक्तिराम (स्वामी आत्मानन्द) जी से हुआ। उनसे आपने प्राणायाम और यौगिकक्रियाओं की शिक्षा ली तथा उनका निरन्तर अभ्यास किया। पण्डित जी आपके स्वास्थ्य, नियमित जीवन और तप से प्रभावित हुये और बहुत स्नेह करने लगे। आपके भोजन वा अन्य सुविधाओं का भी वे ध्यान रखते थे। आपकी भी उनके प्रति अत्यधिक श्रद्धा होगई जो कालान्तर में दृढ़तर होती चली गई।

निजाम सरकार की ओर से सत्याग्रह को कुचलने के लिये सब प्रकार के हथकण्डे अपनाये गये। सत्याग्रहियों से अत्यधिक कठोर श्रम करवाया जाता था। चक्की पीसना, मिट्टी ढोना, पत्थर ढोना और पत्थर तोड़ने जैसे कामों में हरसमय जुटाये रखा जाता था। एक जगह से उठाये हुए मिट्टी के ढेर को थोड़ी देर बाद वापस उसी जगह पर फिर डालना और डाले हुए को फिर उठाना जैसे व्यर्थ के काम केवल इसलिये लिए जाते थे, जिससे सत्याग्रहियों का मनोबल टूट जाये। इस पर भी खाने के लिये सड़ी हुई जुआर की सूखी रोटी दी जाती थी। उसके साथ दाल के नाम पर उबाला हुआ पानी होता था जिसमें दाल के दानों के दर्शन होना दुर्लभ था।

पाठकवृन्द! कल्पना कीजिए ऐसे वातावरण में आर्यवीरों ने कितने कष्ट सहे थे। इसी का परिणाम था कि १२ हजार सत्याग्रहियों का छः हजार मन वजन घट गया था। २० सेर वजन प्रतिव्यक्ति कम होगया था। हमारे चरितनायक ब्रह्मचारी भगवान्देव जी का भी ३५ पौंड वजन घट गया था। इस पर भी आर्य-सत्याग्रहियों ने हिम्मत नहीं हारी और तब तक निरन्तर सत्याग्रह करते रहे जब

तक कि निजाम को झुका न दिया। अनेक व्यक्ति ऐसे थे जिन्होंने अपने बच्चों सहित सत्याग्रह किया और एक बार छोड़ दिये तो दूसरी और तीसरी बार सत्याग्रह कर सफलता मिलने तक जेल में रहे। इसीलिए तो आर्यसमाज ने असम्भव को सम्भव बना दिया। सर्वोच्च राष्ट्रीयनेता जिस कार्य की सफलता को सन्देह की दृष्टि से देखते थे, उसे पूर्ण सफल बना दिया।

नामुमकिन को मुमकिन कर दिखलाता है करनेवाला।
जिसने सिर रख लिया हाथ पर उसने सब कुछ कर डाला॥ (विकल)

भारत छोड़ो आन्दोलन

इस समय हरयाणा में भी कई गुरुकुल चल रहे थे। इनमें गुरुकुल झज्जर तथा गुरुकुल भैंसवाल प्रमुख थे। भैंसवाल गुरुकुल की स्थापना भक्त फूलसिंह जी ने की थी। भक्त जी की प्रसिद्धि उन दिनों दूर-दूर तक फैलचुकी थी। हरयाणा में तो वे बहुत ही लोकप्रिय होचुके थे।

भक्त जी को किसी ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो गुरुकुल के आचार्य पद के लिए उपयुक्त हो। इन्हीं दिनों भक्त जी को ब्रह्मचारी भगवान्देव जी के सम्बन्ध में पता चला। वे ब्रह्मचारी जी के पास आश्रम में आये और इन से गुरुकुल भैंसवाल संभालने का आग्रह किया। साथ ही कहा कि—"आपकी सहायता के लिए मैं भी तैयार रहूंगा तथा बाहर से भी आपकी अधिकाधिक मदद कराऊंगा।" किन्तु ब्रह्मचारी जी ने उनसे असमर्थता प्रकट की और गुरुकुल सम्भालने से निषेध कर दिया। क्योंकि तब तक अखिल भारतीय कांग्रेस के आह्वान पर देश में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन प्रारम्भ होकर अपने यौवन की ओर बढ़ रहा था। ब्रह्मचारी जी भी पूरी शक्ति से इसमें जुटे हुए थे। इनके सम्पर्क में रहे अनेक युवकों ने इस आन्दोलन में मुख्यभूमिका निभाई और जेलें काटीं। वास्तव में देखा जाये तो 'भारत छोड़ो' आन्दोलन की भूमिका तो आर्यसमाज ने ही तैयार की थी। आर्यसमाज की ओर से अंग्रेज-सरकार का विरोध होरहा था। विशेषकर पूरे हरयाणा में आर्यसमाज के स्कूल और पाठशालाओं का जाल बिछा हुआ था और ये सब राष्ट्रीयता के गढ़ थे। हरयाणा में ५०० के लगभग पाठशालाएं थीं जिनका संचालन आर्यसमाज करता था। जहां से अंग्रेज-सरकार के विरुद्ध बगावत की योजनायें बनती थीं। हरयाणाभर में आर्य अध्यापकों ने 'प्रजामण्डल' बना लिये थे। दिन में शिक्षा का काम और रात्रि में सरकार के विरुद्ध प्रचार और संगठन बनाना इन

अध्यापकों का मुख्य ध्येय था। लगन इतनी थी कि रविवार के दिन भी ये अवकाश नहीं करते थे। लक्ष्य बड़ा लम्बा बनाया था। लम्बी लड़ाई लड़ने की भूमिका तैयार करने के लिए शिक्षा का क्षेत्र अपनाया था। जिससे आनेवाली पीढ़ी को भी तैयार किया जासके।

उस समय यह पता नहीं था कि स्वतन्त्रता इतनी निकट है। विशेषरूप से दादरी तहसील में तो आर्यसमाज की पाठशालायें बहुत अधिक थीं। उनमें सभी अध्यापक कर्मठ और आर्यसमाजी ही नियुक्त किये जाते थे। उनके ऊपर आठ निरीक्षक (इन्सपेक्टर) भी आर्यसमाजी ही थे। उन निरीक्षकों के ऊपर प्रधान निरीक्षक प्रसिद्ध आर्यसमाजीनेता श्री निहालसिंह तक्षक थे। श्री तक्षक बाद में पेप्सू के मन्त्रिमण्डल में मन्त्री भी रहे। तक्षक जी उन दिनों दिन रात ऊंट की पीठ पर सवार रहकर शिक्षा और आर्यसमाज के पक्ष में तथा अंग्रेज सरकार के विरुद्ध प्रचार में लगे रहते थे। अनेक अध्यापक जेल भी जाचुके थे। इस तरह भारत छोड़ो आन्दोलन का कार्य आर्यसमाज पहले ही से कररहा था। अब कांग्रेस के आह्वान पर आर्यसमाज ने अगुआ बनकर कार्य किया किन्तु आर्यसमाज ने कभी भी अपनी पृथक् सत्ता नहीं दिखलाई। उस समय आर्यसमाज और कांग्रेस में भेद नहीं था। एक ही सिक्के के दो पहलू थे। इसीलिये सुभाषचन्द्र बोस ने कहा था कि उत्तर भारत में कांग्रेस का काम करनेवाले ८० प्रतिशत लोग आर्यसमाजी हैं और वही आन्दोलन के प्राण हैं।

ब्रह्मचारी जी ने अठारह-अठारह घण्टे प्रतिदिन पैदल घूम-घूमकर इस आन्दोलन के लिये जन-समर्थन जुटाया। आन्दोलन के प्रारम्भ में ही देश के शीर्षस्थनेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। इससे देशभर में रोष फैलगया। तोड़फोड़ की कार्यवाही होनेलगी। ब्रह्मचारी जी के पीछे गुप्तचर रहनेलगे। उन दिनों अधिकांश सक्रिय आर्यसमाजियों पर खुफिया दृष्टि रखी जाती थी। किन्तु ब्रह्मचारी जी ने भी सावधानी से कार्य किया और अपने सहयोगियों को प्रेरित किया। इनके आश्रम में रहनेवाले युवक श्री अजीतसिंह सुपुत्र श्री सूबेदार धीरजसिंह (महीपालपुर) ने कुछ युवकों को साथ लेकर डाकखाना फूंक दिया। वे पकड़े गये और उनको नौ वर्ष की सजा सुनाकर लाहौर जेल में भेज दिया गया। नरेला आर्यसमाज के सदस्य श्री जयलाल स्वर्णकार उन दिनों इन कार्यों के लिये औजार व शस्त्रादि बनाते थे। वे भी गिरफ्तार हुए और जेल गये। १९४६ में गोपीचन्द भार्गव मन्त्री और प्रोफेसर शेरसिंह संसदीय सचिव बने तो उनके प्रयत्नों से ये लोग जेल से छूटे।

इन दिनों श्री सी० कृष्णा नायर व चौ० हीरासिंह आदि इस क्षेत्र में आन्दोलन के अगुआ थे। ब्रह्मचारी जी से मिलकर ये योजनायें बनाते थे। नायर जी वेश बदलकर इनके पास आते रहते थे। आगे चलकर स्वतन्त्रता के बाद श्री नायर जी इस क्षेत्र से लोकसभा के लिये चुने गये। यह ब्रह्मचारी जी के कार्यों का ही परिणाम था।

रेल पटरी उखाड़ना

ब्रह्मचारी जी की प्रेरणा से अनेक क्रान्तिकारी कार्य हुये। स्वामी धर्मानन्द जी के साथ मिलकर श्री जयलाल आर्य स्वर्णकार, श्री हरनन्द, श्री ताराचन्द और श्री रतिराम (स्वामी ईशानन्द) आदि ने दिल्ली अम्बाला रेलवे लाइन को राठधना गांव के पास उखाड़ दिया। इनमें से कुछ को रेलवे सिगनल के तार तोड़ने का काम सौंपा गया था, जो इन्होंने पूरा किया। फलस्वरूप वहां एक भयंकर रेल दुर्घटना हुई। अनेक व्यक्ति उसमें काम आये। अंग्रेज सरकार इस घटना से हिल उठी। दिल्ली की सरकार की नाक के नीचे इतनी बड़ी घटना होजाना सरकार के लिये बहुत बड़ी चुनौती थी। फलस्वरूप खुफिया पुलिस के माध्यम से सरकार सावधान होगई और इस घटना में लगे सभी व्यक्तियों को गिरफ्तार कर लिया। उपर्युक्त व्यक्तियों के अतिरिक्त बवाना के डॉ० राजेश्वर व श्री हरिदत्त (ततीना) का भी इसमें हाथ था, वे भी गिरफ्तार कर लिये गये। इनमें से कुछ को लालकिले के दुर्गन्धभरे भूमिगत अंधेरे तहखानों में डाल दिया गया। भयंकर यातनायें दीगईं। कई दिन तक भूखा रखा गया परन्तु ये सब बहुत पक्के थे। इनमें से किसी ने भी नहीं बतलाया कि इस प्रकार की गतिविधियों का संचालक कौन है और कहां योजनायें बनती हैं। ब्रह्मचारी जी ने भूमिगत रहकर कार्य चालू रखा। अंग्रेज सरकार ने इस केस के शनाख्ती गवाह भी बनाये किन्तु ब्रह्मचारी जी ने उन सबको तोड़ लिया। इस कारण सरकार जिस तरह के मुकदमे में इनको फंसाना चाहती थी, सफल नहीं हुई और इनकी लम्बी जेल भी न होसकी।

गुरुकुल भैंसवाल सम्भालने के लिए पुनः आग्रह

इसी बीच भक्त फूलसिंह जी पुनः दो-तीन बार इनके पास गुरुकुल भैंसवाल सम्भलवाने के लिये नरेला आये तो ब्रह्मचारी जी भक्त जी के साथ गुरुकुल भैंसवाल देखने गये थे। वहां के बड़े ब्रह्मचारी ऐसे फक्कड़ ब्रह्मचारी को गुरुकुल सौंपने के समर्थक नहीं थे। आचार्य विष्णुमित्र जी ने मुझे बताया था कि

प्रात:काल खेतों में शौच के लिये गये तो हमने ब्रह्मचारी भगवान्देव को ढेले मारे थे। गुरुकुल देखकर ब्रह्मचारी जी वापस नरेला आगये। इसके दस दिन बाद भक्त जी को गोली मार दीगई और भक्तजी का बलिदान होगया।

कुछ काल पश्चात् २२ सितम्बर १९४२ को स्वामी ब्रह्मानन्द जी, पं० जगदेवसिंह सिद्धान्ती तथा श्री छोटूराम राठी (खरहर) ब्रह्मचारी जी के पास नरेला गये और उन्होंने इनसे गुरुकुल झज्जर को संभालने के लिये आग्रह किया। स्वामी ब्रह्मानन्द जी उन दिनों गुरुकुल के आचार्य और श्री राठी जी मन्त्री थे। उनके आग्रह को ब्रह्मचारी जी टाल नहीं सके। ब्रह्मचारी भगवान्देव जी उनके साथ प्रथम बार गुरुकुल झज्जर देखने के लिये आये और अपने द्वारा संचालित कार्यों की व्यवस्था करने के लिये वापस नरेला आगये। ८ नवम्बर १९४२ ई० संवत् १९९९ वि० की दीपावली पर रविवार के दिन आपने गुरुकुल झज्जर को संभाल लिया।

ब्रह्मचारी भगवान्देव जी का प्रारम्भ से ही यह स्वभाव रहा है कि ये प्राय: उस कार्य को अवश्य करते हैं जिसको कठिन समझकर दूसरे व्यक्ति करने का साहस नहीं कर पाते। असंभव नहीं तो कठिनतम कार्य को करने के लिए संघर्ष करना इनका स्वभाव था। जब इनको बतलाया गया कि गुरुकुल झज्जर की स्थापना रेलवे की नौकरी छोड़कर पं० विश्वम्भर[१] जी ने किस प्रकार की विषम परिस्थितियों में की थी। उस व्यक्ति का तप-त्याग अब अपनी दयनीय अवस्था के कारण विपन्नता को प्राप्त होरहा है तब ब्रह्मचारी जी ने इस गुरुकुल को सम्भालना और इसका पुनरुद्धार करना स्वीकार कर लिया।

गुरुकुल झज्जर के आचार्य

श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी, श्री सिद्धान्ती जी एवं श्री राठी जी ब्रह्मचारी जी को लेकर गुरुकुल पहुंचे। वहां सम्मान के साथ इन्होंने ब्रह्मचारी जी को गुरुकुल सौंप दिया था। आचार्यपद के साथ गुरुकुल के अन्य कार्यों का भार भी आप पर ही था। दो-चार छोटे ब्रह्मचारियों और दो तीन बूढ़े व्यक्तियों के अतिरिक्त वहां गोशाला में दो बैल और तीन-चार बूढ़ी गायें थीं। एक बड़ा कमरा (हाल) तथा उसके साथ लगते हुए दो छोटे कमरे थे किन्तु उनका शहतीर (लकड़ी का) लोग उतार लेगये थे। गायों के लिये कच्चे मकान थे।

इस अवस्था से निकालकर अपने स्वप्नों का गुरुकुल बना पाने में बार-बार सन्देह दीख पड़ता था। पग-पग पर बाधायें थीं। गुरुकुल के आस-पास रहनेवाले

१. आपका नाम विश्वम्भरदयाल था। किन्तु पण्डित जी विश्वम्भर ही लिखते थे।

गुरुकुल से चिड़ते थे। सहायता देने की जगह वे गुरुकुल से लेने की अपेक्षा रखते थे। अन्य ब्रह्मचारी जुटाकर स्वयं उनको पढ़ाना, स्वयं उनके लिए रोटी पकाना और गायों के लिए स्वयं चारा काटना और स्वयं अपने हाथों से गोबर उठाना आदि सब काम एक ही व्यक्ति पर आपड़े तो अनुमान कीजिए कि उसकी शारीरिक और मानसिक स्थिति क्या होगी। कुछ काल तक लगातार स्वयं ब्रह्मचारी जी अपने आप यह सब कार्य करते रहे। इस पर भी इन्होंने कभी साहस नहीं छोड़ा। श्रेष्ठ लोग प्रारम्भ किये अच्छे कार्य को अधूरा नहीं छोड़ते—''**प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति**'' कदाचित् भर्तृहरि ने यह पंक्ति ऐसे ही नरश्रेष्ठ महापुरुषों के लिए लिखी थी।

गुरुकुल के अधिष्ठाता और उपाचार्य

तीन वर्ष तक अहर्निश कठोर परिश्रम करके जब गुरुकुल की स्थिति को सम्भाल लिया तब ३ अक्तूबर १९४५ को मा० धर्मसिंह (झिंझोली) को अधिष्ठाता बनाकर प्रबन्ध और हिसाब कार्य सौंप दिया और जब इनको पक्का विश्वास होगया कि अब यदि किसी पण्डित को बाहर से भी बुलाया जाये तो वह टिक सकेगा, तब ब्रह्मचारी जी ने अपने वेदविद्यालय दिल्ली के सहपाठी श्री पं० विश्वप्रिय जी को बुलाकर १२ नवम्बर १९४५ को उपाचार्य एवं मुख्याध्यापक नियुक्त कर दिया। गुरुकुल के साथ ब्रह्मचारी जी का नाम सुनकर नये ब्रह्मचारियों ने प्रवेश लेना प्रारम्भ किया। गुरुकुल की प्रबन्धकर्त्री सभा ने भी अब गुरुकुल की उन्नति में रुचि लेना आरम्भ कर दिया। सदस्य अपने पुत्रों को प्रवेश दिलाने लगे। आचार्य जी के आने के पश्चात् एक वर्ष में ही बारह विद्यार्थी आये। सबसे पहले दहकोरा गांव के श्री अमीलाल जी ने अपने दो पुत्र प्रविष्ट करवाये। ये प्रारम्भिक दिनों में गुरुकुल की बहुत अधिक सहायता करते थे। गुरुकुल के लिये अन्न और भूसा स्वयं अपनी बैलगाड़ी से समय-समय पर डालकर जाते थे तथा आर्थिक सहायता भी करते थे। वानप्रस्थ अवस्था में आपने गृह त्यागकर वानप्रस्थ लेकर अपना पूरा जीवन ही गुरुकुल की सेवा में लगा दिया और बाद में आप संन्यास लेकर स्वामी सुलक्षणानन्द के रूप में गुरुकुल में ही सेवारत रहे। आप जैसे अनेक भक्तों ने प्रारम्भिक दिनों में गुरुकुल की भरपूर सहायता की। तत्पश्चात् लाखनमाजरा के दो छात्र जयदेव और रणधीर प्रविष्ट हुये। चौ० झुण्डासिंह फरमाणा (महम) ने भी अपने दो पुत्र भेजे थे। गुरुकुल में इस समय दो कुएं थे, उनमें एक खारे पानी का था, उसमें अरहट था। स्वामी ब्रह्मानन्द जी के समय में आर्यसमाज शाहदरा के द्वारा दूसरा कुआं बनवाया गया था उसमें बहुत अच्छा मीठा पानी निकला। इस पर अरहट लगवाया। गोशाला के लिये कच्ची ईंटों के कमरे थे।

सन् १९४० तक गुरुकुल की सम्पत्ति*

गुरुकुल झज्जर के मुख्याधिष्ठाता तथा आचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द जी द्वारा प्रकाशित सोलह वर्षों (सन् १९२४ से १९४० एवं संवत् १९८० से १९९६ तक) के वृत्तान्त के अनुसार गुरुकुल की सम्पत्ति इस प्रकार थी—

८००० रु० के पक्के और कच्चे मकान।
२५०० रु० के दो पक्के कुएं।
५०० रु० का स्नानागार (पुराने कुएं पर)।
७००० रु० की भूमि १३८ बीघे।
७००० रु० आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब में जमा।
१००० रु० के अन्यान्य सामान, यथा पशु, बैलगाड़ी, तखत, लोहे की तिजोरी, अल्मारी आदि।

२६,००० रु० छब्बीस हजार रु० योग।

उस समय के एक रुपये का मूल्य आज ४०० गुणा होगया है। २६ हजार को ४०० से गुणा करें तो १ करोड़ चालीस लाख बनता है। १३८ बीघे भूमि का मूल्य ७ हजार लिखा है। अब तो झज्जर में सात हजार रुपयों से एक गज भूमि मिलनी कठिन है।

गुरुकुल की पाठविधि

उस समय १ से ६ श्रेणी तक गुरुकुल कांगड़ी की पाठविधि के अनुसार ब्रह्मचारियों को पढाया जाता था। आगे आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उपदेशक विद्यालय लाहौर की पाठविधि के अनुसार "सिद्धान्तभूषण" की पुस्तकें पढ़ाई जाती थीं और साथ ही कुछ वैद्यक भी पढ़ाई जाती थी।

कुछ वर्ष बाद इसी जगह गोशाला के विशाल पक्के भवनों का निर्माण किया, जिनकी नींव डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने १९४७ ई० में रखी थी। गुरुकुल को अब जिन्होंने देखा है वे जानते हैं कि आचार्य जी का तप त्याग वहां किस रूप में फलीभूत होरहा है।

---

* ३१ दिसम्बर १९४५ में मैं (वेदव्रत) गुरुकुल झज्जर में पढने के लिए आया था तब गुरुकुल की यह स्थिति मैंने देखी थी। तत्पश्चात् आचार्य भगवान्देव जी के जीवनकाल में गुरुकुल झज्जर की जो सर्वविध उन्नति हुई उसका मैं प्रत्यक्ष द्रष्टा और निर्माण एवं उत्थान में सहयोगी रहा।

आचार्य जी ने कभी भौतिक साधनों को महत्त्व नहीं दिया अपितु उनकी अपेक्षा देश धर्म का कार्य करनेवाले ब्रह्मचारियों के निर्माण पर अधिक ध्यान दिया तथापि वहां आज महाविद्यालय, पुरातत्त्वसंग्रहालय, पुस्तकालय, औषधालय और गोशाला आदि के जितने विशाल भवन बनाये हैं उनको देखकर आश्चर्य होता है। महाविद्यालय में आर्षपाठविधि से सैकड़ों विद्यार्थी पढ़ते हैं। अनेक प्रवेश के लिए लालायित रहते हैं। पुरातत्त्वसंग्रहालय में विपुल ऐतिहासिक पुरावशेष एकत्रित हैं। औषधालय में निरन्तर औषध-निर्माण चलता है। गोशाला में हरयाणा नसल की तथा अन्य कई नसलों की स्वस्थ सुन्दर गायें हैं। विशाल उद्यान है। उसके मध्य में बनी भव्य यज्ञशाला है। उसके साथ लगा ब्रह्मचारियों का स्नानागार है, जिसके साथ ही एक तरणताल भी बन।या है और यह सब बिना सरकारी अनुदान के किया गया है। इतना बड़ा यज्ञ आचार्य जी के तप त्याग साधना श्रम और हरयाणा के किसानों के दान का प्रतिफल है जो अपने आप में एक बहुत बड़ा आश्चर्य है और अनूठा प्रयोग भी है किन्तु यह सब उतना सहज में नहीं होपाया जितना सहज में लेखनी से लिख देना वा जिह्वा से बतला देना है। इसके पीछे आचार्य जी ने एक लम्बी तपस्या की थी। अनेक संघर्षों का साम्मुख्य किया था। दुनियादारी से सर्वथा अलग लकीर पर चलकर भी उसमें अपने तप के आकर्षण से उन्होंने कुछ अन्य सज्जनों का भी सहयोग प्राप्त किया था।

चिकित्सा-कार्य

जिस समय गुरुकुल सम्भाला था, आचार्य जी के सामने सबसे बड़ा प्रश्न था कि गुरुकुल के कार्य में सहभागी बनाने के लिए लोगों से संपर्क कैसे साधा जाये। इस कार्य के लिए इन्होंने भैषज्य (वैद्यक) का सहारा लेना प्रारम्भ किया। सबसे पहले महाशय हरफूलसिंह जी भदानी गांववाले अपने एक रिश्तेदार को लेकर आचार्य जी के पास आये। वह रांघड़ बाव का रोगी था। आचार्य जी की औषध ने उस पर काम किया और वह ठीक होगया। यहीं से इनकी एक सफल वैद्य के रूप में प्रसिद्धि होने लगी। देखते ही देखते थोड़े दिन बाद इतने रोगी इनके पास आने लगे कि दोपहर तक का समय रोगी देखने में ही लगाना पड़ता था। गुरुकुल के अन्नादि के कार्य के लिये यदि गांव में जाना पड़ता तो वहां भी पूरे गांव के लोग उपचार के लिये एकत्रित होजाते। आचार्य जी के लिए उनका यह सेवाकार्य उनके लिये सिरदर्द बनने लगा। औषध की विश्वसनीयता के लिये

इनको स्वयं औषध निर्माण भी आरम्भ करना पड़ा। आचार्य जी ने अनेक नई आयुर्वेदिक औषधियों का भी आविष्कार किया, जिनमें संजीवनी तैल, बलदामृत, स्वप्नदोषामृत, स्त्री-रोगामृत, सर्पदंशामृत (सर्प काटे की औषध), विषनाशकासव और नेत्रज्योति सुरमा आदि उल्लेखनीय हैं। संजीवनी तैल और सांप की औषध ने तो आपको बहुत ही प्रसिद्धि दिलाई। जले तथा कटे पर संजीवनी तैल अचूक सिद्ध हुआ। बैल के पैर में फाली लगने पर भी किसान लोग इसी का प्रयोग करने लगे। परिणामस्वरूप आचार्य जी ने इस कार्य के लिये भी अनेक व्यक्ति रखे। वैद्य बोधेन्द्रदेव जी (भुरथला कोसली) वासी ने सबसे पहले इस कार्य में सहयोग दिया। श्री बलराम वैद्य नूना माजरा ने भी दीर्घकाल तक रसायनशाला में सेवा की।

गुरुकुल के अध्यापक

गुरुकुल में अध्यापन कार्य श्री पण्डित विश्वप्रिय जी ने सम्भाला। मास्टर धर्मसिंह जी ने प्रबन्ध और हिसाब का कार्य संभाला। आगे चलकर ज्यों-ज्यों विद्यार्थी बढ़ते गये त्यों-त्यों अध्यापकों की भी संख्या बढ़ती गई। प्रथमस्नातकों में से मैंने (वेदव्रत ने) पं० विश्वप्रिय जी के पश्चात् अधिष्ठाता एवं उपाचार्य पद तथा पं० सुदर्शनदेव जी ने मुख्याध्यापक का पद सम्भाला। इनके अतिरिक्त पं० राजवीर (स्नातक), ब्र० यशपाल, ब्र० वेदपाल (झोझू), ब्र० धर्मव्रत (चुड़ेला), ब्र० सोमदेव (बालन्द), पं० गंगाराम (स्वामी दर्शनानन्द), स्वामी भागवतानन्द, ब्र० बलदेव नैष्ठिक मुख्याध्यापक, ब्र० इन्द्रदेव मेधार्थी (स्वामी इन्द्रवेश), ब्र० धर्मदेव आदि ने अध्यापन कार्य संभाला। श्री देवकरण जी दीर्घकाल तक संरक्षक रहे। उनके समय में गुरुकुल का अनुशासन अपने आप में एक आदर्श था।

आचार्य जी गुरुकुल के अन्न, धन आदि जुटाने के लिए अधिकतर बाहर गांवों में जाने लगे। आर्यसमाज के प्रचार के लिये जगह-जगह ब्रह्मचर्य शिक्षण शिविर लगाना भी इन्होंने प्रारम्भ किया।

सन् १९४७ ई० तक आचार्य जी की झज्जर व रोहतक के क्षेत्र में बड़ी प्रसिद्धि होचुकी थी। पहले पहल इनके सम्पर्क में आनेवाले व्यक्तियों में विशेष उल्लेखनीय हैं—श्री जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती, श्री छोटूराम राठी खरहर, श्री न्योनन्दसिंह (स्वामी नित्यानन्द, सुहराकलोई), श्री ब्रह्मदेव (सीदीपुर लोवा), श्री रघुनाथसिंह खरहर, नम्बरदार सुलतानसिंह, महाशय प्रहलादसिंह और महाशय हरफूलसिंह भदानी, दफेदार रिसालसिंह बेरी, श्री उमरावसिंह, श्री जगराम मातनहेल, मा० मंगलीराम खेड़ीजट, ठाकुर हरफूलसिंह बराणी, महा० प्यारेलाल भापड़ौदा,

श्री गरीबराम राठी खरहर, चौ० लखीराम खेड़ी आसरा, श्री चौ० अमीलाल दहकोरा, श्री रिसालसिंह महराणा, कैप्टन ब्रह्मसत्य भापड़ौदा, महा० हरनारायण व चौ० शीशराम बाघपुर, हरकेराम गुभाणा, जुगलाल ढाकला, सुखराम सुरेहती, नम्बरदार शुभराम व सुखचैन मातनहेल, रामगोपाल पलड़ा, भोलाराम महराणा, चुन्नीलाल लाडपुर, चौ० शिवनारायण आकूपुर, अमरसिंह मारौत, नम्बरदार धीरु, म० प्यारेलाल और ज्ञानचन्द भापड़ौदा, पृथीसिंह नयाबांस, चौ० खुशीराम आसौदा, सूबेराम समायल, महाशय इन्द्राज खेड़का, चौ० रामगोपाल व लज्जेराम छारा, पं० सोहनलाल लूखी, किशनसहाय लूलोढ़, चौ० ललतीराम दातौली, जुगलाल सुवाणा, मास्टर पोहकरमल गोयला, कप्तान रामकला धांधलाण, मेजर मेहरचन्द खुंगाई, सीताराम गोच्छी (इन्होंने उस जमाने में गुरुकुल को २५०० रु० दान दिया), राव उदयसिंह खेड़ी खुमार, राव मंगलीराम खातीवास, लाला परसराम व भगत खेमराम झज्जर, मास्टर घीसूराम कलोई, फकीरचन्द दहकोरा, चन्दगीराम मुण्ढेला, चौ० लेखराम टीकरी, लहरीसिंह कोट, महा० सूरतसिंह रैया आदि। प्रो० शेरसिंह से परिचय कुछ दिन बाद हुआ। इसी प्रारम्भिक परिचय ने थोड़े समय बाद ही बहुत अधिक विस्तार पाया। आचार्य जी की कार्यशैली ने सम्पर्क में आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित किया। प्रभावित व्यक्ति इनका प्रशंसक और प्रचारक बना और १९४७ तक पूरे हरयाणा के जन–जन तक ही नहीं, भारतभर के आर्यसमाजीक्षेत्रों में आचार्य जी सुप्रसिद्ध होगये।

फतहसिंह भण्डारी

गुरुकुल के सम्बन्ध में सुनकर झज्जर हाईस्कूल के विद्यार्थी भी ब्रह्मचारियों को देखने आने लगे। इन्हीं में युवक फतहसिंह रैय्यावाले भी थे। इनको सन् १९४७ में होनेवाली रजतजयन्ती के पत्रव्यवहार के लिए गुरुकुल में रख लिया। रजतजयन्ती पर आपने भण्डार का कार्य संभाल लिया अतः सभी आपको भण्डारी जी के नाम से पुकारने लगे। श्री भण्डारी जी गुरुकुल के प्रमुखस्तम्भों में से एक हैं। अन्नसंग्रह व बाहर की व्यवस्था की देखरेख की पूरी जिम्मेदारी आप पर रही। आचार्य जी के बाद आप ही सबसे पुराने व्यक्ति हैं जो गुरुकुल में हैं। आपने गुरुकुल के अनेक उतार–चढाव देखे हैं। आपने गुरुकुल की सेवा का व्रत उस समय लिया था जब आचार्य जी उसकी उजड़ी हुई अवस्था में अपने हाथों से पुनरुद्धार करने लगे। आचार्य जी और छात्रों के साथ गोबर–मिट्टी से स्वयं कच्चे मकानों की लिपाई करना, पशुओं के लिए हाथ से चारा काटना और खेत का काम

करना जैसे कठिन कार्य इन्होंने प्रारम्भ में स्वयं किये हैं। आप अनुभवी और कर्मठ हैं। गुरुकुल की उन्नति की अहर्निश चिन्ता रखते हैं। इस प्रकार ज्यों-ज्यों आचार्य जी का प्रभाव बढ़ता गया त्यों-त्यों गुरुकुल के लिए सहायक व्यक्ति भी जुटते गये।

मेवात में सहायता कार्य

सन् १९४६ ई० में हरयाणा में एक बड़ी भयंकर घटना हुई। गुड़गांव के मेवातक्षेत्र में मुसलमानों ने हिन्दू गांवों पर हमला कर दिया। अनेक गांवों में आग लगादी। कई गांव जलकर भस्म होगये। भयंकर रक्तपात की शुरुआत हुई। यह अंग्रेजों की उस चाल का फल था जो लम्बे समय से हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई के बीच फूट का जहर बोरहे थे। इन दोनों को लड़ाकर राज करते रहना उनका उद्देश्य था। इस कांड में मुख्यरूप से गुड़गांव के अंग्रेज डिप्टी-कमिश्नर का हाथ था। उसने मुसलमानों में शस्त्रास्त्र बंटवाये और उनको आक्रमण के लिए उकसाया। इस घटना से पूरा देश हिल उठा। कांग्रेस के उच्चनेताओं ने हस्तक्षेप किया। सरदार पटेल ने बिरला जी को प्रेरणा की। उन्होंने आर्थिक सहायता तथा दो ट्रक अन्न के भिजवाये। आचार्य भगवान्देव जी व प्रो० शेरसिंह जी ने जले हुए सभी गांवों का दौरा किया और दो हजार मन अनाज इकट्ठा कर वहां भिजवाया। बहुत सारी औषधियां भी भिजवाईं। आर्थिक सहायता भी करवाई। गांव-गांव जाकर पीड़ित लोगों को आश्वस्त किया। उस कठिन समय में की गई इनकी सहायता और सेवा को मेवात के पुराने लोग श्रद्धापूर्वक याद करते हैं। यह सेवा आगे चलकर श्री प्रकाशवीर शास्त्री के M.P. के चुनाव में काम आई। यहां के लोगों ने आचार्य जी आदि के आह्वान पर शास्त्री जी का भरपूर साथ दिया और उनको विजयी बनाया।

फौजी भाइयों का सहयोग

इस समय तक हरयाणा में आचार्य जी की ख्याति होचुकी थी। इनके त्यागी तपस्वी और कर्मठ जीवन से हरयाणावासी अत्यधिक प्रभावित थे। विशेषकर फौजी भाइयों की ओर से बहुत अधिक सहयोग मिल रहा था। सबसे पहले १७ पूनाहोर्स के फौजियों ने आचार्य जी को निमन्त्रित किया। उस समय यह बटालियन लखनऊ में थी। आचार्य जी ने वहां पहुंचकर एक वेद से यज्ञ करवाया। यज्ञ के उपरान्त प्रतिदिन आचार्य जी का उपदेश होता था, जिसको बटालियन के सभी

छोटे-बड़े ऑफिसर और सैनिक बड़ी श्रद्धा से सुनते थे। वे सब आचार्य जी से इतने अधिक प्रभावित हुये कि इनकी प्रेरणा पर अधिकांश लोगों ने यज्ञोपवीत धारण किये। यहां आचार्य जी को गुरुकुल के लिये आठ सौ रुपये दान मिला। इस बटालियन के अधिक सहयोगी व्यक्तियों में दफेदार रिसालसिंह बेरी, श्री रिसालसिंह महराणा, श्री रघुनाथसिंह खरहर, श्री ब्रह्मदेव जी व श्री उमरावसिंह खेड़ीजट विशेष उल्लेखनीय हैं। आचार्य जी इनसे विदा लेकर अयोध्या गुरुकुल होते हुये बनारस पहुंचे। वहां से आपने दान में मिले सब रुपयों के वे संस्कृतग्रन्थ खरीद लिये जो विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम में लगते थे।

माता का देहान्त

बनारस से लौटते ही सूचना मिली कि आपकी माताजी का एक दुर्घटनावश (ऊंटनी की टक्कर से) देहान्त होगया है। सूचना पाकर आचार्य जी बिना विचलित हुये आसन लगाकर भगवान् के ध्यान में बैठ गये। मोहमाया से दूर रखने की शक्ति के लिये प्रभु से प्रार्थना कर वे निरन्तर काम में जुटे रहे। वे पं० लेखराम की भांति इस परीक्षा में भी खरे उतरे। पिताजी का देहान्त तो पहले होचुका था।

गुरुकुल की रजत-जयन्ती मनाने का निश्चय

गुरुकुल झज्जर की स्थापना तिथि २ ज्येष्ठ सम्वत् १९७२ तदनुसार १६ मई १९१५ को झज्जर के पं० विश्वम्भरनाथ जी के प्रयत्न से आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब ने झज्जर में गुरुकुल खोलने का प्रस्ताव पास किया। तत्पश्चात् महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) जी ने गुरुकुल की आधारशिला रखी। महाशय कृष्ण जी भी इस अवसर पर उपस्थित थे। स्थापना के २५ वर्ष के बाद गुरुकुल का रजत-जयन्ती समारोह १९४० ई० में सम्पन्न होजाना चाहिये था किन्तु उस समय गुरुकुल की अवस्था अच्छी नहीं थी। पं० विश्वम्भरनाथ जी के उपरान्त आठ वर्ष तक गुरुकुल लगभग बन्द ही पड़ा रहा। उसके बाद २ मार्च १९२४ से १९४० तक गुरुकुल का संचालन स्वामी ब्रह्मानन्द जी व स्वामी परमानन्द जी ने किया। सन् १९४० में गुरुकुल के अधिष्ठाता स्वामी परमानन्द जी का देहावसान होगया। स्वामी ब्रह्मानन्द जी अधिक वृद्ध होगये। फलस्वरूप गुरुकुल की अवस्था डगमगा गई। रजतजयन्ती मनाना तो दूर रहा, गुरुकुल का संचालन भी कठिन होगया। ऐसी अवस्था में आचार्य भगवान्देव जी ने ८ नवम्बर १९४२ ई० में इस संस्था को सम्भाला। चार वर्ष अथक परिश्रम करके इसको पैरों पर खड़ा किया

तब ८ से २२ फरवरी १९४७ तक रजतजयन्ती महोत्सव मनाने का निश्चय किया गया।

जयन्ती समारोह की तैयारी

जयन्ती महोत्सव की तैयारी के लिये आप गांव-गांव घूमे। अनेक जगह ब्रह्मचर्य शिक्षण शिविर लगाये। लोगों ने जयन्ती के लिये दिल खोलकर दान दिया। जयन्ती की शुरुआत से पहले ही दूर-दूर से आकर लोग गुरुकुल में एकत्रित होने लगे। आचार्य जी की कर्मठता को देखने का अनेक लोगों को अवसर मिल रहा था। श्री जगदेवसिंह सिद्धान्ती (बरहाणा), आचार्य राजेन्द्रनाथ शास्त्री (दिल्ली), प्रो० शेरसिंह (बाघपुर) और चौ० गरीबराम राठी (खरहर) आदि अनेक गणमान्य व्यक्ति समारोह को सफल बनाने के लिये जुटे हुये थे। चार दिन तक लगातार गुरुकुलभूमि में अथाह जनसमुद्र उमड़ पड़ा था। स्वयं आचार्य जी की आशा से भी अधिक उत्साह लोगों में था। कुम्भ के मेले का सा दृश्य था। हजारों लोग आचार्यप्रवर के आगे नतमस्तक हो उनकी चरणवन्दना कर अपनी श्रद्धा आस्था प्रकट कर रहे थे। दूसरी ओर दण्डकमण्डलधारी शिखावान् ब्रह्मचारी लोगों के लिए सुखद आकर्षण का केन्द्र बना हुआ था। हरयाणा के प्रसिद्ध प्रचारक चौ० न्योनन्दसिंह (कलोई) और महाशय प्यारेलाल (भापड़ौदा) के ओजस्वी भजनोपदेशों की अपनी निराली ही छटा था। जिस समय आचार्य जी ने गुरुकुल के लिये दान देने के लिये अपील की तो उस समय जो भावविह्वल दृश्य बना उसको देखनेवाले आज भी उसका वर्णन करते हुए भावविभोर हो उठते हैं। आचार्य जी की अपील पर देखते-देखते लोगों ने ३० हजार रुपये दान दिया। अनेक लोग ऐसे थे जिन्होंने अपने पास किराये के लिये भी पैसा न रखा सब देदिया।

इससे पूर्व आचार्य जी ने गुरुकुल में इसलिये उत्सव नहीं किया था कि उत्सव में मातायें भी आने लगेंगी तो गुरुकुल के लिये अच्छा नहीं होगा किन्तु बाद में गुरुकुल की प्रबन्धकर्त्री सभा के आग्रह पर गुरुकुल में उत्सव करना तथा केवल उत्सव के समय माता बहिनों का आगमन स्वीकार कर लिया था। इस अवसर पर माता व बहिनें भी पीछे नहीं रहीं। उन्होंने भी अपने आभूषण उतारकर दान करने प्रारम्भ किये। यदि आचार्य जी उस समय न रोकते तो न जाने कितने आभूषण दान कर दिये जाते। ८ फरवरी से चतुर्वेदपारायण महायज्ञ प्रारम्भ हुआ और १९, २०, २१, २२ फरवरी को रजत-जयन्ती महोत्सव पूर्ण तैयारी के साथ मनाया गया। इस प्रकार यह समारोह सोत्साह सम्पन्न हुआ।

ब्रह्मचारियों द्वारा वेदमन्त्रों का मधुर उच्चारण तथा संस्कृत सम्भाषण सुनकर और आसनादि देखकर एक गहरी छाप लिये जब लोग घरों को लौट रहे थे तो भविष्य में गुरुकुल की अधिक सहायता का संकल्प मन में लेरहे थे। आचार्य जी को उन्होंने अब अपना गुरु स्वीकार कर लिया था। उनके किसी भी आह्वान पर मरमिटने की भावना उनके मन में जाग चुकी थी। आनेवाला समय उनकी इन भावनाओं का साक्षी बना। हिन्दी आन्दोलन हुआ, चाहे चण्डीगढ़ आन्दोलन, गोरक्षा आन्दोलन वा कुण्डली का बूचड़खाना तोड़ने का अभियान, लोगों ने सदा अपने को समर्पित रखा। आचार्य जी के समवेत चरित्र-धन और महान् व्यक्तित्व के कारण ही लोग सदा इनके पीछे चले। इनका सब कुछ औरों के लिये था। जीवन में इनका यह व्रत इनको महान् से महत्तर और महत्तम बनाता रहा। इन्होंने जीवन के उषःकाल से ही दूसरों के लिये जीना और दूसरों के लिये करना सीखा था। इसीलिये लोग सदा इनके लिए जीवन देने को तैयार रहते थे।

आचार्य जी के जीवन की यह विशेषता प्रखररूप में उस समय सामने आई जब जयन्ती पर मिले ३० हजार रुपये गुरुकुल में खर्च न कर सन् १९४७ की मारकाट में फंसे लोगों के प्राण बचाने में लगा दिये।

आजादी के लिये संकल्प—

जयन्ती महोत्सव के अन्तिम सन्देश के रूप में लोगों को राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में जी-जान से जुटे रहने का आह्वान किया। प्रत्युत्तर में लोगों ने यज्ञ में आहुति डालकर देश की आजादी के लिये मरमिटने की शपथ ली। इससे इस क्षेत्र में स्वतन्त्रता आन्दोलन में जनजीवन का संचार हुआ। लोग कफन बांधकर जंगे आजादी में कूद पड़े। आचार्य जी भी गुरुकुल से निकल पड़े। अहर्निश मोटर साइकल दौड़ाते हुए जनसम्पर्क करते रहे और लोगों में नये प्राण फूंके। फलतः गांव-गांव में प्रभातफेरियां होने लगीं। भारतमाता के और गांधी जी के जयकारों से हरयाणा की चप्पा-चप्पा भूमि अनुप्राणित होगई। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का चर्खे के चिह्नवाला तिरंगा झण्डा हर जगह लहराने लगा। बिस्मिल, अशफाक, रोशन, लाहिड़ी, भगतसिंह और आजाद की शहादत के गीत आबालवृद्ध वनिता की जबान पर आगये। आजाद हिन्द फौज की मार्चफास्ट धुन बजने लगी। नौजवानों की मस्त टोलियां अद्‌भुत आत्मविश्वास से गाने लगीं—

इलाही वो भी दिन होगा, जब अपना राज देखेंगे।
जब अपनी ही जमीं होगी और अपना आसमां होगा॥

सम्पूर्ण राष्ट्र उत्साह, उमंग और सरफरोशी की तमन्नाओं से सराबोर था। राष्ट्रीयनेता आजादी को सन्निकट मानकर अपनी भावी योजनाओं की ओर अभिमुख होरहे थे। उन पर दोहरा भार था। एक जनता में आई जागृति को बनाये रखना और दूसरा गौरांग महाप्रभुओं पर डाले गये दबाव को बनाये रखते हुए उनको निश्चित अवधि के अन्दर सत्ता हस्तान्तरित करने हेतु तैयार करना। भारतीय जनमानस और नेतृवर्ग का ध्यान इधर लगा था। जबकि अंग्रेज दूसरी ओर चुपके-चुपके एक भयंकर विषवृक्ष को लगाकर उसमें खाद और पानी देने में लगे थे। उनको अपनी बुद्धि पर विश्वास था। भारतीयों की सदियों पुरानी बीमारी फूट को वे जानते थे। उसका कारगर प्रयोग कर वे आजादी देकर भी वापस लेने की घात में थे। हिन्दू और मुस्लिम दो भाइयों के बीच आत्मघाती फूट का बीजारोपण वे वर्षों से करते आरहे थे। इस बीज को अंकुरित हुये बहुत दिन होगये थे। अब वह बढ़कर पौधा बन गया था, जिसे पल्लवित, पुष्पित और फलित होते देखने का स्वप्न संजोये एक भयंकर विस्फोट की आशा से वे आगे बढ़ रहे थे। उनकी आशा सफल हुई।

आजादी तथा रक्तपात

अंग्रेजों ने हमें आजादी और रक्तपात दोनों एक साथ दिये। एक आंख में आजादी की खुशी के आंसू तो दूसरी में गम के आंसू हमारी नियति बना दिये।

१५ अगस्त सन् १९४७ की अर्धरात्रि में वे एक हाथ से सत्ता देरहे थे और दूसरे हाथ से फूट के बम में पलीता लगाकर उसे छीनने का प्रयास शुरू कर चुके थे। यदि उनको कहीं थोड़ी शंका थी तो केवल राष्ट्रीयनेताओं की उच्चयोग्यता और भारतीय जनता की सहनशीलता के कारण थी। यदि मिस्टर जिन्ना अंग्रेजों के हाथ की कठपुतली न बनते तो उनके बुरे इरादों पर उसी दिन पानी फिर जाता और जो भयंकर रक्तपात हुआ उससे देश बच जाता। लाखों लोगों की जानें न जातीं, माताओं की कोख सूनी न होती, युवतियों के सुहाग न लुटते और बहिनों से भाई अलग न होते। न भाइयों को बहिनों के चीरहरण का विक्षोभ होता और न बच्चे दर-दर की ठोकरें खाते। तब लार्ड माउंटबेटन को शिमला में बैठकर हमारा मजाक उड़ाने का अवसर न मिलता। वह उसी रात अपना बोरिया बिस्तर बांध इंग्लैण्ड कूच कर जाता। अंग्रेजों की दुरभिसन्धि का भांडा बीच चौराहे पर फूट जाता।

तब जो कुछ हुआ सो तो हुआ। अब भी उसकी परछाई नहीं मिटी है। उस समय का डाला गया भयंकर विष आज भी जब कभी जहां कहीं अपना असर

दिखाता है और दो भाइयों की तलवारें म्यान से बाहर आकर एक दूसरे के खून की प्यासी बन जाती हैं। एक मिट्टी में जन्मे, उसी में पले दोनों भाई भारत मां के भाल पर अपने पवित्र रक्त का कलंक में परिवर्तित हुआ टीका लगाने में शर्म भी अनुभव नहीं करते और इसको तूल देते हैं वे लोग जिनको ईर्ष्या, द्वेष, घृणा और साम्प्रदायिकता घुट्टी में ही घोलकर पिलादी जाती है। वे अपना अस्तित्व ही इस घृणा की नींव पर मानते हैं। इस पर भी तुर्रा तो इस बात का कि वे समझाने पर उल्टे हमें ही उपदेश देने लगते हैं। इस प्रवृत्ति से कब हमारा राष्ट्र बच सकेगा, भगवान् जाने।

अंग्रेजों ने साम्प्रदायिकता और जातीयभावनाओं से सींचकर फूटरूपी विषवृक्ष को किस प्रकार बड़ा किया और उसका उपयोग किस रूप में किया यह एक अलग और दिलचस्प कहानी है। इसका उल्लेख करना विषयान्तर होगा परन्तु यहां यह लिखना अनिवार्य है कि इस जहर ने जो रूप धारण किया उसके मायाजाल में बड़े-बड़े लोग फंस गये, अथवा यूं कहना चाहिए कि जिन्ना के दिल में दहकाई आग ने पूरे पाकिस्तान को अपनी लपेट में लेलिया। वहां हिन्दुओं का जघन्यतम नरसंहार हुआ और नई सीमा के उस पार से गाजर-मूलियों की तरह कटे मानव शरीर से भरी रेलगाड़ियां आने लगीं तो भारतीय जनमानस के धैर्य्य का बांध टूट गया। नेता किंकर्त्तव्यविमूढ होगये। गान्धी जी द्वारा बार-बार की गई अपीलों का भी कोई असर नहीं हुआ तो प्रतिक्रियास्वरूप यहां भी वही नरसंहार प्रारम्भ हुआ जो उधर होरहा था। इधर प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक ही नहीं अपितु अनिवार्य इसलिए माना गया कि जवाबी कार्यवाही होने पर ही उधर से निर्वासित होनेवाले व्यक्ति बचकर आसकेंगे अन्यथा एक भी जीवित नहीं आयेगा। इस दलील के देनेवालों में सबसे प्रमुख थे सरदार वल्लभभाई पटेल। पं० जवाहरलाल नेहरू बचाव के रास्ते की तलाश में थे कि सरदार पटेल ने चुपके-चुपके हरक्षेत्र के लोगों को बुलाकर तुरन्त जवाबी कार्यवाही का आदेश दिया।

परिस्थितियां कुछ इतनी विषम बन गईं थीं कि सांप को भी न मारनेवाले संन्यासियों को भी इस मैदान में कूदना पड़ा। राष्ट्रधर्म ने कदाचित् उनको अब अपनी व्यक्तिगत और आध्यात्मिक दोनों ही मान्यताओं को छोड़ सामयिक अनिवार्यता का बन्दी बना लिया था। तब उन्हें सर्वजन नहीं तो कम से कम राष्ट्रजनहिताय, राष्ट्रजनसुखाय यह करना ही पड़ा। यह उस समय सबसे बड़ा कर्त्तव्य था। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी तथा स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने भी

सरदार पटेल की तरह प्रेरित किया। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी सरदार से पहले ही मिल चुके थे। परिणामस्वरूप रोहतक में एक मीटिंग बुलाई गई और भावी योजना तैयार की गई। उधर रावलपिण्डी से स्वामी आत्मानन्द जी का भगवान्देव आचार्य जी को सन्देश आया कि एकदम २० जुलाई से पहले पहुंचो। ध्यान रहे मार-काट १५ अगस्त से पहले ही प्रारम्भ होचुकी थी। क्योंकि अंग्रेज ऐसी परिस्थिति पैदा करने का अन्तिम प्रयास करना चाहते थे जिसका बहाना कर निश्चित हुई आजादी को टाला जासके। भारतीय नेताओं को भी इस बात की भनक थी और वे भी कोई अवसर चूकना नहीं चाहते थे। भावी घटनाओं से सभी परिचित होगये थे। इसलिये इधर से भी तैयारियां होरही थीं। परन्तु वे तैयारियां तभी क्रियान्वित करने की शर्त स्वयं इन लोगों ने लगा रखी थी जब कि वैसा करना विवशता न बन जाये।

स्वामी जी ने आचार्य जी को हथियार देने के लिये रावपिण्डी बुलाया था। उन दिनों उधर जाना भी खतरे से खाली नहीं था। रक्तपात उस समय अपनी पराकाष्ठा पर था। ऐसे में उधर जाना स्वयं मौत को बुलावा देने जैसा था किन्तु क्या किया जाये, स्वामी जी का आदेश था, जो टाला नहीं जासकता था। उस समय आचार्य जी दाढ़ी-मूंछ रखते थे। सिर पर बड़ी चोटी भी थी। ऐसे में ये और महाशय भरतसिंह वेश बदलकर रावलपिण्डी पहुंचे। सिर की चोटी छुपाने के लिए सिर पर जो कपड़ा बांधा वह कफन समझकर बांधा था। मार्ग में इन्होंने नरकङ्कालों का जो हृदयविदारक दृश्य देखा वह वर्णनातीत है। हृदय में भयंकर पीड़ा और संताप लिये जैसे-जैसे करके आचार्य जी और महाशय जी चोहांभक्ता (रावलपिण्डी) में स्वामी जी के पास पहुंचे। स्वामी जी ने रात में घुमाकर वहां के हालात दिखाये। स्वामी जी ने इनके लिये हथियारों का जो प्रबन्ध किया था उनको वहां से निकालकर लाना भी एक बहुत बड़ी समस्या थी। क्योंकि उधर से आनेवाले प्रत्येक पुरुष की ही नहीं अपितु हर स्त्री की भी तलाशी ली जाती थी। जिसके पास जो कुछ मिलता उसे छीन लिया जाता था। बहुतों को मार भी दिया जाता था। ऐसे में हथियार लाना कितना भयावह था यह आसानी से समझा जा सकता है। उधर से आनेवालों की रावी के किनारे शाहदरा में तलाशी लीजाती थी। पहले स्वामी आत्मानन्द जी महाराज इस स्थान पर निरीक्षण के लिये आये। उसके अनुसार पीपियों में ग्रीस भरकर उनमें रिवाल्वर डाल दिये गये। उनका पार्सल करा दिया गया। इस तरह १० रिवाल्वर वहां से निकाले। पांच पाकिस्तान बनने के बाद में आये।

शस्त्रास्त्र प्राप्त करने के लिये देहरादून भी जाना पड़ा। क्योंकि रावलपिण्डी से लाये गये हथियार अपर्याप्त थे। देहरादून में आर्यवीरदल के एक कार्यकर्त्ता ने हथियारों की व्यवस्था की थी। इसके लिये उसको बहुत अधिक भागदौड़ करनी पड़ी। वहां आचार्य जी के साथ महाशय भरतसिंह के अतिरिक्त ब्रह्मचारी हरिशरण और आई.एन.ए. के कप्तान कंवलसिंह (मांडोठी) भी थे। यहां से भी हथियार लाना कठिन था। मार्ग में अनेक जगह तलाशियां होसकती थीं। आचार्य जी ने सावधानी के लिये चारों व्यक्तियों को दो भागों में बांट दिया। कप्तान कंवलसिंह व महाशय भरतसिंह को बड़े हथियार लेकर कार द्वारा झज्जर पहुंचने का कार्य सौंपा और स्वयं तथा ब्र० हरिशरण जी कुछ अन्य हथियार लेकर बस के द्वारा देहरादून से चले। यदि पकड़े भी जायें तो चारों एक साथ न पकड़ में आयें, यह सोचकर यह योजना बनी थी। कार से लाये जानेवाले हथियारों को बहुत सावधानी से छुपाया गया था। जो सन्देह मनमें था आखिर वह पूरा हुआ और मार्ग में एक बार तो तलाशी में कार के हथियार बाल-बाल बचे। यदि उस समय महाशय जी और कप्तान साहब ने साहस और बुद्धिमत्ता से काम न लिया होता तो हथियार तो जाते ही जाते, ये दोनों व्यक्ति भी पकड़े जाते और भावी योजना को धक्का लगता।

हुआ यह कि जब पुलिस ने इनकी कार को तलाशी के लिये रोका तो इन्होंने चेहरे पर किसी भी प्रकार की घबराहट के चिह्न नहीं आने दिये। बल्कि बड़ी मस्ती में उनको तलाशी देने के लिये तैयार होगये। पुलिसवालों को यह कहकर कि हम सामनेवाले कुएं पर पानी पी लेते हैं तब तक आप आराम से तलाशी लेलीजिए, कुएं पर चले गये और पूर्व निश्चयानुसार ड्राईवर भी गाड़ी से दूर जा बैठा। इनके इस व्यवहार से पुलिसवालों को किसी प्रकार का संदेह नहीं हुआ और उन्होंने बहुत ही उपेक्षाभाव से तलाशी लेकर कार को छोड़ दिया। कार की आगे पीछे की दोनों सीटों में हथियार भरे गये थे। कार के नीचे भी गुप्तविधि से शस्त्र छिपाये गये थे। यदि सीटों को थोड़ी सावधानी से पुलिसवाले देख लेते तो पूरी योजना पर पानी फिर सकता था परन्तु जब बचानेवाला साथ हो तो मारनेवाला क्या करेगा। जब महाशय जी और कप्तान साहब ने यह देखा कि पुलिसवाले कार को छोड़ दूर जा बैठे हैं तो ये बहुत ही स्वाभाविक रूप से कार के पास विलम्ब करके आये। आते ही पुलिसवालों ने कहा आप जाइये हम तलाशी लेचुके हैं। उनकी यह बात सुनकर इनके दम में दम आया। गाड़ी में बैठ प्रभु का लाख-लाख धन्यवाद करते हुये ये अपनी मंजिल की ओर बढ़े। दूसरी ओर आचार्य जी

तथा ब्रह्मचारी हरिशरण जी भी बस द्वारा अभीष्ट सामग्री लेकर गुरुकुल झज्जर पहुंच गये। इसके पश्चात् आरम्भ हुआ भय आतंक और मारकाट का वह भयावह दौर जो समय और परिस्थितियों ने इन लोगों पर लाद दिया था।

जब गुरुकुल एक छावनी बना

कई महीनों से इस प्रकार की तैयारियां चल रही थीं। अंग्रेजों की कूटनीतिक चाल में हिन्दू और मुस्लिम दोनों फंस गये थे। हवायें गर्म थीं। दोनों का खून खोल रहा था। इस पर नेताओं के असंयत वक्तव्य स्थिति को बिगाड़ रहे थे। विशेषकर मिस्टर जिन्ना के बयान तो सुलगती अग्नि में हवा का कार्य कर रहे थे। भारत मां के दो टुकड़े होने पर बननेवाले पाकिस्तान की भूमि पर घटनेवाले घटनाचक्र की सम्भावनाओं और उधर से आनेवाली अफवाहों ने इधर के लोगों को भी सजग कर दिया था। ज्यों-ज्यों आजादी का पवित्र दिन निकट आरहा था त्यों-त्यों साम्प्रदायिक तनाव भी तेजी से बढ़ रहा था। इसी बीच एक खबर आई कि लाहौर में हिन्दुओं को गाजर-मूली की तरह काटा जारहा है। महात्मा गान्धी और पं० नेहरू सरीखे नेताओं ने शान्ति स्थापित करने के लिये बार-बार अपीलें कीं तब उनका असर हुआ और हिन्दूजनता कुछ समय शान्त भी रही परन्तु जब यह पता चला कि पश्चिमी पंजाब और पूर्वी बंगाल में हिन्दुओं की बहन-बेटियों को नंगा करके गोलियों से उड़ाया जाने लगा है और गोद में लिये बच्चों को तथा दूध पिलाती माताओं को उनके पतियों के सामने मौत के घाट उतार दिया गया है। हजारों अबलाओं ने इज्जत बचाने के लिये कुएं में कूदकर आत्म-हत्या करली है, कोई परिवार ऐसा शायद ही हो जिसके सब सदस्य सकुशल भारत आगये हों, किसी का पुत्र मारा गया, किसी की पुत्री, किसी की मां तो किसी का बाप। कोई विधवा होगई, कोई विधुर। हजारों असहाय नन्हें-मुन्ने तड़प-तड़प कर मर गये तो हजारों अनाथ होगये।

तब इधर भारत में हिन्दुओं में भी प्रतिहिंसा की अग्नि धधक उठी। यहां भी असंख्य मुसलमानों को मौत के घाट उतारा जाने लगा। वह समय इतना भयावह था कि किसी को भी अपने प्राण व धन-सम्पत्ति की रक्षा का विश्वास नहीं रहा था। झज्जर के पूरे क्षेत्र में केवल आचार्य भगवान्देव जी ही ऐसे व्यक्ति थे जिनसे लोग सुरक्षा की आशा लगाये हुए थे। फलस्वरूप झज्जर और उसके आस-पास के गांवों के हजारों परिवार गुरुकुल पहुंच गये। आचार्य जी ने दिन-रात एक करके

उनके लिये टैण्टों में निवास और भोजन का प्रबन्ध किया। हथियार पहले से जुटा ही लिये थे। प्रतिदिन दस मन चने की बाकली और भोजन पकाया जाने लगा। गुरुकुल ने तब एक बड़े युद्ध शिविर एवं छावनी का रूप लेलिया था।

एक ओर हजारों परिवारों के रहने और खाने का प्रबन्ध करना और दूसरी ओर जगह-जगह जाकर चढ़ाई करने का कार्य आचार्य जी के ही सामर्थ्य की बात थी। इस समय आचार्य जी ने लोगों को जो अभयदान दिया उससे इस क्षेत्र में देवता की तरह पूजे जाने लगे। जगह-जगह चढ़ाई करने की कमान स्वयं आचार्य जी और ब्रह्मचारी हरिशरण जी ने सम्भाली। दिन-रात ऊंट की पीठ पर बैठकर उसे दौड़ाते हुए पूरे इलाके में अगले दिन की योजना समझाना और उसको क्रियान्वित करने की जिम्मेदारी सौंपने का कार्य भी स्वयं करना कितना कठिन था। अनेक बार चलते-चलते नींद आजाती थी। न जाने इन्होंने उन दिनों ऊंट की पीठ पर ही कितनी रातें काटी थीं। इससे आचार्य जी के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ा। पर उससे क्या! वे तो एक लक्ष्य को पाने में जुटे थे।

वे तो एक अनोखी जिद में जान पर अपनी खेल गये।
उन ने अपनी नाव डुबोकर हम को पार उतारा है॥

बिलोचपुरा, खेतावास, कन्हवा, छुछकवास, शाहजहांपुर और दादरी तोय आदि पर चढ़ाई की गई। फिर यहां की देखा-देखी चढ़ाइयों का सिलसिला सब जगह शुरु होगया। छुछकवास पर चढ़ाई के समय ब्र० हरिशरण की छाती में दाहिने हाथ के नीचे गोली लगी जो बाईं ओर पार निकलगई। उनको शीघ्र ले जाकर बेरी हस्पताल में भर्ती कराया गया। वहां डाकटर ने कहा कि यह तो बच नहीं सकता किन्तु तभी ब्रह्मचारी जी ने डाक्टर से कहा कि "यदि आप मुझे अंग्रेजी दवाई न दें तो मैं मर नहीं सकता।" डाक्टर उनकी बात सुनकर अत्यधिक विस्मित हुआ और कहने लगा मैंने इतना साहसी एवं संकल्प का धनी आदमी आज तक नहीं देखा। डाक्टर ने उनका इलाज किया और वे ठीक होगये और आचार्य जी का हाथ बटाने लगे। हरिशरण जी का बांयां हाथ निष्क्रिय होगया। इस प्रकार यहां शुरु की गई मारकाट का परिणाम यह हुआ कि उधर पाकिस्तान में हो रही मारकाट भी बन्द होगई। हालात बदल गये अथवा बदल दिये गये।

दुनियां में वही शख्स है ताजीम के काबिल।
जिस शख्स ने हालात का मुंह मोड़ दिया॥

१९४७ के देशविभाजन पर हुई मारकाट की अनेक घटनायें आंखों-देखी और सुनी आज भी याद हैं। मैं (वेदव्रत) तब १५ वर्ष का था। गुरुकुल झज्जर में पढता था।

इस भयंकर मारकाट से बचे हुए मुसलमान देहात से भाग-भागकर झज्जर शहर में आजाते थे। देहात के गांवों में उस समय कोई मुसलमान नहीं बचा था। मारा गया अथवा भागकर झज्जर शहर में आगया। झज्जर शहर में अत्यधिक लोगों के एकत्रित होने के कारण खाने-पीने की वस्तुओं का अभाव होगया। भूखे लोगों ने बेरी आदि पेड़ों के पत्ते और बक्कल भी उतारकर खालिये थे। झज्जर शहर के मुसलमानों पर हमला करने से पूर्व वहां के निवासी हिन्दुओं को सूचित करके शहर खाली करने का सन्देश देदिया था। लोग अपने घरों को ताले लगाकर अपनी रिश्तेदारियों में चले गये। पर्याप्त लोग गुरुकुल के चारों ओर तम्बू लगाकर भी ठहरे थे। पं० विश्वप्रिय शास्त्री भी अपने परिवारसहित गुरुकुल में आगये थे। एक दिन साइकल पर सवार होकर अपने झज्जरस्थित मकान को संभालने के लिए गये थे। झज्जर से पहले ही बेरी के बाग में उन्हें मुसलमानों ने घेर लिया। मुश्किल से प्राण बचाकर गुरुकुल में वापस आये थे। भूखे मरते मुसलमानों ने हिन्दुओं के घरों के ताले तोड़कर उनमें से अन्न आदि निकाल लिया था।

झज्जर पर हमला करने से पूर्व ही महात्मा गांधी के आदेशानुसार मुसलमानों की सुरक्षा के लिए C.R.P.F. आचुकी थी। फिर भी कुछ लोगों ने गोलियां चला दीं, जो C.R.P.F. के जवानों को भी लगीं। उनके जवाबी हमले में गोली लगने से घायल हुए कुछ ग्रामीण गुरुकुल में आये और उनका प्राथमिक उपचार किया गया। बाद में मिलिट्री की सुरक्षा में झज्जर के मुसलमानों को पाकिस्तान भेज दिया। जिन मुसलमानों ने हिन्दू बनने का वायदा किया वे यहीं रहे। पाकिस्तान नहीं गये। **जिनमें वर्तमान के स्वामी सत्यपति परिव्राजक भी एक हैं।**

उस समय गुरुकुल झज्जर ने छावनी का रूप धारण कर रखा था। देहात के नौजवानों के भोजन आदि की व्यवस्था गुरुकुल से ही की जाती थी। कम से कम नमक डालकर पकाये हुए चनों की बाकली सबको दी जाती थी। लोहे के बड़े कड़ाहों में चने पकाये जाते थे।

मारकाट प्रारम्भ होने पर गुरुकुल की कमेटी ने आचार्य भगवान्देव जी को परामर्श दिया कि ब्रह्मचारियों को इनके घर भिजवा दिया जावे। आचार्य जी ने इसे स्वीकार नहीं किया।

रात्रि में गुरुकुल के सभी ब्रह्मचारी उस समय के हाल कमरे की छत पर सोते थे। एक व्यक्ति बन्दूक लेकर पहरा देता था। हाल की छत पर सुरक्षा की दृष्टि से ईंट रोड़े भी एकत्रित करके रखे गये थे। गुरुकुल के सभी कर्मचारी और ब्रह्मचारियों को एक कोड-वर्ड बतला रखा था। रात्रि में गुरुकुल के अन्दर वा बाहर कोई व्यक्ति यदि किसी को घूमता चलता दिखाई देवे तो उससे पूछा जावे कि कौन है? तो वह उत्तर में **ओ३म्** कहे। यदि सामनेवाला टोकने पर **ओ३म्** कहकर उत्तर न देवे तो समझो वह बाहर का आदमी है।

उस समय गुरुकुल में अनेक प्रकार के हथियार थे। उनकी सुरक्षा यज्ञदेव और मैं (वेदव्रत) करते थे। शस्त्रों को सामान में छुपाकर अथवा भूमि में दबाकर भी सुरक्षा की थी।

पाकिस्तान के लोगों ने समझ लिया था कि हिंसा का जवाब प्रतिहिंसा है जो किसी भी अवस्था में सहायक नहीं, घातक है। दोनों ओर की द्वेष और घृणा ने हजारों लोगों की जानें लेलीं।

ऐसे विकट समय में आचार्य जी ने भय से त्रस्त लोगों को सहारा दिया। रजत-जयन्ती पर गुरुकुल के निमित्त लोगों द्वारा दान में आये ३० हजार रुपये इन्होंने उन्हीं की रक्षा के लिये खर्च कर दिये। इसी कारण आप इलाके को सुरक्षा के लिये विश्वस्त कर पाये और भविष्य को निष्कंटक बना पाये। इस समय आचार्य जी ने जो कार्य किया उससे इनका प्रभाव बहुत अधिक बढ़ गया। हरयाणाभर के प्रतिष्ठित लोग इनके लिये आदरपूर्वक अपने पलक पांवड़े बिछाने लगे। जगह-जगह से इनको गुरुकुल की सहायतार्थ संदेश मिलने लगे। जहां नहीं पहुंच सके वहां से उलाहना मिलता कि आपने दर्शन नहीं दिये।

अनेक व्यक्ति स्वयं गुरुकुल पहुंचकर दान देने लगे। एक समय वह था जब गुरुकुल के चन्दे के लिए आचार्य जी को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा था, लोगों में दान देने की प्रवृत्ति बहुत कम थी किन्तु अब आचार्य जी ने जो कार्य किया उसने उस कठिन समय को बदल दिया और गुरुकुल को लोग प्रसन्नतापूर्वक दान देने लगे। कई ऐसे भी व्यक्ति थे जिन्होंने दस-दस मन अनाज प्रतिवर्ष देना निश्चित कर दिया। श्री अमीलाल दहकोरावाला एक सज्जन ऐसा भी था जिसने अपने दोनों बैल, गाड़ी और घर का सब सामान गुरुकुल को दान कर दिया। अपना इकलौता लड़का भी आचार्य जी को सौंप दिया और स्वयं भी सेवा करने गुरुकुल में आगया। इस प्रकार जब आचार्य जी एवं गुरुकुल ने जान-माल

की रक्षा के लिए सबकुछ न्यौछावर कर दिया तो लोगों ने भी अपने प्राणपण से गुरुकुल को सींचना प्रारम्भ किया और गुरुकुल उन्नति-पथ पर अग्रसर होने लगा।

आचार्य जी के ओज तेज बल की घटना

आचार्य भगवान्देव के विषय में मा० शिवराम आर्य सतनाली का बास जिला महेन्द्रगढ ने अपनी "**शिवविचारतरंगिणी**" पुस्तक के पृष्ठ २२७ पर लिखा है—"पूज्यवर स्वामी ओमानन्द सरस्वती के गुणवर्णन करना कम से कम मेरे लिये तो सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। वैसे तो विना किसी के लिखे उनका जीवन तो चौपाड़ में रखे खुले बृहद् आर्षग्रन्थ के समान है, जिस को कोई भी सद्वृत्ति व्यक्ति पढकर प्रेरणा लेकर अपने जीवन को सफल सुखी बना सकता है। वे तो बहुगुणसम्पन्न महामानव हैं। वे स्वयं तो महामानव हैं ही, उन के सम्पर्क में जो आता है वह कम से कम मानव तो बन ही जाता है। वे ओज और तेज में सर्वाग्रणी रहे हैं। जिस प्रकार शेर नदी-प्रवाह (बहाव) के विरुद्ध (उल्टा) जल को चीरता हुआ नदी को पार कर जाता है। तत्सम्बन्धी स्वामी जी (उस समय आचार्य जी) के बल की एक घटना लिखता हूं—स्वतन्त्रता के पश्चात् कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन सन् १९४८ में डॉ० पट्टाभि सीतारमैया की अध्यक्षता में जयपुर में हुआ था। उस अधिवेशन में भारी भीड़ थी, मीलों तक लोगों का जमघट फैला हुआ था। मंच पर ज्यों ही बड़े नेता नेहरू, पटेल, आजाद आदि आए, लोगों में आगे से आगे बढ़ने की होड लग गई, पर उसी समय पुलिस और प्रबन्धकों ने जनसमूह को उलटा धकेलना आरम्भ कर दिया। आचार्य जी ने मुझ से कहा कि चाद्दर को कसकर पकड़े रहना, छोड़ मत देना। लाखों आदमियों की उल्टी भगदड़ मच गई। आचार्य जी जनसमूह (नदी) को अपने कंधों के बल से चीरते हुए आगे ही आगे बढ़ते गए और आगे की पंक्ति में लेजा बैठाया। मेरे साथ मेरे गांव का एक बड़ा व्यक्ति और था, वह मेरे पीछे लटका हुआ था। उसने कहा कि "**इतणा हांगा तो हाथी में भी नहीं होसकता, जितणा इस बाबा में सै।**" वास्तव में वह चमत्कार ही था— दैवीयशक्ति का वरदान कहा जासकता है।"

यह घटना मैंने स्वामी ओमानन्द जी को सुनाई तो वे बोले मुझे तो यह घटना याद ही नहीं रही। वास्तव में भारत की स्वतंत्रता की इतनी प्रसन्नता और जोश था। हम जयपुर अधिवेशन देखने के लिए रेवाड़ी से रेल से गये थे। रेल के सभी डिब्बे ठसाठस भरे थे और हजारों लोग रेल की छत पर बैठे थे। बांदीकुई जंक्शन पर जाकर रेल में और डिब्बे जोड़े गए थे।

चतुर्थ अध्याय

ब्रह्मचर्य-शिक्षण शिविर

आचार्य जी ने अपने यौवनकाल से ही ऊंचे साधक और तपस्वी का जीवन व्यतीत किया है। नियम और व्रतों का पालन जिस श्रद्धा और कड़ाई से ये करते थे वैसा हमने आज तक दूसरे किसी व्यक्ति को करते नहीं देखा। जिन लोगों ने आचार्य जी को निकट से देखा है वे इस बात की सत्यता से भलीभांति परिचित हैं। सन् १९५० से पूर्व आचार्य जी गुरुकुल झज्जर के पुराने कुएं के पास बनी हुई गुफा में कई घण्टे योगाभ्यास करते थे। इनका यह अभ्यास वर्षों तक चलता रहा। एक बार आपको सांप ने काट लिया था किन्तु नमक और मीठा न खाने से उसका विशेष प्रभाव नहीं हुआ। जिस तरह का त्यागी, तपस्वी और व्रती जीवन इनका था उसी तरह की दिनचर्या और जीवन की अपेक्षा ब्रह्मचारियों से भी रखते थे। वास्तव में ब्रह्मचर्यव्रत का पालन तलवार की धार पर चलने के समान तप है। यह तभी सफल होता है जब व्यक्ति प्रतिक्षण इसके लिये सावधान रहे।

चरित्र वह धन है जो व्यक्ति और राष्ट्र को आगे लेजाता है। ब्रह्मचर्य उसकी आधारभूमि है। इस कारण आचार्य जी ने गुरुकुल सम्भालने के कुछ दिन बाद ही जगह-जगह पर स्कूल व कालेजों में भी ब्रह्मचर्यशिक्षणशिविर लगाने प्रारम्भ कर दिये थे। सन् १९४७ की डांवांडोल स्थिति के कारण तथा स्वयं उधर लगे रहने के कारण इनके शिविरों के कार्य में व्यवधान आगया था किन्तु पुनः वह कार्य नये सिरे से आरम्भ किया। ब्रह्मचारी हरिशरण जी इन शिविरों के आयोजन में प्रमुख भूमिका निभाते थे। वे स्वयं व्यायाम, आसन और लाठी, भाला आदि प्रशिक्षणार्थियों को सिखलाते और आचार्य जी उनको उपदेश देते तथा ब्रह्मचर्य एवं चरित्र का महत्त्व बतलाते। शिविरार्थियों को नियमित समय पर प्रातः चार बजे उठाना, शौचादि से निवृत्त हो व्यायाम व संध्या यज्ञादि कराना सब बहुत नियमित होता था। आचार्य जी के तेजस्वी व्यक्तित्व और ओजस्वी वाणी का मोहक प्रभाव होता था। जो एक बार इन शिविरों में आगया वह सदा के लिये इनका अनुयायी बन गया। इन शिविरों में ब्रह्मचर्य की शिक्षा देकर नवयुवकों को चरित्रवान् बनाया और उनको नैतिक उन्नति के मार्ग पर लगाया। इस शिक्षा का प्रभाव केवल विद्यार्थियों पर ही नहीं अपितु अध्यापक, प्रधानाध्यापक और प्रिंसिपलों पर भी बहुत अधिक पड़ा। उस समय ऐसे अनेक स्कूल थे जो इसी प्रभाव के कारण गुरुकुलों की तरह

चलते थे। इमलौटा आदि स्कूलों में गुरुकुलों जैसे ही नियम बन गये थे। दिल्ली राजस्थान व हरयाणा में सैंकड़ों ऐसे अध्यापक आचार्य जी के विशेष सहायक बने और इन्होंने इनका सदा भरपूर साथ दिया। इन शिविरों के कारण पढ़े-लिखे लोगों की ऐसी शक्ति (फोर्स) खड़ी होगई जो हर कार्य में सदा आगे रहती थी। इनमें श्री सुखदेव शास्त्री आसन, मास्टर रघुवीरसिंह जी छारा, मा० लज्जेराम जी समसपुर, मा० हरिसिंह ठींठ मिलकपुर, मा० महासिंह किड़हौली, पं० शिवकरण जी डौहकी, मा० भूपसिंह भागी, मा० राजेराम जी खातीवास, मा० नानकचन्द जी डालावास, मा० कुन्दनसिंह जी रासीवास, मा० सरदारसिंह जी ठींठ मिलकपुर, प्रिंसिपल भगवान्सिंह जी फरमाणा, प्रिंसिपल होशियारसिंह जी बाजीतपुर (दिल्ली), मा० रोहताससिंह जी माजरा डबास (दिल्ली) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

इन शिविरों के कार्यक्रमों को स्थायित्व देने और इनमें आनेवाले प्रशिक्षणार्थियों के स्वाध्याय के लिये आचार्य जी ने ब्रह्मचर्य के साधन (११ भाग) पुस्तक लिखी। इनकी 'ब्रह्मचर्यामृत' नामक पुस्तक तो इतनी अधिक लोकप्रिय हुई कि उसके अनेक संस्करण छपवाने पड़े। लाखों नवयुवकों ने उसको पढ़ा और मार्गदर्शन पाया है। इन शिविरों का इतना अधिक प्रचार था कि सैंकड़ों नवयुवक इनमें भाग लेने के लिये उतावले रहते थे। इन शिविरों की शिक्षा ने अनेक ऐसे नवयुवकों के जीवन भी सुधारे हैं जो किशोरावस्था से ही कुटेवों में पड़कर अपने जीवन का सर्वनाश कर चुके थे, सर्वथा निराश और हताश थे। ऐसे युवकों के लिये ये शिविर जीवनदायिनी संजीवनी सिद्ध हुए। कालान्तर में आचार्य जी गुरुकुल और समाज के कार्यों में अधिक व्यस्त होगये और शिविर की परम्परा शिथिल पड़ गई। ब्रह्मचारी हरिशरण जी भी प्रचार के लिए उड़ीसा चले गये। वहां उन्होंने ईसाईमिशनरियों का मुकाबला किया और हजारों गरीब लोगों को धन के लालच में ईसाई बनने से बचाया। वहीं सिमडेगा जिला रांची (बिहार) में जादू के खेल दिखाते हुए गले में पड़े काले नाग (सांप) ने उनको काट लिया और वे ८ जुलाई १९६६ को हम से विदा होगये।

आचार्य जी पर अनेक कार्यों का भार आगया था, पुनरपि आज भी इस प्रकार के शिविरों की बहुत मांग है। सामाजिक कुरीतियों का समाप्त करने के लिये युवकों को तैयार करने का यह एक बहुत उत्तम माध्यम है। आचार्य जी ने इस प्रकार के छोटे-बड़े सैंकड़ों शिविरों का आयोजन किया था।

मद्यनिषेध विभाग के अवैतनिक अध्यक्ष

सन् १९४९-१९५० में तत्कालीन रोहतक (सोनीपत और झज्जर जिले भी) में आर्यसमाज ने पूर्ण शराबबन्दी आन्दोलन आचार्य भगवान्देव जी के नेतृत्त्व में प्रारम्भ किया था। इस कार्य के लिए तत्कालीन पूर्वी पंजाब सरकार ने आचार्य भगवान्देव जी को रोहतक जिले के मद्यनिषेध विभाग का अवैतनिक अध्यक्ष नियुक्त किया था। आर्यसमाज के उपदेशक एवं भजनोपदेशकों ने रोहतक जिले के देहात में घूम-घूम कर शराब पीने से होनेवाली हानियों से जनता को अवगत करवाकर मद्य-निषेध के लिए वातावरण तैयार किया। उसी काल में आचार्य भगवान्देव जी ने "**पापों की जड़ अर्थात् शराब**" पुस्तक लिखकर छपवाई थी। मूल्य था ढाई आना (१५ पैसे मात्र)। प्रचारार्थ यह पुस्तक नि:शुल्क भी वितरित कीगई थी। आचार्य जी एवं आर्यसमाज के प्रचार और पंजाब सरकार के सहयोग से रोहतक जिले में पूर्णमद्यनिपेध कानूनन लागू होगया था जो १६ वर्ष १९६६ तक लागू रहा।

एक नवम्बर १९६६ के दिन वर्तमान हरयाणाप्रान्त पंजाब से पृथक् राज्य बनाया गया था। इसके प्रथम मुख्यमंत्री पं० भगवतदयाल शर्मा ने यमुनानगर के शराबव्यापारी के कहने पर रोहतक जिले में लगे मद्यनिषेध को निरस्त करके पापों की जड़ शराब पीने की खुली छूट देते हुए "**काल बागड़ से निपजे, बुरा बाह्मण से होय**" वाली लोकोक्ति को चरितार्थ कर दिया। कालान्तर में पण्डित जी को अपने इस पापकर्म का पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने रोहतक के भिवानी स्टैंड पर सार्वजनिक सभा में जनता से माफी भी मांगी थी।

आर्यसमाज के नेता शराबबन्दी के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहे। आर्यसमाज के आन्दोलनों से प्रभावित होकर चौ० बंसीलाल जी ने अपनी 'हरयाणा विकास पार्टी' के घोषणापत्र में शराबबन्दी को स्थान देकर चुनाव लड़ा और विजयी होने पर उन्होंने जुलाई १९९६ से हरयाणा में पूर्ण शराबबन्दी लागू करदी किन्तु कुछ काल पश्चात् उन्हें यह प्रतिबन्ध हटाना पड़ा।

आर्य आयुर्वेदिक रसायनशाला

गुरुकुल के साथ-साथ एक छोटा आयुर्वेदिक औषधालय भी प्रारम्भ से ही चलता रहा है। संवत् १९८० वि०, सन् १९२४ ई० की रिपोर्ट के अन्त में तात्कालिक मुख्याधिष्ठाता श्री स्वामी परमानन्द संन्यासी ने लिखा है कि—

''ब्रह्मचारियों की संरक्षा के लिए गुरुकुल झज्जर में एक साधारण औषधालय भी स्थापित है, जिससे आसपास के ग्राम के लोग भी लाभ उठाते हैं। इस औषधालय की वृद्धि से आसपास के ग्रामीणों का बड़ा उपकार होसकता है। यदि धर्मात्मा सज्जन इस ओर ध्यान देकर इस औषधालय की धन से वा यन्त्र से वा औषधियों से सहायता करेंगे वे विशेष पुण्य के भागी बनेंगे।''

इसके पश्चात् श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी के युग में भी औषधालय चालू रहा और श्री आचार्य भगवान्देव जी की देख-रेख में भी यह धर्मार्थ औषधालय के रूप में ९ वर्ष तक चलता रहा। इस धर्मार्थ औषधालय के साथ-साथ गुरुकुल को स्वावलम्बी बनाने की दृष्टि से आयुर्वेदिक रसायनशाला का निर्माण किया गया और इसका उद्घाटन शिवरात्रि के शुभ अवसर पर १५ मार्च १९५० ई० को पंजाब के मुख्यमन्त्री श्री डॉ० गोपीचन्द भार्गव के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ।

इसके पश्चात् ७ अक्तूबर १९५१ ई० की बैठक में श्री आचार्य भगवान्देव जी ने फार्मेसी की उन्नति की योजना रक्खी। विचार-विमर्श के उपरान्त निश्चय हुआ कि फार्मेसी को विशाल रूप में परिणत किया जाये जिससे इसकी आय से भविष्य में आयुर्वेद महाविद्यालय का भी संचालन किया जा सके।

१० अगस्त १९५३ ई० को सब रजिस्ट्रार दिल्ली के कार्यालय में श्री अनन्तराम पलीडर के द्वारा फार्मेसी का नाम ''आर्य आयुर्वेदिक रसायनशाला गुरुकुल झज्जर'' रजिस्टर्ड हुआ। इसका रजिस्ट्रेशन नं० ५१२ है।

मार्च १९५० से मार्च २०११ के विगत ६१ वर्षों में इस रसायनशाला ने जहां जनता की चिकित्सा द्वारा सेवा की है वहां गुरुकुल झज्जर के संचालन में सबसे बड़ा आर्थिक सहयोग भी इससे मिल रहा है।

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय

गुरुकुल में सरकारी आयुर्वेदिक डिस्पेंसरी का उद्घाटन १४ फरवरी १९५७ ई० को श्री प्रो० शेरसिंह जी सिंचाई और विद्युत्मन्त्री (पंजाब) के करकमलों से हुआ। यह कार्य स्वास्थ्य और श्रममन्त्री श्री अमरनाथ जी विद्यालंकार के द्वारा सम्पन्न होना था किन्तु वे समय पर नहीं पहुंच सके।

इस चिकित्सालय में फरवरी १९५७ से ३० अप्रैल १९६१ तक सवा पांच वर्ष श्री वैद्य ज्योतिप्रकाश जी वैद्यवाचस्पति ने सेवा की। इनके साथ उपवैद्य श्री रामधारी शर्मा रहे। मई १९६१ से नवम्बर १९६१ तक सात मास तक श्री डॉ०

सोमवीर आयुर्वेदाचार्य इसके अध्यक्ष रहे और उनके पश्चात् १ दिसम्बर १९६१ ई० से श्री वैद्य ओमप्रकाश जी हारीत इस पद पर विराजमान रहे। श्री रामधारी के पश्चात् श्री हुकमचन्द मेहता उपवैद्य रहे और मई १९६१ से श्री छतरसिंह जी उपवैद्य नियुक्त हुए।

इस चिकित्सालय के लिए औषधी, वैद्य, उपवैद्य आदि का प्रबन्ध पंजाब सरकार का आयुर्वेदविभाग करता था और भवन गुरुकुल का था। इससे गुरुकुल के तथा विशेषतया निकटस्थ ग्रामों के रोगी स्वास्थ्य-लाभ करते रहे हैं।

आदर्श गोशाला एवं महर्षि दयानन्द गोशाला

गुरुकुल झज्जर विक्रमसंवत् १९८०-१९८२ (सन् १९२४-१९२६) के वार्षिक वृत्तान्त के अन्तिम पृष्ठ पर यह विज्ञापन छपा है—

श्रीकृष्ण गोशाला

गुरुकुल झज्जर के साथ ही स्थापित है, जिसका दूध बेचा नहीं जाता, बल्कि सारा का सारा दूध ब्रह्मचारियों को बिना मूल्य (मुफ्त) दिया जाता है। अतः जो गोरक्षाप्रेमी इस गोशाला को दान देंगे, वह जहां गोमाता की रक्षा करेंगे, वहां ब्रह्मचारियों को दूधदानरूप पुण्य के भागी भी बनेंगे। भगवान् श्रीकृष्ण के गोप्रेम को आप जानते हैं, फिर उनके अनुयायी होते हुए भलीभांति गोरक्षा क्यों नहीं करते? नाज से, भूसा से (चारे से) तथा धनादि से इस गोशाला की सहायता कर यश के भागी बनिये। —**प्रबन्धकर्ता, श्रीकृष्ण गोशाला, गुरुकुल झज्जर (रोहतक)**

जब आचार्य भगवान्देव जी ने सन् १९४२ में गुरुकुल झज्जर को सम्भाला तब यहां २-३ गायें थीं। एक गाय ऐसी थी जो सींगों से और पैरों से भी मारती थी, दूध देना तो दूर रहा। ऐसी अवस्था में आचार्य जी ने सैकड़ों गायों का प्रबन्ध करके गोशाला को विशालरूप प्रदान किया। स्वयं आचार्य जी १९३६ से गाय के घी दूध का ही सेवन करते आ रहे थे, जिसे यावज्जीवन (२००३ ई० तक) निभाया।

आज गुरुकुल की दोनों गोशालाओं में अनेक नसलों की ३५० गायें, बछड़े, बछड़ियां विद्यमान हैं।

संवत् १९८९ (सन् १९३२) में इस गोशाला के अध्यक्ष स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती थे। उस समय २४ गाय, बैल, बछड़े और बछड़ियां थीं। प्रतिदिन बीस सेर दूध होता था। उस समय सभी पशुओं और बैलगाड़ी आदि का मूल्य १०००) रु० आंका गया था।

सुधारक-पत्र का प्रकाशन

आचार्य जी का एवं गुरुकुल का प्रभावक्षेत्र विस्तृत होजाने पर एक ऐसे संचारमाध्यम की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी जो दूर दराज तक गुरुकुल की गतिविधियों को पहुंचाने और वैदिक-धर्म के प्रचार का सशक्त माध्यम बन सके। साथ ही जो युवकों को सन्मार्ग दिखा सके और उनको देशभक्ति की भावनाओं से ओतप्रोत कर सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आचार्य जी ने सितम्बर १९५३ ई० से 'सुधारक' मासिकपत्र का प्रकाशन गुरुकुल झज्जर से प्रारम्भ किया। प्रथम वर्ष में ही इस पत्र के हजारों ग्राहक बन गये। अनेक व्यक्ति आजीवन ग्राहक भी बने। धार्मिक, आध्यात्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना का यह पत्र अग्रदूत बन गया। विशेषकर हरयाणा में इसका अधिक प्रसार हुआ। यह पत्र आज भी चालू है। इसके बलिदानाङ्क, गोरक्षा-अंक, पंचायत विशेषांक, वेद विशेषांक और गुरुकुल परिचयाङ्क (जिसमें सभी गुरुकुलों का परिचय है) आदि अनेक खोजपूर्ण विशेषांक निकाले थे। बलिदान विशेषांक तो अपने आप में एक अनूठा खोजपूर्ण ग्रन्थ था। इसमें सभी ज्ञात अज्ञात क्रांतिकारी शहीदों से सम्बन्धित सामग्री प्रभूतमात्रा में संकलित कीगई थी। औषधविज्ञान से सम्बन्धित भी कई अंक विशेषरूप से निकाले थे जो बहुत ही उपयोगी थे और प्रशंसित हुये थे। इनमें आचार्य जी द्वारा देशी उपचार से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थ, ब्रह्मचर्यसम्बन्धी साहित्य, आर्योभजनोपदेशकों के ग्रन्थ तथा ऐतिहासिक पुरुषों की जीवनी आदि पुस्तकें जो पहले सुधारक के विशेषांक के रूप में निकली हैं, विशेष उल्लेखनीय हैं। इसका कालापानी विशेषांक भी बहुत महत्त्वपूर्ण था। इसमें वह खोजपूर्ण सामग्री प्रकाशित कीगई थी जो आचार्य जी तथा ब्र० योगानन्द ने अण्डेमान निकोबार में तीन सप्ताह रहकर एकत्र की थी। आचार्य जी की विदेश-यात्राओं पर आधारित कई विशेषांक निकल चुके जो ज्ञानवर्धन के लिये अत्यधिक उपयोगी हैं। इस प्रकार १९५३ से यह पत्र निरन्तर जनता की सेवा कर रहा है।

हरयाणा साहित्य संस्थान की स्थापना

आचार्य जी बहुविध प्रतिभा के धनी थे। इनका जीवन प्रारम्भ से ही कर्ममय रहा था। अकर्मण्यता को ये बहुत बड़ा अभिशाप मानते थे। किसी भी कार्य को उसकी चरम-सीमा तक पहुंचाने के लिये घनघोर परिश्रम करना इनका स्वभाव था। जब अच्छे साहित्य का अभाव अनुभव हुआ तभी गुरुकुल में

'हरयाणा साहित्य संस्थान' की स्थापना की। पुराने व दुर्लभ ग्रन्थ एकत्रित करने की प्रवृत्ति पहले से ही थी। धार्मिक एवं क्रांतिकारी साहित्य इनको सदा अभीष्ट रहा।

आर्य विद्यार्थी आश्रम नरेला में इन्होंने एक अच्छा पुस्तकालय बना लिया था। उसमें ऐसी अनेक पुस्तकें भी थीं जो अंग्रेज सरकार ने जब्त कर रखी थीं। ऐसी पुस्तकों को आचार्य जी खोजकर अवश्य खरीदते थे। ऐसी जब्त पुस्तकें ये भुस्से के एक बुंगे में रखते थे और समय-समय पर अपने सहयोगियों वा विद्यार्थियों को पढ़ने के लिए देते थे। सरकार जानती थी कि ये इस प्रकार की पुस्तकें रखते हैं और इनका प्रचार भी करते हैं। इस कारण कई बार छापा भी पड़ा परन्तु पकड़े नहीं जासके।

गुरुकुल का कार्य सम्भालने पर आचार्य जी ने वहां 'विश्वम्भर वैदिक पुस्तकालय' की स्थापना की और उसमें लगभग ३० हजार पुस्तकों का संग्रह कर दिया। इनमें दुष्प्राप्य वैदिक साहित्य तथा दुर्लभ ऐतिहासिक ग्रन्थ विशेषरूप से संगृहीत हैं। इसके साथ ही गुरुकुल की ओर से विभिन्न पुस्तकों का प्रकाशन भी चलता रहा किन्तु प्रकाशन के कार्य को व्यवस्थित रूप और तीव्रगति देने के लिये २८ फरवरी १९६० ई० में शिवरात्रि के अवसर पर यज्ञ के साथ 'हरयाणा साहित्य संस्थान' की विधिवत् स्थापना की। इस संस्थान के द्वारा हिन्दी-संस्कृत के सैकड़ों ग्रन्थों का प्रकाशन होचुका है। लगभग एक लाख रुपये लगाकर सम्पूर्ण पातंजल व्याकरणमहाभाष्य भी प्रदीप उद्द्योत टीका और विमर्श-टिप्पणी सहित इस संस्थान ने प्रकाशित किया है। आचार्य जी द्वारा स्वयं संगृहीत पुरातत्त्वीय सामग्री के आधार पर अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ''वीरभूमि हरयाणा, हरयाणा की संस्कृति, हरयाणा का संक्षिप्त इतिहास, हरयाणा के वीर यौधेय'', ''प्राचीन भारत के मुद्रांक'' तथा 'हरयाणा के प्राचीन लक्षणस्थान (टकसाल)' भी यहां से प्रकाश में आचुके हैं। इनके अतिरिक्त उल्लेखनीय ग्रन्थों में आचार्य जी द्वारा लिखित ६० से अधिक पुस्तकें तथा काशिकावृत्ति, अष्टाध्यायी, षड्दर्शनों का आर्यमुनिभाष्य, कुलियात आर्यमुसाफिर, निरुक्त, भारतैतिह्यम्, छन्दःशास्त्र, काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, व्याकरणकारिकाप्रकाश, लिंगानुशासनवृत्तिः, ब्रह्मचर्यशतकम्, ब्रह्मचर्यमहत्त्वम्, दयानन्ददिग्विजय (दो भाग), दयानन्दलहरी आदि अनेक ग्रन्थ हैं। पं० दादा बस्तीराम ग्रन्थावली भी सम्पूर्ण छापी है। प्रकाशन के क्षेत्र में भी आचार्य जी ने वह बेजोड़ कार्य किया है जिसको सामान्य व्यक्ति करने का साहस नहीं कर सकता।

संस्कृतभाषा के ग्रन्थ प्रकाशित करना तो आर्थिक दृष्टि से लाभकारी भी नहीं है तो भी स्वामी जी का संस्कृत अनुराग इस कार्य को करने में पीछे नहीं रहा। राष्ट्रहित और विद्यार्थियों की सुविधा के लिये आर्थिकहित का बलिदान करना इनका स्वभाव था। कदाचित् इसी कारण अर्थ इनके पीछे दौड़ता था। अर्थ के कारण इनका कोई कार्य रुका नहीं। इससे तो ऐसा लगता है कि जो धन के पीछे नहीं भागता, धन उसके पीछे भागता है और जो अर्थलोलुप होकर धन के पीछे भागता है, धन उसके आगे-आगे और अधिक तीव्रगति से भागता है और हाथ नहीं आता। यह सब प्रकृति का विचित्र खेल है। इस खेल में भी प्रभु इनके सहायक रहे और सम्भवत: इनको पहले ही समझाकर इस संसार में भेजा था जिससे ये माया के मोह में नहीं पड़े। इन्होंने माया को साधन ही माना, साध्य कभी नहीं स्वीकार किया, यही रहस्य है इनके कार्य का। इसी कारण जिधर भी इन्होंने हाथ बढ़ाया कार्य होता चला गया किन्तु कार्य का श्रेय स्वयं अपने ऊपर कभी नहीं लिया। परमपिता परमात्मा को ही उसका वास्तविक कर्त्ता स्वीकार किया, स्वयं को उसका निमित्तमात्र माना। मानसिक धरातल की इस ऊंचाई के पीछे भी इनकी लम्बी तपस्या, स्वभावगत अप्रतिम-त्यागभावना और सबसे बढ़कर अटूट ईश्वरभक्ति तथा श्रद्धा ही मुख्य कारण था।

कन्यागुरुकुल नरेला की स्थापना

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने बालकों की शिक्षा की तरह ही कन्याओं की शिक्षा पर भी बहुत बल दिया है। इनके अमरग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में इसका अनेकस्थलों पर उल्लेख है। इसी कारण आर्यसमाज ने स्त्री-शिक्षा के लिये सर्वप्रथम पहल की। 'स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्' जैसे वाक्यों ने स्त्रियों की शिक्षा के द्वार सदियों से बन्द कर रखे थे। भारतीयसमाज की जड़ता और जाति पर आधारित ब्राह्मणों के प्रति हिन्दुओं की अन्धश्रद्धा ने स्त्रीजाति के इस बन्धन को और अधिक कठोर बना दिया। महर्षि दयानन्द और राजा राममोहनराय पहले व्यक्ति थे जिन्होंने इस अभिशाप के विरुद्ध आवाज उठाई और स्त्री-शिक्षा का प्रबल समर्थन किया। आर्यसमाज द्वारा स्थान-स्थान पर कन्यापाठशालायें खोली गईं। समाज के प्रबुद्ध लोगों ने अपनी कन्याओं को इन पाठशालाओं में भेजना प्रारम्भ किया किन्तु कट्टरपन्थी लोग बराबर इसका विरोध करते रहे। यह स्थिति बहुत दिन तक चलती रही। स्वतंत्रता के अनेक वर्ष बाद तक बहुत कम कन्यायें स्कूल जाती थीं।

जिस समय स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने देहरादून में कन्याओं के लिये गुरुकुल खोला तो पौराणिकजगत् में इसका भारी विरोध हुआ था परन्तु उन्होंने इसकी परवाह नहीं की और गुरुकुल बहुत अच्छा चला। उससे प्रेरणा लेकर आर्यसमाज ने इस दिशा में और अधिक तीव्रगति से कार्य किया।

आचार्य जी ने भी कन्या गुरुकुल खोलने का संकल्प किया हुआ था किन्तु जब तक गुरुकुल झज्जर को अच्छी अवस्था में न ले आये अब तक इन्होंने इस विचार को स्थगित रखा। १९५४ तक गुरुकुल झज्जर की स्थिति बहुत अच्छी होगई थी। आचार्य जी के प्रभाव से पूरा हरयाणा गुरुकुल की सहायता करने लगा था। प्रबन्ध और अध्यापन कार्य भी गुरुकुल के विद्वान् स्नातकों ने सम्भाल लिया था। तब आचार्य जी को अपना संकल्प पूरा करने का ठीक अवसर जान पड़ा। ये योजना बना ही रहे थे कि एक दिन दिल्ली के किसी आर्यसमाज के उत्सव पर इनकी स्वामी व्रतानन्द जी महाराज से भेंट हुई। स्वामी जी ने अपने भाषण में कहा कि—चित्तौड़ की पावनभूमि पर बालकों का गुरुकुल खोलकर मैंने जीवन का आधा कार्य तो कर लिया किन्तु जब तक मैं एक गुरुकुल कन्याओं के लिये नहीं खोलूंगा मेरी आत्मा को शान्ति नहीं मिलेगी। इसके लिये उन्होंने आर्यजनता से सहयोग का भी आह्वान किया।

उत्सवसमाप्ति पर आचार्य जी ने स्वामी जी को अपनी योजना बताई और विचार-विमर्श किया। फलतः नरेला में कन्या गुरुकुल खोलने का निश्चय हुआ। आचार्य जी ने स्वामी जी को कहा कि मैं अपनी २१५ बीघा भूमि गुरुकुल को दान कर दूंगा। स्वामी व्रतानन्द जी की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। वे बोले—"आचार्यप्रवर! तुम्हारे जैसे राष्ट्रपूतों की ही तो देश को आवश्यकता है। तुमने मेरे जीवन की साध पूरी करदी है। भगवान् तुम्हें दीर्घायुष्य प्रदान करे।" यह घटना १९५२ की है। तब से आगे लगभग दो वर्ष तक इस योजना पर अधिक कार्य नहीं हो सका। अधिक दिन होते देख आचार्य जी ने अपने निकटसहयोगियों से परामर्श कर कन्या गुरुकुल की स्थापना की घोषणा करदी। सन् १९५४ में हजारों लोग निश्चितभूमि पर एकत्रित होगये। यह भूमि नरेला गांव से दो किलोमीटर उत्तर में स्थित है। बड़ी धूमधाम से वैदिकरीति से गुरुकुल की स्थापना हुई। आधारशिला आर्यजगत् के प्रख्यातसाधक स्वामी आत्मानन्द जी महाराज के करकमलों से रखी गई। इस अवसर पर स्वामी व्रतानन्द जी भी उपस्थित थे। उन्हीं की प्रेरणा पर आचार्य जी ने यह कन्यागुरुकुलरूपी महायज्ञ प्रारम्भ किया था। पूज्य आचार्य जी

महाराज ने स्वामी व्रतानन्द जी को कन्या गुरुकुल का आजीवन कुलाधिपति घोषित कर दिया। स्वामी व्रतानन्द जी की आंखों में आंसू छलक आये। उन्होंने कहा—

''कितना महान् है यह आचार्य भगवान्देव, जो सब कुछ स्वयं करके सब श्रेय मुझे देरहा है।'' उन्होंने आचार्य जी के इस रूप को पहली बार देखा था। उपस्थित जनता पर उनके ये शब्द अमिट छाप छोड़ गये। ''मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि दुनियां में ऐसे उदारचेता महामानव भी विद्यमान हैं। धन्य हैं आप लोग जो आपको आचार्य जी के रूप में एक देवता मिला है। मेरे पास यदि पांच व्यक्ति भी ऐसे हों तो मैं दुनियां को बदलडालूं, वेदों का नाद भूमण्डल में गुंजादूं। तप, त्याग और आत्मोत्सर्ग की इस प्रतिमूर्ति पर मैं अपना सबकुछ भी न्यौछावर करदूं तब भी थोड़ा है।''

स्वामी जी महाराज के ये शब्द वास्तव में हृदय से निकले थे। २१५ बीघा ऐसी भूमि, जो अनाज के रूप में सोना उगलती हो, दान कर देना बहुत बड़ी बात थी और वह भी आज के अर्थयुग में। आचार्य जी का भी भरापूरा परिवार था। सब तरह की सम्पन्नता थी। दुनियां के दूसरे लोगों की तरह सिर पर हाथ रखकर आगे बढ़ाने के लिये दरिया-दिल, धनाढ्य मां-बाप थे। इस अवसर पर आचार्य जी के भावों को पं० रामप्रसाद बिस्मिल के शब्दों में प्रकट करना अधिक अच्छा होगा—

उरियानी न हैरानी न थे पांव में छाले,
हम भी थे कभी आह बड़े नाजों से पाले।
हमने तो हमेशा तेरी खुशनुदी ही चाही,
खुद बिगड़े मगर काम तेरे सारे सम्भाले॥

कन्यागुरुकुल की स्थापना तो होगई परन्तु इसका भलीभांति संचालन करना बहुतकठिन कार्य था, किन्तु आचार्य जी की अतुल कर्मशक्ति पर लोगों को पूरा विश्वास था। स्थापना के कुछ दिन उपरान्त ही कन्याओं का प्रवेश प्रारम्भ होगया। माता ब्रह्मशक्ति और शान्तिदेवी ने गुरुकुल सम्भालने का संकल्प लिया। सबसे पहले जो दो कन्यायें प्रविष्ट हुईं वे थीं रोहतक जिले की विभाकुमारी सुपुत्री चौ० सूबेसिंह गढी बोहर तथा वेदज्योति सुपुत्री भगत दरियावसिंह हुमायूंपुर। स्नातिका बनने के उपरान्त विभाकुमारी ने बहुत दिनों तक गुरुकुल में अध्यापन कार्य भी किया। उस समय गुरुकुल सर्वथा जंगल में था। रात्रि में हिंसक पशुओं

का भी भय बना रहता था। आचार्या ब्रह्मशक्ति आदि को कई बार कन्याओं की सुरक्षा के लिए रातभर जागना पड़ता था। यद्यपि आस-पास के खेतवाले सभी कृषकों की गुरुकुल के प्रति अत्यधिक सहानुभूति थी और उनका सहयोग भी मिलता था। इस कारण चोरी आदि वा किसी के प्रवेश की सर्वथा आशंका नहीं थी परन्तु हिंसक जानवरों का भय निरन्तर बना रहता था। कमरे भी तब दो-तीन ही थे और चारदीवारी भी नहीं बनी थी। ऐसी स्थिति में उक्त दोनों बहनों ने जो तपस्या और कार्य किया वह इस गुरुकुल के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा। उनका काम नींव के पत्थर के समान है जिस पर पूरा भवन खड़ा होता है किन्तु वह दिखालाई नहीं देता।

गुरुकुल जिस भूमि पर बनना था वह बहुत ऊंची-नीची थी। सन् १९५२ से सन् १९५६ तक बंजर पड़ी रहने के कारण बहुत से झाड़-झंखाड़ होगये थे। भूमि को समतल करने के लिये हजारों रुपये व्यय करने पड़ सकते थे और बहुत व्यय के उपरान्त भी वह अपने इस रूप में नहीं आसकती थी जिस रूप में आज है। इसके लिये चौ० हीरासिंह जी मुखमेलपुरवालों ने जो कार्य किया वह कभी नहीं भुलाया जासकेगा। चौधरी साहब पुराने आर्यसमाजी और आचार्य जी के सहयोगी थे। स्वामी स्वरूपानन्द जी के साथ मिलकर इन्होंने और आचार्य जी ने कन्धे से कन्धा मिलाकर कांग्रेस के माध्यम से जो अद्भुत कार्य किया था उसका उल्लेख पहले किया जाचुका है। चौधरी साहब इन दिनों दिल्ली डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन थे। उन दिनों दिल्ली में नगर निगम वा दिल्ली महानगरपरिषद् आदि कोई अन्य प्रशासनिक इकाई नहीं थी। बोर्ड का चेयरमैन ही सर्वेसर्वा होता था। चौधरी जी ने गुरुकुलभूमि को ठीक करने के लिये कई बुलडोजर भेज दिये। इन बुलडोजरों ने दिन-रात काम कर इस भूमि को समतल किया। उन्होंने अपने इंजिनीयर भेजकर भूमि का ठीक नाप भी करवाया। इंजीनियर मेहरा ने बड़े परिश्रमपूर्वक काम किया और मकान बनाने की योजना भी उन्होंने तैयार करदी। गुरुकुल के कार्य में वैद्य कर्मवीर जी ने भी बढ़-चढ़कर भाग लिया। वे घर की चिन्ता छोड़ दिन-रात गुरुकुल की देख-रेख में जुटे रहे। वैद्य जी की धर्मपत्नी श्रीमती सत्यवती का भी कन्या गुरुकुल के लिए सेवा और सहयोग सराहनीय रहा। सन् १९५८ में महिपालपुरवासी सूबेदार धीरजसिंह जी भी गुरुकुल में आगये। उन्होंने जीवनपर्यन्त सर्वथा निःस्वार्थभाव से गुरुकुल के कार्य को संभाला। गुरुकुल की अन्दर की व्यवस्था का पूरा कार्यभार और उत्तरदायित्व उन्हीं पर रहा।

आज कन्या गुरुकुल नरेला भारत की एक जानी-मानी संस्था है। लगभग सभी प्रदेशों की कन्यायें यहां शिक्षा पारही हैं। इस समय २५० से अधिक कन्यायें हैं। यहां भी गुरुकुल झज्जर की ही भांति आर्षपाठविधि से शिक्षा दी जाती है। इसका सुरम्य प्राकृतिक वातावरण और उत्तमव्यवस्था अभिभावकों का मन मोह लेती है। गुरुकुल के सुरम्य वातावरण में भव्य यज्ञशाला, विशाल भवन, गोशाला, संग्रहालय तथा रसायनशाला आदि विविधप्रवृत्तियां हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि गुरुकुल की विस्तृत चारदीवारी के अन्दर ही सब सुविधायें हैं। कन्याओं को बाहर जाने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। गुरुकुल में प्रवेश के पश्चात् स्नातिका होने तक कन्याओं को घर जाने के लिये अवकाश नहीं दिया जाता। इस प्रकार यह गुरुकुल आचार्य जी की आशाओं का प्रतिबिम्ब है। गुरुकुल में अध्यापनकार्य के लिये समस-समय पर गुरुकुल की अनेक विदुषी स्नातिकाओं के अतिरिक्त बहिन चन्द्रकला और डॉ० सुशीला आर्या तथा पं० देवेन्द्रनाथ शास्त्री, श्री धर्मव्रत शास्त्री, श्री राजवीर शास्त्री, आचार्य मेधाव्रत कविरत्न, पं० जगन्नाथ शास्त्री आदि ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। गुरुकुल की आचार्या स्व० बहिन सुमित्रा जी एम०ए० ने अनेक वर्षों तक इस महान् कार्यभार को सम्भाला था।

आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना

आचार्य भगवान्देव जी अनुभव और आयुर्वेद ग्रन्थों के स्वाध्याय के कारण अच्छे चिकित्सक भी थे। जनता की सेवा के लिए उपदेशक अथवा प्रचारक को आयुर्वेद का ज्ञान हो तो उसे शीघ्र सफलता और प्रतिष्ठा मिलती है। इसलिए आचार्य जी ने गुरुकुल झज्जर में आयुर्वेद महाविद्यालय स्थापित करने के विचार से भवननिर्माणकार्य प्रारम्भ करवा दिया। भवन तैयार होजाने पर भाद्रपद बदी अष्टमी (श्रीकृष्ण जन्माष्टमी) संवत् २०१३ वि० २९ अगस्त १९५६ ई० बुधवार के दिन भारत के उपशिक्षामन्त्री श्री डॉ० कालूलाल श्रीमाली ने गुरुकुल झज्जर में आयुर्वेद महाविद्यालय का उद्घाटन किया था।

इस महाविद्यालय के अध्यक्ष पद पर पं० सत्यदेव वासिष्ठ आयुर्वेदाचार्य भिषक्केसरी (भिवानी) को नियुक्त किया था। ५ सितम्बर १९५६ से विधिवत् अध्ययन-सत्र प्रारम्भ होगया था। प्रथमवर्ष में ७ विद्यार्थी प्रविष्ट हुए थे। इस आयुर्वेद महाविद्यालय में शुद्ध आयुर्वेद का ४ वर्ष का पाठ्यक्रम चालू किया गया था। पंजाब सरकार से पाठविधि और उपाधि की मान्यता के लिए पत्रव्यवहार चलता रहा। १३ अप्रैल १९५८ की बैठक में प्रस्ताव नं० ४ के द्वारा इस आयुर्वेद

महाविद्यालय को ''बोर्ड आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी सिस्टम्स् ऑफ मेडिसिन पंजाब (अमृतसर)'' द्वारा दो वर्ष के लिए मान्यता देदीगई थी।

इसी काल में १९५७ में पंजाब में हिन्दीरक्षा सत्याग्रह प्रारम्भ होगया। आचार्य भगवान्देव जी उसके प्रमुख संचालकों में थे अतः पंजाब सरकार से मिलने वाली २० हजार रुपयों की सहायता रुक गई, पुनरपि आयुर्वेद महाविद्यालय में पठन-पाठन चलता रहा।

द्वितीयवर्ष में तीन नये विद्यार्थी प्रविष्ट हुए थे। सरकार के सहयोग के कारण तृतीय और चतुर्थ वर्ष में नये छात्रों का प्रवेश नहीं किया गया। मई १९६० में ७ आयुर्वेदाचार्य और ३ आयुर्वेदशास्त्री छात्रों ने परीक्षा दी थी और उनका परीक्षा परिणाम १७ जून को घोषित किया गया था। तत्पश्चात् विशेष बाधाओं के कारण आयुर्वेद महाविद्यालय संचालन बन्द कर दिया।

उत्तीर्ण १० छात्रों का प्रथमश्रेणी में रजिस्ट्रेशन करने की स्वीकृति डॉ० तुलसीदास डायरेक्टर रिसर्च एण्ड मेडिकल एजूकेशन पंजाब ने २४ जुलाई १९६० को देदी।

हमारे दो आयुर्वेदस्नातक सोमवीर चमराड़ा और चन्द्रपाल रेवाड़ीखेड़ा को सर्विस सलेक्शन बोर्ड पंजाब से सरकारी सेवा के लिए सलेक्ट कर लिया था किन्तु आयुर्वेद के डायरेक्टर कान्तिनारायण शर्मा ने उन्हें आयुर्वेद डिस्पेंसरी में नियुक्ति नहीं दी। उसकी गुरुकुल और आर्यसमाज के प्रति सद्भावना नहीं थी। सोमवीर चमराड़ा कोर्ट में केस करके विजयी हुआ और उसे सरकारी डिस्पेंसरी में नियुक्ति मिली तथा सलेक्शन की तारीख से पीछे का पूरा वेतन भी मिला।

पंजाब का हिन्दीरक्षा आन्दोलन

आचार्य जी का जीवन यौवनकाल से ही संघर्षपूर्ण रहा है। वैसे तो आज के युग में गुरुकुलों का संचालन और वह भी आर्षपाठविधि से, अपने आप में समय और प्रतिकूल परिस्थितियों के साथ एक बड़ा संघर्ष है किन्तु इस रचनात्मककार्य और आर्यसमाज के प्रचार-कार्य के अतिरिक्त भी समय-समय पर इनके सम्मुख बड़ी-बड़ी चुनौतियां वा संघर्ष आये हैं और प्रत्येक संघर्ष में आचार्य जी और अधिक तेजोमय होकर निकले हैं। इनका जीवन संघर्षमय है, यह कहना सम्भवतः उतना सार्थक नहीं होगा जितना कि यह कहना कि संघर्ष ही इनका जीवन है। पंजाब का हिन्दी-रक्षा आन्दोलन भी इस जीवन की वह लम्बी दुर्धर्ष घटना है जिसने आचार्यप्रवर को जन-जन का नेता बना दिया।

आर्यसमाज अपने प्रारम्भिककाल से ही एक प्रमुख राष्ट्रवादी संस्था रहा है। इसी कारण इसने अपने कार्यक्रम में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार और प्रसार को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। स्वयं इसके संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपनी मातृभाषा गुजराती को छोड़ अपने सब ग्रन्थ हिन्दी और संस्कृत में ही लिखे। पंजाब में आर्यसमाज का प्रचार सर्वाधिक हुआ। इसलिए वहां हिन्दी के प्रति अनुराग स्वाभाविक था। अंग्रेजी शासनकाल में लगभग सारा कामकाज उर्दू में होता था परन्तु आर्यसमाजी व्यक्ति वा संस्थायें सब काम हिन्दीभाषा में करती थीं। पंजाब विश्वविद्यालय में भी बहुत पहले से ही हिन्दी की रत्न, भूषण तथा प्रभाकर परीक्षायें होती थीं। इनमें प्रतिवर्ष हजारों छात्र बैठते थे। यह आर्यसमाज के प्रभाव का ही परिणाम था। स्वतंत्रता-प्राप्ति तथा पंजाबविभाजन के उपरान्त उर्दू का स्थान हिन्दीभाषा को मिलना चाहिये था परन्तु सिख-नेता पंजाबी को राज्य की राजकीयभाषा बनाना चाहते थे और उसके लिये ही कार्य कर रहे थे। इससे पंजाब के सिक्खेतर हिन्दू और हरयाणा की जनता बहुत रुष्ट थी। हरयाणा, जो उस समय पूर्वी पंजाब का ही एक भाग था, यह विशुद्ध हिन्दी-भाषी क्षेत्र था। इस तरह स्वतन्त्रता के तत्काल उपरान्त पंजाब में भाषासम्बन्धी विवाद उठ खड़ा हुआ।

इस भाषाविवाद को सुलझाने के लिये एक फार्मूला बनाया गया, जो 'सच्चर फार्मूला' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस समय श्री भीमसेन सच्चर पंजाब के मुख्यमंत्री और गोपीचन्द भार्गव शिक्षामंत्री थे। इस फार्मूले के अनुसार हिन्दी पढ़नेवाले प्रत्येक बालक को पांचवीं कक्षा से पंजाबी पढ़ने और पंजाबी के छात्र को पांचवीं से हिन्दी पढ़ने की व्यवस्था कीगई थी परन्तु इस पर आचरण नहीं हो सका और विवाद चलता रहा। फिर पंजाब के तीन रीजनों (प्रादेशिक इकाइयों) की आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुये एक 'रीजनल फार्मूला' बनाया गया। पंजाब के तीन रीजन थे—१. जालन्धर डिवीजन २. अम्बाला डिवीजन और ३. पेप्सू- इसमें जीन्द, नाभा, पटियाला तथा फरीदकोट आदि पुरानी रियासतों के क्षेत्र सम्मिलित थे।

रीजनल फार्मूले के अनुसार जालन्धर डिवीजन में पंजाबीभाषा प्रथमश्रेणी से ही अनिवार्य करदी गई। वहां के स्कूलों में यदि किसी श्रेणी में १० अथवा स्कूल में कुल ४० छात्र हिन्दी पढ़नेवाले हों तो उनको हिन्दी पढ़ने की छूट दीगई परन्तु पांचवीं से प्रत्येक छात्र के लिये पंजाबी अनिवार्य करदी गई। अम्बाला डिवीजन के लिये भी पांचवीं से पंजाबी अनिवार्य और पेप्सू में केवल पंजाबी ही

शिक्षा का माध्यम बनादी गई। सरकारी नौकरी के लिये मैट्रिक में पंजाबी अनिवार्य करदी और राजभाषा भी पंजाबी बनादी गई।

इस प्रकार 'रीजनल फार्मूला' हिन्दी-भाषियों के लिए एक बड़ी चुनौती बनकर आया। हरयाणावाले भाग पर भी पंजाबी की अनिवार्यता लादना सरासर अन्याय था। जनता ने अनेक प्रकार से रोष प्रकट किया परन्तु सिक्खों के राजनीतिक दबाव के आगे जनता की कौन सुननेवाला था। उधर मास्टर तारासिंह सिक्खराज्य का राग अलाप रहे थे और निरन्तर धमकियां देरहे थे। केन्द्रीय सरकार भी उनको सन्तुष्ट रखने की नीति पर चल रही थी। राष्ट्रीय-जन जो कांग्रेसी थे, सरकार पर दबाव डाल रहे थे कि पंजाबी को राजभाषा मान लिया जाये तो मास्टर तारासिंह के विरोध का मुकाबिला किया जासकता है। इस चुनौती का मुकाबिला करने के लिए जून १९५६ में जालन्धर के साईंदास कॉलेज में पंजाब के आर्यनेताओं की एक विशेष बैठक हुई। उसमें स्वामी आत्मानन्द जी प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, महात्मा आनन्द स्वामी जी, आचार्य भगवान्देव जी, श्री जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती मंत्री आ०प्र०नि० सभा पंजाब, आचार्य रामदेव (स्वामी सत्यमुनि) जी, श्री यश सम्पादक 'मिलाप' दैनिक, श्री वीरेन्द्र सम्पादक 'प्रताप' दैनिक, लाला जगतनारायण सम्पादक 'हिन्दकेसरी' दैनिक, प्रिंसिपल सूरजभान, प्रिंसिपल भगवान्दास, कैप्टन केशवचन्द्र तथा नारायणदास ग्रोवर आदि नेता उपस्थित थे। अन्तिम बैठक चण्डीगढ़ में हुई। इसमें भी सभी प्रमुख आर्यनेता तथा संन्यासी उपस्थित थे।

इस बैठक में गम्भीरता से विचार हुआ। अब तक पंजाब में सरकार की भाषा-नीति के विरुद्ध लाखों लोगों के हस्ताक्षर होचुके थे। जनता में उग्ररोष व्याप्त था। बैठक में पंजाबवाले केवल पंजाबी की जबरदस्ती के खिलाफ प्रस्ताव पास करने के पक्ष में थे। श्री यश इस समय पंजाब के मुख्यमन्त्री सरदार प्रतापसिंह कैरों मन्त्रिमण्डल में थे। अतः कुछ नेता हिन्दीरक्षा आन्दोलन चलाने के लिए सहमत नहीं थे किन्तु जनता प्रबल आन्दोलन चाहती थी। आन्दोलन से असहमत नेताओं का समर्थन जब एक प्रसिद्ध संन्यासी महात्मा आनन्दस्वामी भी करने लगे तो आचार्य जी को गुस्सा आगया और वे कहने लगे— ''हम तो समझते थे कि हम आर्यसंन्यासियों के बीच बैठे हैं जो स्वभाव से वीर होते हैं परन्तु यहां तो लगता है किसी दुकानदार ने कपड़े रंग लिये हैं। चलो हम हरयाणावालों को पंजाबी कौन-सी पढ़नी है।'' आचार्य जी यह कहकर क्रोधित हो उठने लगे तो अन्य नेताओं ने

उनको मनाकर बैठा लिया। परिणामस्वरूप अब सब एकमत होकर इस पक्ष के होगये कि सत्याग्रह प्रारम्भ किया जाये और उसके लिये एक संचालन समिति गठित करदीजाये। एक प्रतिनिधिमण्डल सरकार से मिले और सरकार को पूरी स्थिति से अवगत करादे। यदि सरकार न माने तो आन्दोलन प्रारम्भ करदियाजाये। इस निश्चयानुसार एक 'हिन्दी-रक्षा समिति' का गठन हुआ जिसके निम्नलिखित मुख्यपदाधिकारी चुने गये—

प्रधान— **स्वामी आत्मानन्द जी महाराज**
उप-प्रधान— **प्रिंसिपल सूरजभान**
मंत्री— **श्री जगदेवसिंह सिद्धान्ती**

इसके उपरान्त आर्यनेताओं का एक शिष्ट-मण्डल मुख्यमंत्री सरदार प्रतापसिंह कैरों से मिला। इस समय प्रोफेसर शेरसिंह पंजाब के उप-मुख्यमंत्री थे। सरदार कैरों को मुख्यमंत्री बनवाने में इनका प्रमुख हाथ था। वार्ता में प्रोफेसर साहब भी थे। कैरों ने प्रोफेसर शेरसिंह की ओर अभिमुख होकर कहा कि मैं हरयाणा पर से तो पंजाबी की अनिवार्यता अवश्य समाप्त कर दूंगा। यह बात सितम्बर १९५६ की है। इस आश्वासन के कारण आन्दोलन कुछ समय के लिए टल गया परन्तु जनवरी १९५७ में कैरों अपने वायदे से मुकर गया। कैरों ने प्रोफेसर शेरसिंह से कहा कि आप हरयाणावालों पर दबाव डालें कि वे आन्दोलन में भाग न लें। प्रोफेसर शेरसिंह ने कहा आप अपने वचन से हट रहे हैं अत: मैं तो अब इस अवस्था में इन लोगों का साथ दूंगा। आगे चलकर इसी कारण प्रोफेसर शेरसिंह ने मन्त्रिमण्डल से त्याग-पत्र दे दिया और वे सत्याग्रह करके जेल चले गये। कई मास जेल में रहे।

मुख्यमंत्री प्रतापसिंह कैरों द्वारा अपना वायदा भंग किये जाने पर उत्पन्न स्थिति का सामना करने और पूर्वनिश्चयों का पुनरवलोकन करने तथा भावी योजना को मूर्तरूप देने के लिये समिति के प्रधान स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने चण्डीगढ़ में समिति की बैठक बुलाई। इस बैठक में सभी आर्यनेताओं ने मिलकर आन्दोलन की रूपरेखा को अन्तिमरूप दिया और चण्डीगढ़ में ही तुरन्त सत्याग्रह करने का निश्चय हुआ। तदनुसार ३ जून १९५७ को स्वामी आत्मानन्द जी महाराज अन्य आर्यनेताओं के साथ सद्भावना यात्रा पर चण्डीगढ़ पहुंचे। सरदार प्रतापसिंह कैरों ने उनके पैर छुये परन्तु स्वामी जी की सात मांगों में से उन्होंने किसी को न तो माना और न ही अस्वीकार किया। टाल-मटोल कर स्वामी

जी को सरकारी गाड़ी से यमुनानगर वापस भिजवा दिया। ७ जून सन् १९५७ ई० तक स्वामी जी ने तीन सद्भावनायात्रायें कीं किन्तु परिणाम कुछ न निकलता देख १० जून १९५७ को आन्दोलन प्रारम्भ करने की घोषणा करदी। सबसे पहले स्वामी आत्मानन्द जी ने ही सत्याग्रह किया। उनके जत्थे में महात्मा आनन्दभिक्षु जी आदि भी थे। धड़ाधड़ सत्याग्रही जत्थे पहुंचने लगे। सत्याग्रह जोर पकड़ने लगा। सरकार घबराने लगी और सत्याग्रहियों को हतोत्साहित करने के लिये तंग करने और दूर बीहड़ जंगलों में छोड़ने लगी। इधर सत्याग्रह को व्यापक बनाने के लिये आन्दोलन की बागडोर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को सौंपदीगई। सभा में 'भाषास्वातन्त्र्यसमिति' का गठन हुआ जिसके प्रधान श्री घनश्यामसिंह गुप्त तथा मंत्री श्री रघुवीरसिंह शास्त्री चुने गये।

हरयाणा में आन्दोलन की बागडोर श्री आचार्य भगवान्देव जी को सौंपी गई। पश्चिमी उत्तरप्रदेश और राजस्थान का उत्तरदायित्व भी इन्हीं पर छोड़ा गया। आचार्य जी ने प्रत्येक जिले का कार्यभार अलग-अलग व्यक्तियों को सौंप दिया। करनाल जिले में स्वामी रामेश्वरानन्द जी, हिसार में स्वामी ईशानन्द जी, रोहतक में स्वामी नित्यानन्द जी, महेन्द्रगढ़ में स्वामी अमरानन्द जी और गुड़गांव जिले में स्वामी सन्तोषानन्द जी को नियुक्त कर दिया और हरयाणा की सर्वोच्च कमान स्वयं सम्भाली। आचार्य जी ने जगह-जगह जलसे करके आन्दोलन को जन-जन तक पहुंचा दिया। पहलवान श्री वैद्य बलवन्तसिंह जी बलियाणा के साथ मोटर-साइकल पर सवार होकर दिन-रात भाग-दौड़ करके आचार्य जी ने हरयाणा में आन्दोलन की वह अग्नि प्रज्वलित की जिससे पंजाब सरकार कांप उठी। कोने-कोने से सत्याग्रही जत्थे चण्डीगढ़ की ओर चल पड़े। शुरु में ये सब जत्थे पैदल चलकर गांव-गांव होते हुये निकले। प्रत्येक गांव में सत्याग्रहियों का भव्य स्वागत हुआ। आचार्य जी आगे जाकर पहले से ही जत्थों की सब व्यवस्था कर देते थे। परिणामस्वरूप हरयणा के गांव-गांव में सत्याग्रह के लिये भारी उत्साह उमड़ पड़ा। जब सत्याग्रही बहुत अधिक बढ़ गये तो रोहतक में भी सत्याग्रहकेन्द्र खोलना पड़ा। २८ जुलाई सन् १९५७ के दिन अनाजमण्डी रोहतक में एक विराट सभा हुई। इसी सभा के बाद स्वामी रामेश्वरानन्द जी को गिरफ्तार कर लिया गया। जनता में भारी उत्साह और रोष की लहर दौड़गई।

स्वामी आत्मानन्द जी आदि से परामर्श कर श्री आचार्य जी ने रोहतक में सत्याग्रह का मोर्चा खोलने के लिये ३० जुलाई की घोषणा करदी और हरयाणा की

जनता से उस दिन भारी संख्या में रोहतक पहुंचने का आह्वान किया। फलस्वरूप यह दिन रोहतक के इतिहास में एक ऐतिहासिक दिन सिद्ध हुआ। उस दिन जिलाधीश की कोठी पर सत्याग्रह किया गया। उसमें ५० हजार आदमी रोहतक में सत्याग्रह के लिये पहुंचे। लाखों दर्शक अपने घारों से बाहर आकर इस अभूतपूर्व दृश्य को देखने लगे। रोहतक की प्रत्येक सड़क और गली आदमियों से भरपूर थी। छतों और छज्जों पर भी आदमी लदे थे। भीड़ को पुलिस नियंत्रण में न कर सकी और वह भीड़ पुलिस की नाकेबन्दी को तोड़कर पुलिसलाइन में घुस गई। पुलिस ने लाठीचार्ज कर दिया। इससे ७ सत्याग्रही घायल होगये। लोगों में रोष व्याप्त होगया, परन्तु नेताओं ने भीड़ को अहिंसक बनाये रखा। जिस उत्साह के साथ सत्याग्रही नारे लगाकर आकाश को गुंजा रहे थे वह देखने योग्य था। सरकार के लिए बड़ी ही शर्म और दुविधा की स्थिति थी। प्रत्येक आदमी उस दिन अपने आपको गिरफ्तार कराना चाहाता था किन्तु पुलिस एक को भी गिरफ्तार नहीं करना चाहती थी।

उस दिन गिरफ्तार न किये जाने पर घर लौटकर वापस आये लोगों को पश्चात्ताप हुआ। इस के बाद हरयाणा में और अधिक दमनचक्र प्रारम्भ हुआ। अनेक नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया और वारण्ट जारी किये गये। ऐसे में सत्याग्रह को चलाना बड़ा कठिन कार्य था परन्तु आचार्य जी की रणनीति ने सरकार के सब हथकण्डे विफल कर दिये। उनको ऊपर से यह निर्देश मिला कि वे गिरफ्तार होने से बचें और भूमिगत रहकर सत्याग्रह का संचालन करें। किसी भी सत्याग्रह के सफल संचालन के लिये ऐसे व्यक्तियों का बाहर रहना अत्यावश्यक होता है जिनकी जड़ें जमीन में हों और जिनके इशारे पर लोग आत्मोत्सर्ग के लिये तैयार रहें। ऐसे समय में जवकि सत्याग्रह अपने यौवन पर था, प्रत्येक व्यक्ति जेल जाकर जीवित शहीद बनने का प्रयास करता था, वह इस लोभ का संवरण नहीं कर पाता। क्योंकि जेल जाकर आराम से रहा जासकता था। बाहर रहकर लोहे के चने चबाने पड़ते थे और आन्दोलन की सफलता के लिये दिन-रात एक करना पड़ता था। पूज्य स्वामी आत्मानन्द जी आदि सभी जानते थे कि आचार्य जी का बाहर रहना आवश्यक है। इसीलिये उन्होंने आचार्य जी के पास बाहर रहने के लिये बार-बार अपना आदेश भिजवाया।

श्री आचार्य जी ने प्रत्येक गांव में अपने कुछ विशेष व्यक्तियों को गिरफ्तारी न देने का आदेश दिया। प्रायः इन सभी व्यक्तियों के वारंट भी होगये। इनमें

प्रहलादसिंह आर्य (भदानीवाले) भी थे। एक बार गांव में खाना खाते-खाते उनको पुलिस ने आ घेरा। वह बड़ी कठिनाई से बच पाये थे। बाद में आचार्य जी का आदेश पाकर वे स्वयं भी भदानी गांव से एक जत्था लेकर जेल गये। जब इतने साधारण कार्यकर्त्ताओं के पीछे पुलिस इस तरह हाथ धोकर पड़ी रहती थी तो अनुमान लगाइये आचार्य जी जैसे तूफानीनेताओं को पकड़ने के लिये शासन ने कितनी शक्ति लगाई होगी।

कन्यागुरुकुल नरेला की कुड़की

आचार्य जी पर अनेक झूठे केस पंजाब सरकार ने बनाये। रोहतक के डिप्टी-कमिश्नर की कोठी पर डाका डालने और उसकी लड़की की चप्पलें चुराने जैसे असत्य, घिनौने और शर्मनाक केस उन पर बना दिये गये, जिससे गिरफ्तार होने पर इनको आसानी से मुकदमों में उलझाया जासके। इसके अतिरिक्त इनकी गिरफ्तारी के लिए कई इनाम घोषित किये गये। कन्यागुरुकुल नरेला की भूमि को कुड़क करने के आदेश देदिये गये। २० अगस्त १९५७ को नरेलास्थित इनके पैतृकभवन को भी जब्त करने का नोटिस दरवाजे पर चिपकाकर भवन को सील (मोहरबन्द) कर दिया। पंजाब, दिल्ली, राजस्थान और उत्तरप्रदेश की पुलिस को आचार्य जी की गिरफ्तारी के लिये सतर्क कर दिया गया।

आन्दोलन के प्राण

श्री आचार्य भगवान्देव जी ही ऐसे नेता थे जिनसे सरकार सबसे अधिक भयभीत थी। क्योंकि गुप्तचर पुलिस की रिपोर्ट से उसको पता चल गया था कि इस आन्दोलन का प्राण कौन है और वह किस प्रकार से आन्दोलन को चला रहा है परन्तु आचार्य जी सावधानी से भूमिगत रहकर दिन-रात कार्य में जुटे थे। वे गुरुकुल तथा सम्पत्ति कुड़क किये जाने की बात सुनकर तनिक भी विचलित नहीं हुये। ३० जुलाई १९५७ को जिस दिन उन्होंने रोहतक में मोर्चे का शुभारम्भ किया उसी दिन दयानन्दमठ में अपने सहयोगी महाशय भरतसिंह आदि के साथ बैठकर आगे के दो मास के सत्याग्रहीजत्थों की व्यवस्था उन्होंने पहले ही करदी थी। इसके अतिरिक्त भी कई-कई नये जत्थे वे प्रतिदिन भेज रहे थे। सत्याग्रही जत्थों के रूप में आचार्य जी के कार्य को देखकर केवल पंजाब पुलिस ही नहीं अपितु सम्पूर्ण पंजाब सरकार दंग थी कि यह व्यक्ति कहां से और कैसे यह सब कर रहा है ? सरकार के सामने यह एक बहुत बड़ा प्रश्नचिह्न था जो अन्त तक बना रहा।

उन दिनों हरयाणा में आबालवृद्धों में आचार्य जी का नाम चर्चा का विषय था। प्रतिदिन उनके बच निकलने, धूआंधार कार्य करने की कहानियां सुनी जाती थीं। गांव के बच्चों में भी आचार्य जी की चर्चा होती थी। कभी सुनते आचार्य जी आज अमुकवेश बदलकर पुलिस को चकमा देकर निकलगये तो कभी दूसरा वेश बदलने की बात सुनते। एक दिन सुना कि वे एक गांव में घिर गये तो उनको हरयाणवी स्त्रियों का घाघरा, कुर्त्ता और ओढना (पीलिया) पहनकर पुलिस के घेरे से निकलना पड़ा।

जब उनसे इस सम्बन्ध में पूछा तो पता चला कि यह तो सत्य है कि अनेक बार पुलिस से बाल-बाल बचे परन्तु बहुत अधिक वेश बदलने की बातें तो अफवाहें थीं। उन दिनों इतना तो अवश्य करना पड़ा कि कटिवस्त्र और ऊपर धारण की जानेवाली चद्दर (उत्तरीय) को छोड़कर वे धोती कुर्त्ता पहनने लगे थे। कई बार टोपी भी लगा लेते थे। कभी नंगे सिर तो कभी साफा भी पहन लेते थे। क्योंकि पुलिस के पास आचार्य जी का जो फोटो था वह दाढ़ीवाला था, अत: उन दिनों दाढी भी कटवादी थी। अधिकतर साईकल का प्रयोग करते थे। क्योंकि अन्य किसी वाहन में बैठने से पकड़े जाने का भय होता था। कई बार तो एक ही दिन में ५० मील तक साईकल चलानी पड़ती थी। कई दिन लगातार जागना तो वहुधा हुआ। अनेक बार भूखे रहकर भी भागते रहते थे परन्तु एक पक्का नियम था—प्रो० शेरसिंह, चौ० देवीलाल आदि को प्रतिदिन के ठिकानों की सूचना करा देते थे और ये दोनों तथा अन्य विशेषव्यक्ति हर दूसरे तीसरे दिन आचार्य जी से मिलकर निर्देश लेते और आगे की योजना बना लेते थे परन्तु यह सब कार्य इतना गुप्त होता था कि किसी अन्य को उसकी भनक नहीं मिल पाती थी।

एक दिन पुलिस को पता चल गया कि आचार्य जी रोहणा में हैं। पुलिस ने रोहणा गांव की नाके-बन्दी करली और जहां बैठकर आचार्य जी आस-पास के गांवों के लिये योजना बना रहे थे उस घर में भी जापहुंची। आचार्य जी को भी पता चल गया। पुलिस के थानेदार का कदम जब घर के बाहरवाले दरवाजे की देहली पर था तो आचार्य जी बराबर के दरवाजे से निकल रहे थे। वे महाशय दरियावसिंह रोहणा के साथ बड़ी कठिनाई से उस दिन बच पाये। पुलिस ने उस मकान का घेरा डाल लिया और चप्पा-चप्पा खेज डाला परन्तु आचार्य जी तो निकल चुके थे। वहां से वे कई स्थानों पर होते हुये गांव मुखमेलपुर (दिल्ली) पहुंचे। वहां चौ० हीरासिंह जी के यहां रहे। तीन-चार दिन रहकर दिल्ली देहात से

जत्थे भेजने की व्यवस्था की। जहां भी वे रुकते वहां शौच स्नानादि के लिये भी सूर्यास्त होने के उपरान्त अन्धेरा होने पर ही निकलते थे। बहुत अधिक सावधानी बरतनी पड़ती थी।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से आचार्य भगवान्देव जी को २० साइकलें मिली थीं। वे इन्होंने अपने विशेषकार्यकर्त्ताओं को सौंपदी जो आचार्य जी के आदेशानुसार कार्य कर सत्याग्रह की तैयारी करते थे। उन से और उन जैसे अन्य लोगों के माध्यम से आचार्य जी पूरे आन्दोलन को चला रहे थे। पहले तीन-चार महीने तो स्वयं आचार्य जी भी दौड़ते रहते थे किन्तु ज्यों-ज्यों इनकी गिरफ्तारी के लिये अधिकाधिक सरगर्मियां बढ़ती गईं, इनको अपनी गतिविधियां सीमित कर कार्य की शैली बदलनी पड़ी और उपर्युक्त कार्यकर्त्ता ही कार्य का मुख्य माध्यम बन गये। मुखमेलपुर से आचार्य जी यमुना पारकर उत्तरप्रदेश में चले गये और वहां भी सत्याग्रह की धूम मचादी। पहले से ही वहां पर आचार्य जी का पर्याप्त सम्पर्क बना हुआ था अत: कार्य में आसानी हुई। यहां भैरा गांव के पास यमुना पर एक कुटिया में कुछ समय रहे। वहां रात्रि में एक दिन श्री जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती आचार्य जी से मिलने गये। विस्तार से बातें हुईं और दोनों नेताओं ने भावी योजना की रूपरेखा तैयार की।

भैरा से आचार्य जी अग्रवालमण्डी (मेरठ जिला) पहुंचे। यहां ये महाशय प्यारेलाल आर्य सुपुत्र लाला मौजीराम के यहां रहे। वहां से अनेक जत्थे भिजवाये। जहां से भी अधिक जत्थे सत्याग्रह के लिए आने लगते थे, सरकार तुरन्त समझ जाती थी कि आचार्य भगवान्देव उसके आसपास यहीं होना चाहिए इसलिए वहां पुलिस की सरगर्मी और खुफिया गतिविधियां बढ़ जाती थीं। यह देख आचार्य जी भी स्थान बदल देते और पुलिस के हाथ नहीं आते थे। ये सरकार के लिए बहुत बड़ा सिरदर्द बन गये थे।

अग्रवालमण्डी से ये आदर्श नंगला पहुंचे। वहां चौ० मनीराम आर्य मुखिया और सुखवीर शास्त्री के यहां ठहरे। वहां से सूप गांव में गये। एलम में चौ० रघुवीरसिंह जी के यहां तथा रसूलपुर जट्ट में चौ० आशाराम जी के यहां ठहरते हुये सौरों में चौ० कबूलसिंह मंत्री सर्वखाप पंचायत के पास रुके। वहां से गोहरनी गांव में महाशय कदमसिंह जी के यहां ठहरते हुये गुरुकुल बणत भी गये। आचार्य जी जहां भी दो-तीन दिन ठहरते वह स्थान सत्याग्रहछावनी का रूप लेलेता और वहीं से जत्थे चण्डीगढ़ और रोहतक को चलपड़ते।

आचार्य जी रसूलपुर जट्ट (मुजफ्फरनगर) में चौ० आशाराम जी के पास पर्याप्त समय तक ठहरे थे। उन्होंने आचार्य जी को उड़द की दाल और घी श्रद्धावश पौष्टिक समझकर खिलाया। वह आचार्य जी के अनुकूल नहीं रहा। दिन-रात भाग-दौड़ में निद्रा और विश्राम की कमी तथा प्रतिकूल भोजन के कारण आचार्य जी अस्वस्थ होगये। ज्वर के साथ खांसी ने दमकसी का रूप धारण कर लिया। उस समय श्री वेदपाल शास्त्री (शाहपुर) ने आचार्य जी की यथासम्भव पूरी सुरक्षा और सेवा की। आचार्य जी की बीमारी की सूचना पाकर मैं (वेदव्रत) गुरुकुल झज्जर से रसूलपुर जट्ट पहुंचा। विचारविमर्श के पश्चात् स्वास्थ्य के लिये शुष्कजलवायुवाले स्थान की आवश्यकता अनुभव कीगई और मैं आचार्य जी को अपनी जन्मभूमि घासीकाबास, चिड़ावा (राजस्थान) लेगया।

मुजफ्फरनगर से मेरठ, दिल्ली, रेवाड़ी, लोहारू होकर चिड़ावा जाने का सीधा और छोटा मार्ग था किन्तु पंजाब सरकार के गिरफ्तारी वारण्टों के कारण मुजफ्फरनगर से हाथरस, भरतपुर, जयपुर, सीकर, झुंझनु होकर लम्बे रेल-मार्ग द्वारा नारी खेतड़ी स्टेशन पहुंचे। वहां से श्री बृजलाल जी आर्य के पास उनके गांव घासीकाबास (पो० नूनियां गोठड़ा, जि० झुंझनु) चले गये और वहां लगभग एक मास ठहरे। उस समय मैं गुरुकुल झज्जर का सहायक मुख्याधिष्ठाता एवं आचार्य था। गुरुकुल के संचालन का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व मुझ पर ही था। आचार्य जी की गिरफ्तारी के लिये गुरुकुल झज्जर में भी पुलिस चक्कर लगाती रहती थी। गुरुकुल के मुख्यद्वार पर गिरफ्तारी का नोटिस भी चिपकाया गया था। ऐसे समय में आचार्य भगवान्देव जी के कारण गुरुकुल झज्जर की सम्पत्ति को सरकार की कुड़की आदि से बचाने के लिये आचार्य जी ने विद्यार्यसभा गुरुकुल झज्जर के प्रधान श्री कप्तान रामकला को अपना त्याग-पत्र देदिया था और सभा ने मुझे (वेदव्रत) गुरुकुल का आचार्य एवं मुख्याधिष्ठाता नियुक्त कर दिया था।

नूनियां गोठड़ा में एक विचित्र घटना घटी। श्री बाबू रघुवीरसिंह जी (बहु अकबरपुर) तथा श्री चौ० ओम्प्रकाश जी (बलियाणा) आचार्य जी से मिलने नूनियां गोठडा पहुंचे। ये मोटर-साइकल से गये थे किन्तु मार्ग रेतीला होने के कारण इन्होंने उसको बाजरे की पूलियों के एक छ्योर में डाल दिया और पैदल ही गोठड़ा पहुंचे। वहां गजाधर जी आदि ने जब इनसे पूछा कि आप कहां से आये हैं तो इन्होंने कह दिया कि हम झज्जर से आये हैं। इनमें से एक ने अपने परिचय में मेरा नाम लिया। इससे उनको संदेह होगया कि ये दोनों पंजाब गुप्तचर विभाग के हैं

और आचार्य जी को गिरफ्तार कराने आये हैं। संदेह होना इसलिये स्वाभाविक क्योंकि मुझे गजाधर आदि जानते थे। गजाधर ने इनको नीम के पेड़ की छाया खाट पर बैठा दिया और अपने साथियों से विचारविमर्श में लग गया। दोनों ओर एक-दूसरे पर सन्देह होगया।

बाबू रघुवीरसिंह जी सरकारी सर्विस में थे। उन्होंने समझा कि यह राजस्था की कोई पुलिसचौकी है और यहां फंस गये तो कल ड्यूटी पर जाना कठिन ह जावेगा अत: वे वहां से चल पड़े। उनको जाता देखकर गजाधर ने उन्हें पक लिया। जब बाबू जी छुड़ाकर भागने लगे तो उनकी जंघा पर चाकू का वार कि गया। बाबू रघुवीरसिंह जी वहां से छुड़ाकर पैदल ही भागते दौड़ते १० किलोमीट दूर पिलानी पहुंचे। वहां से प्रात:काल पहली बस द्वारा रोहतक पहुंचकर अप कार्यालय में जाकर हाजरी लगाई और मेरे पास गुरुकुल झज्जर सूचना भिजवाई मैं उस दिन गोशाला के लिये चारासंग्रहार्थ मातनहेल गया था। ब्र० हरिशरण जी ने वहां जाकर सूचना दी और मैं आचार्य जी के पास राजस्थान गया।

मिस्त्री ओम्प्रकाश जी ने अपना नाम गांव आदि बतलाया और अपन ड्राइवरी लाइसेंस भी दिखाया तब वास्तविकता का ज्ञान हुआ। वहां से एक किलोमीटर दूर घासीकाबास में श्री बृजलाल जी के कुएं पर आचार्य जी के पास उनको लेजाकर मिलाया गया और परस्पर संदेह के कारण घटी घटना पर पश्चात्ताप किया। इससे कम से कम इस बात का अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है कि आचार्य जी जहां भी इन दिनों ठहरते थे वहां बड़ी सतर्कता बरती जाती थी और साधारण आदमी उनसे नहीं मिल सकता था।

हिन्दी आन्दोलन के काल में पंजाबभर में केवल आचार्य जी ही एक ऐसे नेता थे जो गिरफ्तार नहीं कियेजासके। आपको गिरफ्तार करने के लिये पंजाब सरकार ने सभी उचित अनुचित साधनों का प्रयोग किया। पकड़वानेवाले के लिए ५० हजार रुपये पारितोषिक देने की घोषणा से लेकर गोली मार देने तक की धमकियां भी दी गईं। किन्तु सब निष्फल रहीं। जिस प्रकार विदेश जाकर प्रसिद्ध क्रान्तिकारी सुभाषचन्द्र बोस ने देश की आजादी के लिए 'आजाद हिन्द फौज' का संगठन किया उसी प्रकार परम तपस्वी ब्रह्मचारी आचार्य भगवान्देव जी ने भी पंजाब से बाहर जाकर सत्याग्रहियों की सेना तैयार की और वहीं से इस सत्याग्रह का सफल संचालन किया। भूखे प्यासे रहकर निरन्तर साइकल द्वारा सफर तथा अत्यधिक श्रम और चिन्ता से आचार्य जी का स्वास्थ्य भी बिगड़ गया परन्तु

''**कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्**'' सदा से आपका जीवनमंत्र रहा है अतः कदम पीछे नहीं हटाया। जिस कार्य में आप लग जाते थे उसमें पूरी शक्ति झोंक देना आपका स्वभाव था। उसके पूरा होने तक दम लेना आपकी आदत में नहीं था। गांधी जी के ''**करो या मरो**'' सिद्धान्त की आप साक्षात्-मूर्ति थे।

इस हिन्दी आन्दोलन के समय श्री आचार्य जी के चित्र से युक्त इनकी एक अपील पूरे हरयाणा में बांटी गई थी। उसका एक वाक्य तो आज भी हरयाणा में गुंजायमान है—''**हरयाणा के वीर की गर्दन टूट तो सकती है पर झुक नहीं सकती।**'' पंजाब सरकार द्वारा हरयाणा के लोगों और सत्याग्रहियों पर किये गये अत्याचारों के समय इस वाक्य ने संजीवनी का काम किया और अत्याचारों के साथ टकराने का साहस पैदा किया।

पंजाब सरकार ने इस सत्याग्रह को असफल बनाने के लिये प्रत्येक प्रकार के हथकंडे अपनाये। प्रारम्भ में सत्याग्रहियों को पकड़-पकड़कर दूर जंगलों और भयानक स्थानों में छोड़ दिया किन्तु सत्याग्रही दुबारा चण्डीगढ़ पहुंचकर सत्याग्रह करने लगे। तब पुलिस ने सत्याग्रहियों को बुरी तरह मारना पीटना और तपती हुई सड़कों पर घसीटना शुरू कर दिया। नोकदार कीलोंवाले बूटों की ठोकर मारना और सत्याग्रहियों को उनसे कुचलना, बाल पकड़कर घसीटना, बलात् मोटरों में ठूंसकर घण्टों तक धूप में तपाना, पानी-पानी चिल्लाते हुये सत्याग्रहियों को एक घूंट पानी भी न देना, ओ३म्ध्वज को फाड़ देना और चण्डीगढ़ में यज्ञवेदी पर जूतों सहित चढ़कर धार्मिक भावनाओं के साथ खिलवाड़ करना आदि जघन्यकर्म पंजाबपुलिस ने किये। बहु अकबरपुर कांड और फिरोजपुर जेल हत्याकांड ने तो इन अत्याचारों को चरम सीमा तक पहुंचा दिया। इन्हीं अत्याचारों के जवाब में आचार्य जी की उपर्युक्त अपील निकली थी, जिससे पंजाब सरकार बौखला उठी थी।

फिरोजपुर कारागार में हुए वीर शहीद सुमेरसिंह (नयाबासवासी) के बलिदान ने तो पूरे आन्दोलन में मानो प्राण फूंक दिये थे। उनका बलिदान साहस, त्याग और आत्मोत्सर्ग का प्रतीक बन गया था। आचार्य जी आदि ने इस शहीद की शहादत का जो सम्मान किया उसने तो प्रत्येक व्यक्ति में बलिदानी भावनायें भरदीं। सत्याग्रह की समाप्ति पर रोहतक में जो जलूस निकला उसमें इस शहीद के माता-पिता को हाथी पर बैठाकर शहीद का हजारों कण्ठों ने जो जय-जयकार किया वह हरयाणे के इतिहास का एक स्वर्णिम पृष्ठ बन गया।

हिन्दी-रक्षा आन्दोलन देश का एक महत्त्वपूर्ण जन-आन्दोलन था। पंजाब के उप-मुख्यमंत्री प्रो० शेरसिंह ने इस आन्दोलन में भाग लेने के लिये अपना पद ठुकराया, हजारों सत्याग्रही जेल गये, जिनमें से प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप में १८ शहीद हुये। अनेक लोगों को चोटें आईं। स्वयं आचार्य जी का स्वास्थ्य भी उस समय ऐसा बिगड़ा कि फिर सुधर ही नहीं पाया परन्तु इस आन्दोलन के कारण हरयाणावासियों में नवजीवन का संचार हुआ और आगे चलकर यह आन्दोलन पृथक् हरयाणा के निर्माण में केवल सहायक ही नहीं हुआ अपितु आधार भी बना। इस रूप में यह सत्याग्रह हरयाणा के लिये बहुत बड़ी उपलब्धि सिद्ध हुआ। इस आन्दोलन को चलाने के लिये आर्यजनता ने दान भी बहुत दिया। आन्दोलन की समाप्ति पर साढे तीन लाख रुपयों में सार्वदेशिक सभा के लिए आसफ अली रोड पर नई दिल्ली में भवन खरीदा था। वह भी इसी आन्दोलन की देन है।

गिरफ्तारी

सब हथकंडों का प्रयोग करके भी सत्याग्रहकाल में जब पंजाब पुलिस श्री आचार्य जी को गिरफ्तार नहीं कर पाई तो आन्दोलन की समाप्ति पर किसी बहाने से गिरफ्तार करने की योजना बनाई। अन्ततोगत्वा १० फरवरी १९५८ को जालन्धर गोली-कांड के सम्बन्ध में रोहतक की एक सार्वजनिक सभा में आपत्तिजनक भाषण देने के आरोप में आपको २१ फरवरी १९५८ को गिरफ्तार कर लिया। तीन-चार दिन जमानत नहीं ली। आचार्य जी की गिरफ्तारी से हरयाणाभर में रोष फैलता देख २४ फरवरी को बीस हजार की जमानत पर आपको छोड़ा गया। इस दिन जब आपको हथकड़ी लगाकर लाया गया तो अदालत के पास लगभग दस हजार लोग खड़े आचार्य जी के जयकार और कैरोंशाही नहीं चलेगी के नारों से आकाश गुंजा रहे थे। यहां भी पंजाब सरकार ने मुंह की खाई और अपनी झेंप मिटाने के लिये ५ मार्च १९५८ को जुआं ग्राम में आपत्तिजनक भाषण देने का मिथ्या अभियोग लगाकर १२ मार्च को पूर्ववर्ती जमानत कैंसिल करवाकर पुलिस ने आपको पुनः बन्दी बना लिया। ५ मार्च को तीस हजार की जमानत पर पुनः आपको मुक्त कर दिया। ये दोनों अभियोग आप पर लगातार आठ मास चलते रहे और आप इससे हरयाणा की जनता में और अधिक लोकप्रिय होते गये। अन्त में सरकार को झुकना पड़ा। ये दोनों केस वापस लेलिये और आचार्य जी को ससम्मान छोड़ दिया।

सत्याग्रह के लिये किये गये अनवरत कठोर श्रम और भाग-दौड़ से आचार्य जी का स्वास्थ्य बिल्कुल बिगड़ गया। साथ ही गुरुकुल के कार्यभार का उत्तरदायित्व भी वहन करना पड़ता था। गुरुकुल में रहकर ही आपने अपना उपचार प्रारम्भ किया। आचार्य जी स्वयं अच्छे वैद्य थे। साथ ही वैद्य बलवन्तसिंह भी इनका उपचार करते रहे। उससे लाभ भी हुआ किन्तु पूरी तरह स्वस्थ नहीं हो पाये। ऐलोपैथिक औषधियों से आपको आरम्भ से ही घृणा रही है, अतः अनेक श्रद्धालु डाक्टरों के कहने पर भी आपने हस्पताल में प्रवेश लेने से निषेध कर दिया। जब बाहर इस अवस्था का पता चला तो दिल्ली से लाला हंसराज गुप्त (भूतपूर्व महापौर दिल्ली) तथा श्री रामनाथ भल्ला कोषाध्यक्ष आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुकुल झज्जर आये और आचार्य जी से दिल्ली चलकर नर्सिंग होम में रहकर उपचार कराने का आग्रह करने लगे। आचार्य जी ने अंग्रेजी इलाज कराने से निषेध किया तो इन दोनों सज्जनों ने वचन दिया कि हम आपका इलाज आयुर्वेदिकपद्धति से ही करायेंगे किन्तु सुविधा के लिये नर्सिंग होम में रहना ही अधिक अच्छा रहेगा। बहुत अधिक आग्रह करने पर आचार्य जी तैयार होगये और आपको **दीवानचन्द नर्सिंग होम दिल्ली** में रखा गया। गुरुकुल से सेवा के लिये श्री ओम्प्रकाश (कोटवाले) इनके साथ गये। वहां रहते हुये इन्होंने तथा श्री भल्ला जी आदि ने आचार्य जी की बहुत सेवा की। उपचार किया श्री पं० रामगोपाल शास्त्री करौलबागवालों ने। वे आयुर्वेद के पण्डित और सुलझे हुए सफल वैद्य थे। अपने उपचार से उन्होंने इनको बहुत शीघ्र ही ठीक कर दिया। लगभग एकमास उपरान्त आचार्य जी गुरुकुल में वापस लौट आये। उसके कुछ समय पश्चात् हरयाणानिवासियों पर भयंकर बाढ़ के रूप में एक दैवी विपत्ति आगई।

रोहतक में बाढ़

सन् १९६० ई० में आई बाढ़ में रोहतक शहर तथा इसके आसपास के क्षेत्र बुरी तरह जलमग्न होगये। आठ नम्बर नाले के कारण सब ओर विनाशलीला उपस्थित होगई। सड़कों पर नावें चलने लगीं। अनेक गांव पूरी तरह डूब गये। लोगों को निकलने के लिये रास्ते न मिले। कुछ समय पूर्व हिन्दी आन्दोलन में यहां के लोगों ने कैरों सरकार के नाक में दम कर दिया था, अतः उसकी ओर से लोगों को निकालने वा राहत पहुंचाने की संतोषजनक कार्यवाही नहीं हुई। उधर रेवाड़ी के निकट के कुछ इलाके भी साहबी नदी से जलप्लावित होगये थे। बहुत दिनों तक पानी खड़ा रहने के कारण सर्वत्र रोग फैलने लगे थे। लोग छतों पर वा

वृक्षों पर बैठकर पानी में शौच करते थे। सर्वत्र हाहाकार मचा था। ऐसी अवस्था में आचार्य जी कैसे बैठे रह सकते थे। इन्होंने उद्योगपतियों से आर्थिक सहायता की अपील की। जिसके कारण बाढ़सहायताकार्यों के लिये धन मिला। आपने अपने अनेक सहयोगियों को लगाकर भोजन के लंगर खुलवाये। लोगों में कपड़े बंटवाये और रोगियों का इलाज किया। आचार्य जी ने एकदिन स्वयं खड़े होकर पर्याप्तमात्रा में औषधियां तैयार करवाईं। ये इन दिनों जीप रखते थे। दूसरे तीसरे दिन जीप औषधियों की भरकर लेजाते और बांट आते। आपका बनाया हुआ सुदर्शन-चूर्ण इस समय बाढ के कारण आनेवाले ज्वर पर रामबाण सिद्ध हुआ। कई मन चूर्ण आपने इन दिनों निःशुल्क बांटा था। हजारों गरीब परिवारों में कपड़े और अन्न भी आपने पहुंचवाया था। इन्हीं सेवाओं का परिणाम था कि जब कभी विधानसभा और लोकसभा का चुनाव आता तो प्रत्याशी आपका समर्थन पाने के लिए आपके चारों ओर चक्कर लगाने लगते थे। सेवा का इतना अधिक प्रभाव था कि लोग इस प्रतीक्षा में रहते कि हम अपने मत का सदुपयोग करने के लिए कब आचार्य जी का आदेश पायेंगे। आप सच्चरित्र और ईमानदार प्रत्याशियों को ही अपना समर्थन देते थे। जिसको आप जनता के लिए अच्छा व्यक्ति नहीं समझते उसका विरोध भी डटकर करते थे। अनेक बार देखा है कि आचार्य जी के संकेतमात्र से अनेक प्रत्याशी हारे और अनेक इनके समर्थन से समय-समय पर सफल हुये थे।

चुनाव के समय चरखी दादरी में पंजाब सभा के अधिवेशन में श्री आचार्य जी ने कहा कि—''मैं राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं का प्रवेश अच्छा नहीं समझता, महिलाओं को राजनीति के अखाड़े में पैर नहीं रखना चाहिये।'' विपक्षी प्रत्याशी चौ० अतरसिंह ने इश्तिहार छपवाकर बंटवाये। उनके इस कथन का इतना अधिक प्रभाव हुआ कि उस क्षेत्र की महिला प्रत्याशी बहिन चन्द्रावती को हार का मुंह देखना पड़ा। बाद में आचार्य जी को उसने उपालम्भ भी दिया कि आपने मुझे हरवा दिया। इस प्रकार आचार्य जी का हरयाणा की राजनीति में बहुत व्यापक प्रभाव था। पृथक् हरयाणा निर्माण से लेकर चण्डीगढ़ की समस्या तक में इन्होंने महत्त्वपूर्ण कार्य किया था, इसकी चर्चा मैं आगे करूंगा।

पुरातत्त्वसंग्रहालय की स्थापना

आचार्य जी के स्वभाव में दो गुण बहुत प्रमुख थे। प्रथम वे ऐसे कार्य को अवश्य करते थे जो श्रेष्ठ हो, किन्तु कठिन होने के कारण जिसको करने का साहस कोई अन्य नहीं कर पाये। दूसरा वे जिस भी कार्य को करते थे उसमें अपनी पूरी

शक्ति लगा देते थे। उसमें समय और साधन का अभाव कभी बाधक नहीं बन सका। एक समय में अनेक कार्य करते थे परन्तु प्रमुखता एक ही कार्य की होती थी और उसको तब तक करते रहते थे जब तक वह अपनी पूर्णता को प्राप्त न करले। गुरुकुल में समय-समय पर पनपी और फूली-फली विविध प्रवृत्तियों का यही एक रहस्य है। वे सब आचार्य जी के इस स्वभाव के वास्तविक प्रतिबिम्ब हैं। गुरुकुल झज्जर में पुरातत्त्व संग्रहालय की स्थापना के पीछे भी यही तथ्य है।

पुरातत्त्व संग्रहालय का विधिवत् उद्घाटन गुरुकुल के ४६वें वार्षिकोत्सव पर १३ फरवरी १९६१ ई० के दिन राजस्थान के प्रसिद्धनेता चौ० कुम्भाराम आर्य के करकमलों द्वारा हुआ। इस संग्रहालय का पूरा नाम ''हरयाणा प्रान्तीय पुरातत्त्व संग्रहालय'' रखा गया। उद्घाटन के समय पुरातत्त्वीयसामग्री केवल एक छोटेसे प्रकोष्ठ में फैलाकर रखी गई थी। उस समय कुछ सिक्के और प्राचीन ईंटें ही संग्रहालय में थीं। सिक्के कांसी की थालियों में सजाकर रखे गये थे। सम्भवतः स्वयं आचार्य जी को भी नहीं पता था कि बहुत शीघ्र ही यह संग्रहालय इतना विशाल रूप धारण कर लेगा किन्तु सभी समझदार व्यक्ति उस समय कह रहे थे कि शीघ्र ही समय आयेगा जब ये थोड़ेसे दीखनेवाले सिक्के एक आधुनिक ढंग के विशाल संग्रहालय का रूप धारण कर लेंगे। कारण कि यह कार्य परम तपस्वी कर्मठनेता श्री आचार्य जी द्वारा आरम्भ हुआ था। हुआ भी यही। २३ फरवरी १९६३ ई० को संग्रहालय के फैलाव को विस्तृतरूप दिया गया। अब नये भवनों के छः प्रकोष्ठों में भी सामग्री नहीं समा रही थी। संग्रहालय में हजारों प्राचीन सिक्के, मुद्रा-सांचे, मोहरें, मूर्तियां, शिलालेख और पाण्डुलिपियां आदि आचार्य जी ने एकत्र करली थीं। दुर्लभ सामग्री दिन प्रतिदिन बढ़रही थी। प्रारम्भिक दिनों में ब्र० धर्मपाल (महाराष्ट्र) संग्रहालय का काम सम्भालता था। सन् १९६२ से ब्र० योगानन्द तथा कुछ दिन उपरान्त ब्र० विरजानन्द ने साथ मिलकर संग्रहालय का कार्य सम्भालना प्रारम्भ किया। श्री आचार्य जी इस कार्य में इतनी अधिक लग्न से जुट गये कि प्रतिसप्ताह इतनी अधिक सामग्री लाने लगगये कि उसको सम्भालना कठिन होगया। देखते ही देखते दुर्लभ स्वर्णमुद्रायें भी लाने लगे। उनसे भी अधिक मूल्यवान् और महत्त्वपूर्ण अन्य सामग्री भी इन्होंने एकत्रित की। उन सबका वर्गीकरण और संरक्षण भी बड़ा कठिन कार्य था। थोड़े दिन पश्चात् ही संग्रहालय की ख्याति दूर-दूर तक फैलने लगी। भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग और अन्य संग्रहालयों के अधिकारी यहां के संग्रहालय को विस्फारितनेत्रों से देखते और

कहते—हम तो कभी कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि केवल एक व्यक्ति भी इतना बड़ा और महत्त्वपूर्ण संग्रहालय बना सकता है और वह भी बिना किसी सरकारी वा गैर-सरकारी सहायता के ही। वास्तव में यह एक बड़ा अद्‌भुत और अनूठा प्रयोग आचार्य जी का था। जिस बहुमूल्य सामग्री को प्राप्त करने के लिये शासन-तन्त्र पानी की तरह पैसा बहाते थे उसे आचार्य जी बहुधा भेंट में प्राप्त कर लेते थे वा नाममात्र के मूल्य पर। यह सब इनके महान् व्यक्तित्व और सेवा का ही फल था।

अल्पकाल में इतने बड़े संग्रहालय (म्यूजियम) का निर्माण केवलमात्र आचार्य जी के अटूट उत्साह, गम्भीर अध्यवसाय, प्रबल लग्न, दृढ़ संकल्प और विशिष्ट कार्यक्षमता का ही परिणाम था। अनेक संस्थाओं का कार्यभार तथा अहर्निश जनजागृति एवं जनकल्याण की चिन्ता और इस पर भी अत्यल्प सीमित साधन होते हुये इतने बड़े राष्ट्रीयस्तर के संग्रहालय का निर्माण उनके अपने विशिष्टगुणसम्पन्न कर्मठव्यक्तित्व की ओर संकेत कररहा है। जिन सज्जनों ने इस संग्रहालय को अपनी सूक्ष्मेक्षिका से एवं अध्ययनात्मक दृष्टि से देखा है वे जानते हैं यहां कितनी महत्त्वपूर्ण, दुर्लभ और उपादेय ऐतिहासिक सामग्री एकत्रित है। इसको एकत्रित करने के लिए कितना कष्टसाध्य परिश्रम और व्यय करना पड़ा है यह कल्पना से परे की बात है। संग्रहालय के कार्यार्थ आचार्य जी ने अनेक बार यात्रायें की थीं। उन लम्बीयात्राओं की अपनी ही कहानी है।

सन् १९६७ के मई मास की बात है। ज्येष्ठ का तपता हुआ महीना था। इलाहाबाद से लगभग ६४ किलोमीटर की दूरी पर दक्षिण पश्चिम में यमुना के तट पर प्राचीन नगर कौशाम्बी के खण्डहरों पर आचार्य जी और ब्र० योगानन्द घूम रहे थे। ये दोनों यहां एक विशेष उद्‌देश्य से गये थे। आचार्य जी को सूचना मिली थी कि यहां किसी व्यक्ति को ताम्रपत्र मिले हैं। खोजते हुए आचार्य जी उसके घर पहुंचे। पता चला कि वह ताम्रपत्रों को किसी दूसरे व्यक्ति को बेच चुका है। वह उनका महत्त्व एवं मूल्य बढ़ाने के लिये आसानी से दिखाना नहीं चाहता था। बहुत कठिनाई से उस व्यक्ति ने एक-एक करके वे चारों ताम्रपत्र और राजा की वह मोहर दिखलाई जो उनमें लगी थी। अगले दिन ११ बजे तक आचार्य जी उसको देने के लिये राजी कर पाये। वह उनके ४१ हजार रुपये मांगता था। जबकि सौदा हुआ २९०० रुपये में। इन ताम्रपत्रों में कम से कम २५ किलो वजन तो था ही। ठीक ग्यारह बजे ब्र० योगानन्द उनको सिर पर उठाकर पैदल चला। वहां से

लगभग १५ किलोमीटर दूर सरायआकिल पहुंचकर इन्हें इलाहाबाद के लिये बस पकड़नी थी। इस बार आचार्य जी के पास जीप नहीं थी। गांववालों ने कहा कि दोपहर का समय है तांगा नहीं मिलेगा, आप मत जाइये, परन्तु आचार्य जी ने एक बार जो ठान लिया, उसको कैसे मोड़ा जासकता था। आचार्य जी सदा नंगे पैर रहते थे। ब्रह्मचारी योगानन्द भी नंगे पैर था। उस दिन बहुत तेज धूप और गर्मी थी।

ब्र० योगानन्द उस समय नहीं चलना चाहता था। धूप से घबरा रहा था। इस बात को आचार्य जी भी जान गये। इसलिये अब तो चलना और भी आवश्यक होगया। वे अपने ब्रह्मचारी को इतना निर्बल देखना कैसे पसन्द कर सकते थे। किन्तु ब्रह्मचारी को **''दुबली को दो आषाढ''** वाली कहावत याद आरही थी। एक तो भयंकर तपती धरती पर नंगे पैर चलना और दूसरे सिर पर ताम्रपत्रों का भार। श्रद्धावश ब्रह्मचारी आचार्य जी को वे दे नहीं सकता था किन्तु जब कई किलोमीटर चलकर आचुके तो न जाने वह श्रद्धा कहां उड़ गई। ब्रह्मचारी मन ही मन चाहने लगा कि किसी तरह आचार्य जी एक बार फिर ताम्रपत्र लेने के लिये कहदें तो मैं झट इस भार को देदूं। थोड़ी देर में आचार्य जी ने फिर कहा और योगानन्द ने आचार्य जी को ताम्रपत्र देकर थोड़ी राहत महसूस की। योगानन्द को आठ वर्ष गुरुकुल में रहते हुये होगये थे। दुनियावी दृष्टि से वहां तपस्या भी कर रहा था। किन्तु उस दिन उसने जाना, वास्तविक तपस्या तो आज हुई है जिसको आचार्य जी प्रतिदिन ही करते थे। उस दिन ब्रह्मचारी ने आचार्य जी को जितना निकट से देखा शायद पहले कभी नहीं। नंगे सिर, नंगे पैर, भूखे पेट, पूरे रास्तेभर पानी भी न पीने का नियम करने से सूखे ओठ, निर्जन वन में से १५ किलोमीटर यात्रा करके जिसके चेहरे पर कोई रेखा नहीं आई वह आदमी किस धातु का बना होगा, यह आप अनुमान लगा सकते हैं। दूसरी ओर ब्र० योगानन्द था जो इस यात्रा को महादुःख मान रहा था किन्तु आचार्यजी के लिये यह सामान्य बात थी। एक के मन में यात्राजन्य विषाद था तो दूसरे के मन में लक्ष्यप्राप्ति का उत्साह। कितना बड़ा अन्तर था दोनों के बीच। यही अन्तर इनको महान् बनाता था। इस तरह की न जाने आचार्य जी ने कितनी यात्रायें की थीं तब जाकर इस संग्रहालय का निर्माण हुआ था। इस कार्य पर वे छः जीप जीर्ण कर चुके थे। इससे सहज में जाना जासकता है, उन्होंने इस कार्य के लिये कितना परिश्रम किया था।

एक बार कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग के रीडर डॉ० सूरजभान आचार्य जी साथ हरयाणा की ऐतिहासिक यात्रा

पर थे। वे भी गर्मी के ही दिन थे। उस समय अनेक पुरातत्त्वीय महत्त्व के प्राचीन खण्डहरों का सर्वेक्षण उन्होंने किया। यात्रा के उपरान्त उन्होंने कहा— आचार्य जी महाराज जितना कर्मठ और धुन का धनी आदमी मैंने आज तक न तो देखा है और शायद न ही अपने जीवन में देख पाऊंगा।

सन् १९६३ में आचार्य जी ने कन्या गुरुकुल नरेला में भी पुरातत्त्व संग्रहालय की स्थापना की। झज्जर संग्रहालय का सम्पूर्ण कार्यभार ब्र० विरजानन्द दैवकरणि पर है। वे इस कार्य में जुटे हैं। उनका गहन अध्ययन है। ब्राह्मी, खरोष्ठी और इण्डोग्रीक आदि प्राचीन लिपियों के वे ज्ञाता हैं। मुद्राओं पर लिखी अरबी फ़ारसी का भी अध्ययन उन्होंने किया है। आचार्य जी सामग्री लाकर उन्हें सौंपकर निश्चिन्त होजाते थे। वे जिस आत्मीयता से उनका रख-रखाव एवं अध्ययन करते हैं वह वास्तव में प्रशंसनीय है। आचार्य जी को अपने कार्य एवं तपस्या के अनुरूप ही वे मिले थे। इसी कारण आचार्य जी प्रचार आदि के कार्य के लिये समय निकाल लेते थे। कई वर्ष तक ब्र० योगानन्द ने भी संग्रहालय को सम्भाला था किन्तु ब्र० विरजानन्द ने अधिक तन्मयता, लग्न, श्रद्धा और परिश्रम से कार्य किया है। इस युग में ऐसे कर्मठ आचार्य और उनके अनुरूप शिष्य का मिलना अपने आप में एक बड़ी उपलब्धि है।

श्री आचार्य जी द्वारा स्थापित गुरुकुल झज्जर का संग्रहालय आज देश के प्रमुख संग्रहालयों में है। यहां ऐसी पर्याप्त पुरातत्त्वीय सामग्री है जो दूसरे किसी संग्रहालय में नहीं है। प्राचीन सिक्कों का संग्रह बेजोड़ है। सिक्कों की दृष्टि से देशभर का कोई भी संग्रहालय इसकी बराबरी नहीं कर सकता। प्राचीन गणतंत्रों के सिक्के, प्राचीन मुद्रा सांचे, शुंग, कुषाण और गुप्तकालीन मृन्मूर्तियां और सैकड़ों मोहरें (Seal and Sielings) यहां की अपनी विशेषता है। प्रस्तर-मूर्तियां, पांडुलिपियां, ताम्रपत्र और शिलालेख भी यहां पर्याप्तमात्रा में हैं। यह संग्रहालय विशुद्ध पुरातत्त्वीय संग्रहालय है। ताम्रयुगीन शस्त्रास्त्रों का भी यहां अनूठा संग्रह है।

संग्रहालय के निर्माण में अनेक लोगों का योगदान रहा है। मास्टर भरतसिंह बामला, स्वामी नित्यानन्द (सुहराकलोई), वानप्रस्थी रामपत (आसन), गंगाविष्णु शर्मा (संघोल) आदि अनेक लोगों ने संग्रहालय को सामग्री दी है। संग्रहालय प्रारम्भ करने का भी एक रोचक इतिहास है। आचार्य जी की इतिहास में प्रारम्भ से ही रुचि थी। वे यत्र-तत्र अपने भाषणों में भी इतिहास एवं पुरातत्त्वसम्बन्धी चर्चा करते रहते थे। उनके सभी श्रद्धालु उनकी इस रुचि से परिचित थे। सन् १९६६ में

एक दिन वे गढी (बोहर) गांव में थे कि श्री महाशय सूबेसिंह आर्य ने एक काली मिट्टी का गोल सांचा लाकर दिया और कहा कि एक बूढ़ा आदमी इसको हुक्के की चिलम में चुगल के रूप में प्रयोग करता है। उस समय यह किसी को नहीं पता था कि यह किसी प्राचीन टकसाल का सांचा है। वह बहुत ही गोल और व्यवस्थित बना था। कुछ चिह्न भी उस पर अंकित थे। आचार्य जी ने वह मिट्टी की वस्तु परीक्षण के लिए श्री पं० जयचन्द्र विद्यालंकार के पास भेजदी किन्तु वे भी इसको नहीं जान पाये। कई वर्ष तक आचार्य जी भी उसको नहीं पढ़ पाये। वास्तव में उस पर आदि देवनागरी लिपि में 'राह' ये दो अक्षर अंकित थे। बाद में जब कुछ और उसी प्रकार के मुद्रा-सांचे मिले तो पता चला कि यह गुर्जरप्रतिहार राजा वराह मिहिर भोज के मुद्रा-सांचे हैं जिनमें किसी पर 'श्रीमदादि' और किसी पर 'वराह' शब्द अंकित है।

उसके बाद ब्र० योगानन्द (भदानी) तथा ब्र० दयानन्द (कितलानावाले) वहां गये। तीन दिन तक वे उस खण्डहर पर खुदाई करते रहे। वहां उन्हें पूरी टकसाल मिली। वहां गुर्जरप्रतिहार, सामन्तदेव और गधैय्यावंशों की तीन टकसालें थीं। इन टकसालों से लगभग छः हजार सांचे उन्होंने निकाले। टकसाल के दूसरे उपकरण भी मिले। वहां लोगों से बात करने पर पता चला कि यहां ये सांचे गोफियों में डालकर चिड़िया उड़ाने के लिये फेंके जाते रहे हैं और इस प्रकार वह अमूल्य निधि अनेक वर्षों से नष्ट होरही थी। आचार्य जी की प्रेरणा पर इन्होंने जाकर उसे बचाया।

दो प्राचीन खण्डहरों पर आचार्य जी ने उत्खनन (Excavation) भी कराया। अगस्त १९६४ में नौरंगाबाद (बामला) के टीले पर तथा सन् १९६९ में मित्ताथल (भिवानी) में यह खुदाई हुई। गुरुकुल झज्जर के ब्रह्मचारियों ने इन दोनों उत्खननों में भाग लिया। इनसे भी संग्रहालय को सामग्री मिली। नौरंगाबाद से तो बहुत ही महत्त्वपूर्ण सामग्री समय-समय पर मिलती रही है। यहां आहत मुद्राओं, **'यौधेयानां बहुधान्यके'** प्रकार की मुद्राओं, आठ इण्डोग्रीक तथा कनिष्क और हुविष्क कुषाणमुद्राओं की टकसालें मिली हैं। इन से प्राचीन भारत में मुद्रानिर्माण-पद्धति पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। मुख्यरूप से इन्हीं के आधार पर आचार्य भगवान्देव जी ने **''भारत के प्राचीन लक्षण स्थान''** नामक ग्रन्थ की रचना की थी। संग्रहालय की दुर्लभ और महत्त्वपूर्ण सामग्री के आधार पर इनका दूसरा ग्रन्थ **''भारत के प्राचीन मुद्रांक''** (Ceals and Sealings of Ancient India) भी

प्रकाशित होचुका है। ये दोनों ही ग्रन्थ भारतीय इतिहास और पुरातत्त्व की अमूल्य निधि हैं। मुद्रा-निर्माण-पद्धति पर तो इतना विस्तृत ग्रन्थ पहली बार सामने आया है। दर्जनों प्राचीन नई टकसालों को प्रकाश में लाकर इन्होंने इतिहासजगत् को अमूल्य देन दी है, जिसका मूल्यांकन भविष्य में अधिक होसकेगा। इन ग्रन्थों के लिखने में श्री ब्र० विरजानन्द दैवकरणि ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। आचार्य जी अपना अगला ग्रन्थ '**ताम्रयुगीन शस्त्रास्त्र**' लिखने में संलग्न थे।

श्री आचार्य जी ने संग्रहालय में जो सामग्री एकत्रित की थी वह राष्ट्र की अमूल्य निधि है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुये भारत सरकार और हरयाणा सरकार ने संग्रहालय को सामान्य आर्थिक अनुदान भी दिया था। यद्यपि कार्य और संग्रह के प्रदर्शन और रख-रखाव की दृष्टि से वह अनुदान नगण्य-सा ही था तथापि शासन द्वारा उसकी स्वीकृतिमात्र ही कार्य की महत्ता के लिये कम नहीं थी। वैसे यह हमारे देश की विडम्बना ही है कि यहां अनावश्यक कार्यों में शासन का धन पानी की भांति बहाया जाता है और अच्छे कार्यों के लिये अपेक्षित सहायता एवं प्रोत्साहन नहीं मिलता। इसी कारण यहां राष्ट्रीयहित के कार्यों में रुचि लेने की प्रवृत्ति साधारण व्यक्तियों में दृष्टिगत नहीं होती। वास्तव में आचार्य जी द्वारा संग्रहालय का निर्माण राष्ट्र को उनकी एक बहुत बड़ी देन है।

संग्रहालय की स्थापना के साथ ही आचार्य जी ऐतिहासिकशोध की ओर अधिक प्रवृत्त हुये। उन्होंने कई ऐसे अनुसंधान किये थे जो अभूतपूर्व तो थे ही साथ ही भारतीय इतिहास की बहुत बड़ी उपलब्धि भी हैं। इसी कारण उनको कई बार विदेशों से निमंत्रण आये और इन्होंने वहां अपने शोधलेख प्रस्तुत किये। इसका उल्लेख मैं इनकी विदेश-यात्रा प्रसंग में करूंगा। एक यात्रा में ब्र० योगानन्द भी इनके साथ था। योरोपीय देशों में भी इनके व्यक्तित्व की छाप पड़ती थी।



पञ्चम अध्याय

गोरक्षा-आन्दोलन

अक्तूबर-नवम्बर १९६६ ई० में अखिलभारतीयस्तर पर गोरक्षा-आन्दोलन चला। भारत साधु-समाज, आर्यसमाज, सनातन धर्म, जैन धर्म आदि सभी भारतीय धार्मिकसमुदायों ने इसमें बढ़-चढ़कर भाग लिया परन्तु आचार्य जी ने इस आन्दोलन में जो कार्य किया वह और नेताओं और संस्थाओं की तुलना में बहुत अधिक था। यदि कहा जाये कि आधे से अधिक सत्याग्रह का संचालन इन्होंने ही किया तो अतिशयोक्ति न होगी। एक बार सनातनधर्मसभा के तथा आर्यसमाज के कई नेता आचार्य जी के पास आये, आन्दोलन की बागडोर सम्भालने का आग्रह किया। आचार्य जी ने उनको आन्दोलन के लिये अहर्निश कार्य करने का आश्वासन दिया, किन्तु अकेले बागडोर सम्भालने से निषेध किया। उन्होंने कहा सामूहिक नेतृत्व रखना अधिक उपयुक्त रहेगा। ये नेता आर्थिक सहायता का वचन देकर चले गये किन्तु सत्याग्रह के अन्त तक कोई सहायता नहीं आई। आचार्य जी ने स्वयं चन्दा करके धन का प्रबन्ध किया और कई हजार सत्याग्रही भेजे। हरयाणा से उस आन्दोलन में सबसे अधिक सत्याग्रही जेल में गये।

हरयाणावालों के लिये आर्यसमाज करौलबाग (दिल्ली) में सत्याग्रहशिविर खोला गया। इस शिविर का प्रबन्ध स्वामी आत्मानन्द जी के शिष्य और स्वामी जी के भक्त श्री देवीदास जी आर्य ने किया। आर्यसमाज करौलबाग का योगदान भी प्रशंसनीय रहा। इस शिविर में लगभग २० हजार सत्याग्रहियों ने सत्याग्रह कर जेल-यात्रा की। पहले ५ नवम्बर १९६६ के दिन आचार्य जी ने ९०० आर्यवीरों के साथ सत्याग्रह किया। इस आन्दोलन के इतिहास में यह सबसे बड़ा जत्था था। करौलबाग आर्यसमाज मन्दिर में प्रसिद्ध सनातनधर्मी प्रज्ञाचक्षु संन्यासी स्वामी गंगेश्वरानन्द जी महाराज तथा पं० प्रकाशवीर शास्त्री संसद्सदस्य आदि ने आचार्य जी के जत्थे का भावभीना स्वागत किया और समारोहपूर्वक विदाई दी। इस जत्थे में स्वामी धर्मानन्द जी (आर्यसमाज करौलबाग) तथा श्री राममेहर एडवोकेट रोहतक आदि अनेक प्रमुख व्यक्ति थे। इस जत्थे ने तत्कालीन गृहमन्त्री श्री गुलजारीलाल नन्दा की कोठी पर सत्याग्रह किया और गिरफ्तारी दी। गिरफ्तारी से पहले आचार्य जी के नेतृत्व में कुछ लोग नन्दा जी से उनकी कोठी पर मिले। नन्दा जी ने बड़े सौहार्द से स्वागत किया किन्तु गोरक्षा के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट

आश्वासन न देने पर इन्होंने सत्याग्रह कर दिया। पुलिस ने जब जत्थे को गिरफ्तार करने से इंकार कर दिया तो सत्याग्रहियों ने पुलिस का घेरा तोड़कर कोठी में घुसने का प्रयास किया जिससे गिरफ्तारी होसके। पुलिस ने लाठीचार्ज कर दिया, जिससे कई लोगों को चोटें आईं। भक्त खेमराम झज्जरवाले तो धक्का-मुक्की के बीच आकर बेहोश होगये थे। गिरफ्तार कर इस जत्थे को तिहाड़ जेल भेज दिया गया।

जेल अवधि पूरी करके आचार्य जी बाहर आते ही सत्याग्रह को तीव्र करने में जुट गये। उन्होंने रोहतक, गोहाना, दादरी, रोहणा तथा आसन आदि स्थानों पर बड़े-बड़े सम्मेलन रखे। इनसे पूरे हरयाणा में आन्दोलन का वातावरण बना। ७ नवम्बर१९६६ को संसद् पर हुये ऐतिहासिक प्रदर्शन में देशभर के लाखों लोगों ने भाग लिया। हरयाणा का इसमें सर्वप्रमुख भाग था। इस प्रदर्शन में गोली चली और अनेक व्यक्ति शहीद हुये।

इस आन्दोलन में चारों शंकराचार्य तथा स्वामी करपात्री जी भी जुटे थे। जैन मुनि सुशीलकुमार जी तथा सार्वदेशिक सभा के प्रधान लाला रामगोपाल शालवाले और हिन्दू महासभा के प्रधान प्रो० रामसिंह जी भी बहुत सक्रिय थे। श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी तथा पुरी के जगद्गुरु शंकराचार्य श्री स्वामी निरंजनदेव तीर्थ के आमरण अनशन ने आन्दोलन में प्राण फूंक दिये थे किन्तु जनसंघ इसका प्रारम्भ से अपने राजनीतिक लाभ के लिये एक हथियार के रूप में प्रयोग कर रहा था। उसका उद्देश्य मात्र कांग्रेस सरकार के खिलाफ इस आन्दोलन के द्वारा असन्तोष फैलाकर राजनीतिक स्वार्थ सीधा करना था। इसलिये उसने प्रभुदत्त ब्रह्मचारी से पहले तो अनशन करवाया और फिर जब आन्दोलन का उद्देश्य प्राप्त होने का समय आया तो उनका अनशन तुड़वा दिया। इसी प्रकार शंकराचार्य जी का अनशन समाप्त करवाने के लिए स्वामी करपात्री जी को तैयार किया। वे वायुयान से उनके पास गये और अनशन खुलवा आये। जबकि सरकार की ओर से गोरक्षा के सम्बन्ध में कोई आश्वासन तक भी नहीं मिल पाया था। जनसंघियों ने सन् १९६७ के आम चुनाव निकट देख, सरसंघ चालक गुरु गोलवलकर को बीच में डाल, यह सब खेल खेला। आचार्य जी और प्रो० रामसिंह जी ने अनशन समाप्त करवाने तथा सत्याग्रह बन्द करने का कड़ा विरोध किया किन्तु इनकी बात कौन सुनता था। वहां तो जनता द्वारा किये कराये पर पानी फेरने के लिये पहले से दुरभिसन्धि हो चुकी थी। जिस समय सत्याग्रह बन्द करने की योजना बन रही थी तब आचार्य जी दूसरी बार सत्याग्रह कर फिरोजपुर जेल में थे। उनके साथ

गुरुकुल झज्जर के अनेक अध्यापक और ब्रह्मचारी तथा ग्राम रोहणा के अनेक व्यक्ति जेल में थे। फिरोजपुर से आचार्य जी को लाने के लिए गृह-मंत्रालय की गाड़ी गई। उस समय आचार्य जी के साथ ब्र० दयानन्द (कितलाना) और म० दरयावसिंह (रोहणा) भी फिरोजपुर से दिल्ली आये थे। सरकार आन्दोलन के संचालकों से समझौता चाहती थी। इसलिए सभी नेताओं को इकट्ठा कर बातचीत कीगई। सरकार की ओर से कोई ठोस प्रस्ताव न आने पर आचार्य जी ने समझौता करने का विरोध किया परन्तु जनसंघियों को चुनाव लड़ने की जल्दी थी अत: उन्होंने जनता के साथ विश्वासघात कर समझौता कर सत्याग्रह बन्द कर दिया। साधु संन्यासी सादे होते ही हैं वे इनके बहकावे में आगये और अनेक लोगों का बलिदान व्यर्थ गया। इन दिनों हरयाणा के मुख्यमंत्री पं० भगवद्दयाल थे। उन्होंने आचार्य जी के वारण्ट जारी करवा दिये थे। किन्तु उनका कोई महत्त्व न था, जबकि आचार्य जी स्वयं गिरफ्तारी देरहे थे।

कुण्डली का बूचड़खाना

सन्१९६८ में हरयाणा तथा भारत सरकार ने कुण्डली जिला रोहतक में एक बूचड़खाना खोलने की विस्तृत योजना को स्वीकृति देदी। हरयाणा में बूचड़खानों का सदा से ही विरोध रहा है। यह प्रान्त कृषिप्रधान, निरामिषभोजी और वैदिक संस्कृति से अनुप्राणित रहा है। अब उसी शस्यश्यामला पवित्रभूमि पर सरकार बूचड़खाना खोलने की अनुमति देदेगी, यह कल्पना से बाहर की बात थी। यह बूचड़खाना भी आर्यसमाज के गढ़ रोहतक जिले के ही कुण्डली गांव में खुल रहा था। इससे रोहतक जिले की सारी आर्यजनता तिलमिला उठी। उधर सरकार भी अपने निश्चय पर अडिग थी। परिणामस्वरूप आर्यसमाज के लिए संघर्ष की घड़ी उपस्थित हुई। यह स्थान कन्या गुरुकुल नरेला से केवल दो किलोमीटर दूरी पर है, इसलिए और अधिक चिन्ता की बात थी। इससे पांच किलोमीटर के अन्तर पर नरेला गांव स्थित है जो आर्यसमाज का गढ़ और आचार्य जी की जन्मभूमि तथा यौवनकाल की कर्मभूमि रहा है। ऐसे स्थान पर बूचड़खाना खुलना स्वयं आचार्य जी के लिए एक बड़ी चुनौती थी।

इस बूचड़खाने के लिए एसैक्स फार्मस कम्पनी प्रा०लि० ने सन् १९६२-६३ में कुण्डली और मनियारीवाली प्याऊ के बीच कई एकड़ भूमि खरीदी। फरवरी १९६४ में उक्त कम्पनी ने इस भूमि की चारदीवारी करली और अन्दर

भवन बनाने प्रारम्भ किये। जब इस क्षेत्र के लोगों को बूचड़खाने के निर्माण का आभास हुआ तो ६ फरवरी १९६४ ई० को क्षेत्रीय पंचायत समिति, ब्लाक समिति और क्षेत्र के प्रतिष्ठित अनेक नेताओं की आवश्यक बैठक हुई। बैठक में ''बूचड़खाना निरोध समिति' का गठन हुआ। आचार्य भगवान्देव जी इसके अध्यक्ष तथा चौ० हीरासिंह (मुखमेलपुर दिल्ली) इसके सर्वसम्मति से मंत्री चुने गये। इन दोनों के नेतृत्व में समिति जनजागरण और सरकार से सम्पर्क स्थापित करने का कार्य करती रही। समिति का एक शिष्टमण्डल तत्कालीन पंजाब के मुख्यमंत्री कामरेड रामकिशन से मिला। उन्होंने आश्वासन दिलाया कि कम्पनी को इस स्थान पर बूचड़खाना खोलने की अनुमति बिल्कुल नहीं दीजायेगी।

दूसरी ओर एसैक्स कम्पनी के दबाव पर भारत सरकार ने पंजाब सरकार को पत्र लिखा कि राई ब्लाकसमिति से इस स्थान पर बूचड़खाना बनाने का लाइसेंस प्राप्त करवाया जावे परन्तु ३० मई १९६६ को ब्लाकसमिति ने सरकार के इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया किन्तु दुबारा सिफारिश आई और समिति ने उसको भी रद्द कर दिया। डिप्टी-कमिश्नर ने भी लाइसेंस के लिए ब्लाकसमिति पर दबाव डाला परन्तु सब व्यर्थ रहा। ६ नवम्बर १९६६ को जखौली में इसके विरोध में एक विशालसभा हुई। ६ दिसम्बर १९६६ को एक शिष्टमण्डल नवोदित हरयाणा प्रान्त के प्रथम मुख्यमंत्री पं० भगवद्दयाल से मिला। उन्होंने भी बूचड़खाना न खोलने का आश्वासन दिया किन्तु एसैक्स कम्पनी की गतिविधियां चालू रहीं और अन्दर विशालभवन बनकर तैयार होगये।

अगस्त १९६७ में फिर एक शिष्टमण्डल हरयाणा के मुख्यमंत्री राव वीरेन्द्रसिंह से मिला। उन्होंने भी उसी प्रकार का आश्वासन दिया परन्तु उनका मंत्रिमण्डल भंग होते ही उक्त कम्पनी ने केन्द्र सरकार से १९ लाख रुपया लेकर १ जनवरी १९६८ तक अनेक विशालकाय मशीनें लगाकर वहां विधिवत् पशुवध प्रारम्भ कर दिया। पहले पहल भेड़ें लाई जाने लगीं। इससे समीपवर्ती गांवों में रोष फैल गया। चौ० हीरासिंह जी ने पहल करके इसके विरोध में लोगों को संगठित करना प्रारम्भ कर दिया। २८ जनवरी १९६८ को नांगल ग्राम में एक विशाल सभा हुई। एक शिष्टमण्डल केन्द्रीय खाद्यमंत्री बाबू जगजीवनराम से भी मिला। उन्होंने भी आश्वासन तो दिया परन्तु कार्यवाही कोई नहीं हुई।

इससे क्षुब्ध होकर २८ फरवरी १९६८ को कुण्डली गांव से प्याऊ मनियारी तक के जी०टी० रोड पर लगभग ५० हजार से अधिक आर्यनरनारियों ने विराट्

प्रदर्शन किया। दिल्ली की ओर से चौ० हीरासिंह जी ने अलीपुर और मुखमेलपुर के पास जी०टी० रोड पर बैलगाड़ियां और ट्रेकटर-ट्रालियां खड़ी करवादीं। परिणामस्वरूप इधर दिल्ली का सब ट्रैफिक जाम होगया और उधर पानीपत तक गाड़ियों की लम्बी लाइन लग गई। हरयाणा तथा दिल्ली के इतिहास में यह पहला अवसर था जबकि इस तरह का कारगर और अहिंसक प्रदर्शन किया गया था। गांव-गांव से लोग ढोलक बजाते नाचते-गाते और हाथों में लाठी और जेलियां लिये बूचड़खाने की ओर बढ़ रहे थे। पुलिस का भी भारी इंतजाम था। इस समय हरयाणा के मुख्यमंत्री चौ० बंसीलाल थे। इसलिये पूरा प्रबन्ध होना तो स्वाभाविक था। इस विराट् प्रदर्शन का नेतृत्व श्री आचार्य जी व चौ० हीरासिंह जी सदस्य महानगरपरिषद् ने किया था। २१ फरवरी से बूचड़खाने पर धरना भी जारी होचुका था। ६ मार्च १९६८ से वहां दीक्षायज्ञ प्रारम्भ किया गया। २५ मार्च से आमरण अनशन का निश्चय किया गया।

इस समय तक सरकार हिल चुकी थी। बूचड़खाना तोड़ने की सुसंगठित योजना बनाली गई थी। प्रदर्शन यद्यपि शान्तिपूर्ण था परन्तु वातावरण में बहुत उत्तेजना थी। सरकार भी भीड़ को कुचलने के लिये कटिबद्ध थी परन्तु उमड़ते जन-समुदाय को देख उसे इरादे बदलने पड़े। अनेक आर्यवीर बलिदान के लिये तैयार थे। 'करो या मरो' का संकल्प लिये सिर पर कफन बांधे आर्यवीर आगे बढ़ रहे थे। ऐसी स्थिति में अम्बाला डिवीजन के कमिश्नर, रोहतक के डिप्टी-कमिश्नर, डी०आई०जी० और दूसरे अधिकारी वहां पहुंच गये। उसी दिन प्रातःकाल चौ० बंसीलाल दिल्ली से चण्डीगढ़ जाने के लिये कार में वहां से गुजरे और उन्होंने जब लोगों को एकत्र होते देखा तो वहीं घटनास्थल पर ही वे हिदायत देकर चले गये। उनके आदेशानुसार डिप्टी-कमिश्नर रोहतक लोगों के बीच में आये और घोषणा की कि आप बूचड़खाने का घेरा न डालें, मैं इस पर ताला लगवा देता हूं और जब तक सरकार इसको बन्द करने का निर्णय नहीं कर लेती तब तक इस पर ताला लगा रहेगा। प्रदर्शन के समय ही यह सब होना एक बड़ी सफलता थी। घोषणा सुनकर आचार्य जी और चौ० हीरासिंह जी ने लोगों को बधाई दी और प्रसन्नता से घर वापस लौटने का आग्रह किया।

इसके अनन्तर २९ जून १९६८ को चण्डीगढ़ में मुख्यमंत्री चौ० बंसीलाल जी से बूचड़खाना निरोध समिति के शिष्टमण्डल ने भेंट की। जिसमें श्री आचार्य जी, चौ० हीरासिंह जी, श्री पं० जगदेवसिंह सिद्धान्ती और श्री कपिलदेव शास्त्री

सम्मिलित थे। उस समय चौ० वंसीलाल जी ने कहा—"मैं तो जनता का सेवक हूं। हरयाणा की जनता बूचड़खाने के विरुद्ध है अतः जनता की भावनाओं का आदर होगा और बूचड़खाना नहीं रहेगा।" उन्होंने अपना वचन निभाया। बूचड़खाना तुरन्त बन्द होगया। अन्त में विजय गोप्रेमी जनता की हुई और सरकार को जनता जनार्दन के आगे झुकना पड़ा और अपना निर्णय बदलना पड़ा। चौ० वंसीलाल जी भी अपने पूर्ववर्ती मुख्यमन्त्रियों की भांति यदि झूठे आश्वासन देकर टालने का प्रयास करते तो स्थिति बिगड़ सकती थी किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। इस कार्य के लिए वे वास्तव में प्रशंसा के योग्य हैं।

चण्डीगढ़ आन्दोलन

२८ अगस्त सन् १९६९ ई० का दिन था। आचार्य भगवान्देव जी स्वामी धर्मानन्द जी के साथ पैर की ग्रन्थि की चिकित्सा के लिये जीप से मुआना (मेरठ) जारहे थे। ब्र० योगानन्द भी साथ था। कई वर्ष से इनके पैर में घुटने के नीचे एक गांठ बन गई थी। आर्यसमाज के प्रचार और गुरुकुलों के कार्य में अहर्निश लगे रहने के कारण तथा समय-समय पर आगत सामयिक संघर्षों के कारण आचार्य जी ने अपने शारीरिक कष्टों की ओर कभी ध्यान नहीं दिया। इस बार भी जब उस ग्रन्थि में पीड़ा होनी शुरू हुई तो वे अनायास ही उसकी चर्चा कर बैठे। स्वामी धर्मानन्द जी जबरदस्ती उनको लेगये। गुरुकुल में भी सबका आग्रह था। अतः आचार्य जी मुआना के लिये चलकर मेरठ पहुंच गये। आगे चलने की तैयारी में थे कि पता चला दिल्ली से दूरभाष आया है और आचार्य जी को खोजा जारहा है। कुछ काल उपरान्त एक सज्जन ने आकर बतलाया कि प्रो० शेरसिंह के निजी सचिव श्री जगन्नाथ जी ने दूरभाष करके कहा है कि आचार्य जी जहां भी मिलें उन्हें तुरन्त वापस दिल्ली भेज दिया जाये। सूचना पाकर दिल्ली दूरभाष करके उनसे सम्पर्क किया। उन्होंने बतलाया कि प्रो० शेरसिंह शिक्षाराज्यमंत्री भारत सरकार, चौ० देवीलाल और चौ० वंसीलाल मुख्यमंत्री हरयाणा इस समय पार्लियामेंटभवन में बैठे हैं और आपके पहुंचने की प्रतीक्षा में हैं आप तुरन्त आजाइये। आचार्य जी ने कहा कि जिस कार्य के लिए हम निकले हैं उसे निपटाकर दो-तीन दिन में आजायेंगे। दिल्ली से उत्तर मिला कि इतने समय में तो सब खेल खत्म होजायेगा। पंजाब के दबाव के कारण चण्डीगढ़ पंजाब को मिल जायेगा। आप अभी पहुंचिये। आपके बिना आगे परामर्श भी नहीं होपायेगा, कोई कदम उठाना तो दूर की बात है। यह सुनकर आचार्य जी वापस दिल्ली के लिये चल पड़े।

यहां यह बतलाना आवश्यक है कि पंजाब की ओर से चण्डीगढ़ के लिए केन्द्र पर भारी दवाव पड़ रहा था। श्री दर्शनसिंह फेरुमान इसके लिये आमरण अनशन प्रारमभ कर चुके थे। सन्त फतेहसिंह अकाल तख्त पर बैठकर आये दिन धमकियां देरहे थे। पंजाब का गुरुनामसिंह मन्त्रिमण्डल भी पूरा जोर लगा रहा था। पूरा अकालीसमुदाय एकजुट होकर चण्डीगढ़ को प्राप्त करने के लिए कसमें खा रहा था। केन्द्रीयमन्त्रिमण्डल के सदस्य सरदार स्वर्णसिंह का भी सहारा उन लोगों को मिलरहा था। ऐसा लगरहा था कि केन्द्रसरकार शीघ्र ही दो-चार दिन में चण्डीगढ़ पंजाब को सौंप देगी और दवाव के आगे शाह कमीशन की सिफारिशें रखी ही रहजायेंगी। ऐसी स्थिति में हरयाणा को चुप नहीं बैठना चाहिये। जवाबी कार्यवाही करनी आवश्यक समझीगई परन्तु वह कार्यवाही क्या हो, और उसे करे कौन? यह प्रश्न हरयाणा के नेताओं के दिमाग में था किन्तु जन-आन्दोलन खड़ा करने की हिम्मत किसी में नहीं थी। ऐसी स्थिति में आचार्य जी याद आये। क्योंकि सन्त फतेहसिंह के मुकावले के लिये हरयाणा में केवल यही एक महापुरुष ऐसे थे जो अपने तेजस्वी व्यक्तित्व के प्रभाव से प्रवल जन-आन्दोलन चलाकर पंजाब का मुंहतोड़ जवाव देसकते थे।

आचार्य जी मेरठ से चलकर जव वापस दिल्ली पहुंचे तो हरयाणा के तीनों नेता प्रो० शेरसिंह, चौ० वंसीलाल तथा चौ० देवीलाल संसद् भवन के एक कक्ष में बैठे आचार्य जी की प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रो० शेरसिंह जी के निजीसहायक अंगरक्षक जो बाहर से उन्हें अन्दर लेजाने के लिये खड़े थे, अन्दर लेगये। आचार्य जी के वहां पहुंचते ही गम्भीर मन्त्रणा शुरू होगई। हरयाणा के समाजसेवी सेठ घनश्यामदास गुप्त भी वहां पहुंचे थे। इस बैठक में विस्तार से पूर्वापर पर विचार कर तय किया गया कि एक दो दिन के अन्दर ही कोई प्रभावशाली कार्यवाही हरयाणा की ओर से की जानी चाहिए जिससे केन्द्र पर पड़ रहे पंजाब के दवाव को कम किया जासके। इन सभी ने अन्तिम निर्णय का अधिकार आचार्य जी पर छोड़ दिया और अगले दिन पुन: मिलने का निश्चय कर बैठक से उठ गये।

उस दिन रात को आचार्य जी वहुत देर तक इस समस्या पर और भविष्य की योजना पर विचार करते रहे। उक्त बैठक में यह निश्चय किया था कि स्वयं आचार्य जी अनशन आदि नहीं करेंगे। वे आन्दोलन का संचालन करेंगे। वैसे आचार्य जी ने कहा था—"यद्यपि आमरण अनशन आदि करना हमारे सिद्धान्त के

विरुद्ध है तथापि हरयाणा के लिये मैं यह कर सकता हूं किन्तु यह ध्यान रहे यदि मैं अनशन करूंगा तो सीधा स्पष्ट लक्ष्य प्राप्त किये बिना अनशन समाप्त नहीं करूंगा, चाहे मेरे प्राण भले ही चले जायें। ऐसी अवस्था में मैं आप लोगों का भी कोई आग्रह फिर नहीं मानूंगा। मेरा अनशन दिखावा नहीं, असली होगा।'' परन्तु नेताओं ने उनकी बात को नहीं माना। यदि आचार्य जी अनशन कर देते तो उस अवस्था में आन्दोलन चलाने का पूरा भार उठानेवाला और कोई नहीं था। इन नेताओं ने आचार्य जी को पूर्ण विश्वास दिलाया—आचार्य जी आप नेतृत्व सम्भालिये, हम बड़े से बड़ा त्याग और बलिदान करने को हर समय तैयार रहेंगे।

यह हरयाणा के लिये सौभाग्य की बात थी कि इस समय उक्त तीनों नेता परस्पर एक थे। चौ० देवीलाल जी और बंसीलाल जी के सम्बन्ध भी अच्छे थे। प्रो० शेरसिंह जी का केन्द्रीयमंत्रिमण्डल में होना भी हरयाणा के लिये अच्छा था। आगे कुछ लिखने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि इस तरह की स्थिति किस प्रकार पैदा हुई।

स्वतन्त्रताप्राप्ति एवं विभाजन से पूर्व ही सन् १८५७ की क्रान्ति के बाद से ही हरयाणा के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार होता रहा है। क्रान्ति के बाद इसकी शक्ति को खण्डित करने के लिये हरयाणा के टुकड़े कर इसको पंजाब, उत्तरप्रदेश और राजस्थान में मिला दिया गया। दिल्ली को अलग कर दिया। संयुक्त पंजाब के समय भी हरयाणा के साथ सौतेला व्यवहार होता रहा। तब पंजाब के मुख्यमंत्री पर सिकन्दरहयातखां की वजारत में जो भी कार्य हुए वे सारे पंजाब के उस भाग के लिये किये गये जो आज पाकिस्तान में चला गया है। स्वर्गवास से पूर्व चौ० छोटूराम भाखड़ाबांध की मूलयोजना को हरयाणा के लिये स्वीकार कर गये थे परन्तु वह भी हरयाणा को नहीं दिया गया। विभाजन के बाद तीनों ही मुख्यमंत्री पंजाब के उस भाग के हितरक्षक थे जो अब पंजाबी सूबा वा पंजाब बना दिया गया है। सरदार प्रतापसिंह कैरों के मुख्यमंत्रित्वकाल में तो हरयाणा के साथ किया जानेवाला पक्षपातपूर्ण व्यवहार अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया था। पंजाबवालों ने सदा ही राजसत्ता के वर्चस्व का लाभ उठाकर हरयाणा की जनता का राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक शोषण किया था। अब वह अधिक बढ़ गया था। इसी कारण सन् १९५७ में हिन्दी-रक्षा आन्दोलन के रूप में हरयाणावासियों ने अपना तीव्र रोष प्रकट किया था।

इस सौतेले व्यवहार के कारण ही हरयाणा के लोगों ने पृथक् हरयाणा निर्माण की आवाज उठाई। जब यह देख लिया गया कि यहां चाहे सच्चर फार्मूला

बने, चाहे रीजनल फार्मूला, सबके सब मात्र पंजाब के लिए प्रयोग किये जाते हैं तो पृथक् हरयाणा बनवाने के सिवाय और कोई समाधान ही नहीं था। सन् १९५७ ई० के हिन्दी आन्दोलन के बाद हरयाणा के पृथक्करण की मांग जोर पकड़ने लगी परन्तु हरयाणा के कुछ स्वार्थी नेताओं ने इसमें पलीता लगाना शुरू किया। प्रताप जैसे अखबारों ने भी इसका खूब विरोध किया। परिणाम यह हुआ कि जो बहुत पहले होजाना चाहिये था वह लम्बा होगया और बहुत प्रयास के उपरान्त १ नवम्बर १९६६ ई० को हरयाणा का एक पृथक् राज्य के रूप में उदय होपाया।

यहां यह बड़े दुःख के साथ लिखना पड़ रहा है कि हरयाणा के नेताओं में पं० भगवद्दयाल शर्मा, पं० श्रीराम शर्मा, चौ० रिजकराम, चौ० हरद्वारीलाल, चौ० रणवीरसिंह हुड्डा, चौ० श्रीचन्द व राव वीरेन्द्रसिंह आदि ने पृथक् हरयाणानिर्माण की मांग का जोरदार विरोध किया था। जनसंघ ने भी खुलकर विरोध किया था। पं० भगवद्दयाल और जनसंघ दोनों ने तो हरयाणाभर में जगह-जगह पृथक्-पृथक् सभायें भी कीं और हरयाणा के पृथक्करण का जबरदस्त विरोध किया। चौ० चांदराम, जो उस समय पंजाब मंत्रिमण्डल में थे, ने भी पंजाब के विभाजन का विरोध किया। पंजाबमंत्रिमण्डल ने अपनी एक सब कमेटी बनाई, जिसको पंजाबविभाजन के विरुद्ध वातावरण तैयार करने और केन्द्र से सम्पर्क रखने का काम सौंपा गया। इस कमेटी में सरदार दरबारासिंह, चौ० रणवीरसिंह हुड्डा और चौ० रिजकराम सदस्य थे। ये लोग ७ जनवरी १९६६ ई० को गृहमंत्री श्री गुलजारीलाल नन्दा से भी मिले और पंजाब मंत्रिमण्डल के निर्णय से उनको अवगत कराया।

हरयाणा के कुछ नेता इस प्रकार पृथक् हरयाणा की मांग का विरोध कर रहे थे परन्तु जनमत उनके साथ नहीं था। ये लोग अपनी कुर्सी बचाने और लम्बे समय तक हरयाणा में अपनी चौधर बनाये रखने के लिये हरयाणा की जनता के साथ विश्वासघात कर रहे थे। इनको शायद भ्रम था कि हरयाणवी लोग अब भी बेवकूफ हैं। दूसरी ओर आचार्य जी, चौ० देवीलाल जी और प्रो० शेरसिंह जी थे, जो पृथक्करण का आन्दोलन चला रहे थे। इनके साथ प्रबल जन-समर्थन था। लोग जानते थे ये लोग ईमानदारी से हरयाणा का हित चाहते हैं और उसके लिए संघर्ष कर रहे हैं। संसद्सदस्य श्री जगदेवसिंह सिद्धान्ती भी इनके साथ थे। लोगों का इनमें विश्वास तब स्पष्टरूप में प्रकट हुआ जब चौ० देवीलाल आदि ने रोहतक के रामलीला मैदान में अपनी मांग के लिये एक विशाल सम्मेलन का

आयोजन किया। इसकी अध्यक्षता श्री आचार्य भगवन्देव जी ने की तथा आचार्य कृपलानी इसमें मुख्य अतिथि थे।

इस सम्मेलन को विफल बनाने के लिये पंजाब सरकार की ओर से झज्जर रोहतक राजमार्ग पर चमनपुरा गांव के पास एक सभा का आयोजन किया गया। इस सभा में भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ० जाकिर हुसेन जी को भी बुलाया, जिससे रोहतक के रामलीला मैदान में जानेवाले लोग भी आकर्षित होकर इधर ही आजायें परन्तु उस दिन लोगों का जो उत्साह और सूझ देखी वह वास्तव में आश्चर्यकारक थी। आचार्य जी की अध्यक्षतावाली सभा में लगभग पांच लाख लोग उपस्थित थे जबकि दूसरी में केवल दो-अढ़ाई सौ ही। उस दिन पंजाब सरकार और हरयाणा के कुछ नासमझ तथाकथित नेताओं ने राष्ट्रपति जैसे सर्वोच्च गरिमामय पद के साथ जो खिलवाड़ किया वह अत्यन्त खेदजनक था।

रामलीला मैदान की इस सभा के बाद केन्द्रसरकार भी समझ गई कि अब हरयाणा के निर्माण को टाला नहीं जासकता। उधर पंजाब में भी पृथक् पंजाबी सूबा की मांग जोर पकड़ रही थी। इसलिये उसने थोड़े दिन बाद २३ अप्रैल १९६६ को पंजाब सीमा आयोग की नियुक्ति की। माननीय न्यायमूर्ति जे०सी० शाह इस आयोग के अध्यक्ष तथा श्री एस० दत्त और श्री एम०ए० फिलिप इसके सदस्य नियुक्त हुये। सारी स्थिति की पूरी-पूरी जांच करने, विभिन्न संस्थाओं, संगठनों और व्यक्तियों के विचार सुनने तथा ४३१४ ज्ञापन एवं प्रार्थनापत्रों की ध्यानपूर्वक परीक्षा करने के बाद कमीशन ने ३१ मई १९६६ को अपनी अन्तिम रिपोर्ट (प्रतिवेदन) देदी। इस आयोग ने जिस तत्परता से कार्य किया और जितनी शीघ्र रिपोर्ट दी वह श्लाघनीय है। आयोग के सामने हरयाणा का पक्ष भलीप्रकार रखने के लिए प्रो० शेरसिंह जी और चौ० देवीलाल जी ने जो परिश्रम किया वह भी प्रशंसनीय था। लगातार कई घण्टों बैठकर लिखते रहना उन दिनों उनकी दिनचर्या बन गई थी। सामग्री जुटाने का काम मुख्यरूप से चौ० देवीलाल जी करते थे और लिखने और ज्ञापन तैयार करने का प्रो० शेरसिंह जी। हरयाणानिर्माण में मुख्यरूप से इन दो नेताओं का ही हाथ था यह कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी। श्री जगदेवसिंह सिद्धान्ती तथा श्री कपिलदेव शास्त्री का भी पूरा सहयोग था। आचार्य भगवान्देव जी का वरदहस्त तो था ही। आचार्य कृपलानी सरीखे वयोवृद्ध नेता का समर्थन मिलना भी महत्त्वपूर्ण रहा।

अन्त में सीमा आयोग की सिफारिश के आधार पर १ नवम्बर १९६६ ई० को हरयाणा का देश के १७वें राज्य के रूप में उदय हुआ। इसी के साथ इसकी उन्नति का मार्ग भी खुल गया परन्तु आश्चर्य तो तब हुआ जब इसके पहले और दूसरे मुख्यमंत्री भी वही लोग बने जो इसका जोरदार विरोध करते थे। इसे भाग्य का खेल कहें, नियति का चक्र अथवा परिस्थितियों का परिणाम। जो भी कहिये पं० भगवद्दयाल प्रथम मुख्यमंत्री बने किन्तु अधिक दिन नहीं टिक पाये। चौ० देवीलाल ने उनका मंत्रिमण्डल तुड़वा दिया और उनके सहयोग से राव वीरेन्द्रसिंह दूसरे मुख्यमंत्री बने किन्तु केन्द्र में कांग्रेस सरकार के रहते वे भी अधिक दिन कैसे चल सकते थे। कुछ मास के मेहमान रहकर वे भी चलते बने। विधानसभा भंग हुई। मध्यावधि चुनाव हुये। कांग्रेस का बहुमत आगया। चौ० बंसीलाल जी हरयाणा के तीसरे मुख्यमंत्री बने। उन्होंने शीघ्र ही पं० भगवद्दयाल, जिनको शुरु में वे अपना राजनीतिक गुरु कहते थे, को अंगूठा दिखला दिया। थोड़े समय बाद ही चण्डीगढ़वाली समस्या आगई। यदि इस समय हरयाणा की ओर से दृढ़ता का रुख नहीं अपनाया जाता तो चण्डीगढ़ पंजाब को मिल जाता और बंसीलाल मंत्रिमण्डल का टिकना भी कठिन होजाता। इस कारण भी चौ० बंसीलाल जी पंजाब का मुकाबला करने और चण्डीगढ़ को हाथ से न जाने देने में रुचि ले रहे थे।

शाह आयोग ने भाषा के आधार पर चण्डीगढ़ परियोजनासहित पूरी खरड़ तहसील हरयाणा को देने की सिफारिश की थी परन्तु पंजाब और हरयाणा को पृथक् करते समय अकालियों एवं पंजाबवालों के दबाव में आकर केन्द्रसरकार ने चण्डीगढ़ हरयाणा को न देकर केन्द्रशासित बना दिया और दोनों राज्यों को अपनी राजधानी वहां रखने की छूट दी। उस समय भी प्रो० शेरसिंह आदि ने इस अन्याय का विरोध किया था किन्तु तब परिस्थितियां ऐसी थीं कि अधिक कुछ नहीं होसका। पंजाबवाले क्योंकि धमकी और दबाव से लेने के आदी होगये थे, इसलिये उन्होंने फिर वही रवैया अपनाया। इधर हरयाणा भी उसके जवाब में उठ खड़ा हुआ किन्तु उसको उठाने में श्री आचार्य जी आदि नेताओं को कितना कुछ करना पड़ा इसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

संसद्भवन की मंत्रणा के बाद चौ० देवीलाल जी तथा बंसीलाल जी चले गये और प्रो० शेरसिंह जी की कोठी पर आकर विचार करने लगे। पूज्य आचार्य जी, प्रो० शेरसिंह जी तथा ब्र० योगानन्द जी तीनों बैठे थे। विचार किया जारहा था

कि तुरन्त उसकी अनशन होना चाहिये। उसके लिये आदमी की खोज होने लगी। श्री आचार्य जी ने ओमानन्द जी को भी नाम सुझाने के लिए कहा। उन्होंने प्रो० शेरसिंह सेन्ट्रोलड् का नाम सुझाया। परन्तु बाद में चौ० देवीलाल जी आदि के साथ सर्वसम्मति से चौ० उदयसिंह मान पूर्व एम०एल०ए० का नाम स्वीकार किया गया। उनको अगले दिन बुलाया गया। उन्होंने कहा— "मैं पूज्य आचार्य जी का आदेश मानूँ इससे बड़ा सौभाग्य मेरा और क्या होगा। मेरे लिये तो यह गौरव की बात है। मुझे आप लोगों ने इस योग्य समझा, इसी में मेरे जीवन की सार्थकता है। फिर हरयाणा के लिए मेरा बलिदान भी हो जाये तो कुछ नहीं, इसका सिर ऊँचा रहना चाहिये।"

मान का आमरण अनशन

एक दिन बाद यज्ञानुष्ठानपूर्वक रोहतक के छोटूराम पार्क में माननीय उदयसिंह मान ने अपना आमरण अनशन प्रारम्भ कर हरयाणा के लिये अपना जीवन दाव पर लगाने की घोषणा की। वहाँ एकत्रित भारी भीड़ ने करतलध्वनि से उनकी घोषणा का स्वागत किया। इसके अनन्तर आचार्य जी ने अपनी सिंहगर्जना में कहा— "भारत सरकार ने धमकी और दबाव में आकर चण्डीगढ़ के सम्बन्ध में यदि कोई विपरीत फैसला किया तो हरयाणा उसे कभी नहीं मानेगा और हरयाणा का बच्चा-बच्चा अपने अधिकारों के लिये मर मिटेगा।" इसके साथ ही उपस्थित जन-समुदाय ने आचार्य भगवान्देव जिन्दाबाद और उदयसिंह मान जिन्दाबाद के नारों से आकाश गुँजा दिया। यही लोग इस नारे के वाहक बने और गाँव-गाँव, गली-गली तक यह नारा गूँज गया। आचार्य जी का तूफानी दौरा शुरू हुआ। इन्होंने जगह-जगह सभायें कीं, बैठकें बुलाईं और एक सप्ताह में ही हरयाणा में वह उत्साह पैदा कर दिया जिसकी खुफिया रिपोर्टों ने केन्द्र सरकार को सावधान कर दिया। अब गया तब गया, चण्डीगढ़ अब हरयाणावालों को अपना दीखने लगा और सर्वत्र यह विश्वास बन गया कि अब चण्डीगढ़ दबाव के कारण पंजाब को नहीं दिया जासकेगा।

इस तैयारी के बाद आचार्य जी ने हरयाणा के सभी राजनीतिक दलों और सामाजिकसंगठनों की एक मीटिंग रोहतक में बुलाई। इस बैठक में एक २५ सदस्यीय "सर्वदलीय संघर्ष समिति" का निर्माण किया गया। सब दलों के प्रतिनिधियों ने एकस्वर से आचार्य जी से इस समिति की अध्यक्षता करने की

प्रार्थना की। आचार्य जी ने कहा—"मैंने अपने जीवन में न कभी कोई पद लिया है और न ही लूंगा किन्तु यदि आप लोग चाहते हैं कि मैं इस सेवा में लगा रहूं तो उसमें मुझे कोई विरोध नहीं परन्तु मैं अध्यक्ष कहलाऊं यह मुझे उचित नहीं लगता।" प्रतिनिधियों ने फिर इस पर दबाव डाला और कहा—"सार्वजनिकहित में आपको भी बाध्य होना पड़ेगा, हम आपको अपना अध्यक्ष ही मानेंगे और कहेंगे, आप भले ही अपने को अध्यक्ष मत समझिये।" बैठक में सब सर्वाधिकार आचार्य जी को ही सौंप दिये। आचार्य जी ने महाशय भरतसिंह को समिति का मंत्री व श्री कपिलदेव शास्त्री को संगठन व प्रचारमंत्री नियुक्त किया। इन दोनों ने भी पूरे आन्दोलन के समय आचार्य जी के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर दिन-रात काम किया। समिति के अन्य सदस्यों में चौ० शिवराम, चौ० माडूसिंह, श्री जगदीशसिंह सिद्धान्ती, चौ० चांदराम और डॉ० मंगलसेन आदि भी थे।

समिति की ओर से जगह-जगह जलसे होने लगे। आचार्य जी के कारण आर्यसमाज का प्रत्येक व्यक्ति इस आन्दोलन में जुट गया। प्रत्येक जिला एक-एक आदमी को सौंप दिया। वहां पर प्रत्येक गतिविधि का संचालन उसी को सौंपा गया। गुड़गांव जिले में ब्र० योगानन्द की ड्यूटी लगाई गई थी। मिलीटरी गाड़ियों का भी इन्तजाम था। दूसरे तीसरे दिन कार्य की रिपोर्ट आचार्य जी को देनी पड़ती थी और आगे की योजना उनसे लेनी पड़ती थी। २८ सितम्बर के दिन संघर्ष समिति की ओर से 'हरयाणा बन्द' का कार्यक्रम रखा था। उससे पहले २२ सितम्बर को आचार्य जी ने रेवाड़ी पहुंचना था। सभी को वहां पहुंचकर आगे के लिये आदेश लेने का समाचार मिला। ब्र० योगानन्द के पास समिति की ओर से पीकप (पैटाडोर) गाड़ी थी। वह गुड़गांव पारकर जब रेवाड़ी की ओर जा रहे थे तो पता चला साहबी नदी में अचानक भयंकर बाढ़ आई है। रास्ते में पुलिस ने रोककर आगे जाने से मना किया किन्तु पहुंचना आवश्यक था। वे उन्हें अपना उद्देश्य बतला आगे बढ़े। आगे देखते हैं तो रात्रि में चन्द्रमा के प्रकाश में सर्वत्र अथाह जल ही जल दृष्टिगोचर हुआ। अनेक ट्रक पानी में रुके खड़े थे। बड़ा भयावह दृश्य था। रात्रि के ग्यारह बजे थे। अगले दिन प्रातः ५ बजे ही आचार्य जी ने यहां पहुंचना था। ड्राइवर श्री रामजीलाल (केरी) ने उस दिन बड़ा साहस दिखाया। चार-पांच फिट पानी में डूबी सड़क के दोनों ओर खड़े पेड़ों का अनुमान लगाकर शनैः-शनैः गाड़ी को पार लगा ही दिया। भगवान् की कृपा से नदी पार कर ही गये।

२४ सितम्बर के 'हरयाणा बन्द' की पूरी तैयारी कीगई थी। सभी जगह यातायात बन्द था। आगरा, मथुरा से आनेवाला जी०टी० रोड होडल, बनचारी और पलवल आदि अनेकस्थानों पर रोक दिया गया था। उधर अम्बाला, दिल्ली जी०टी० रोड भी अवरुद्ध था। हरयाणाभर में सभी जगह रेल-गाड़ियां भी रोकी गईं। सभी शहरों के बाजार पूर्णतया बन्द रहे। बन्द की अभूतपूर्व सफलता के कारण हरयाणा के इस जन-आन्दोलन में प्राण आगये। साथ ही श्री चौ० उदयसिंह मान के अनशन को भी २५ दिन पूरे होचुके थे। उनका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिर रहा था। इससे पूरे हरयाणा में चिन्ता और रोष व्याप्त था।

इसी बीच प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने पत्र लिखकर श्री उदयसिंह मान से अनशन खोलने का आग्रह किया किन्तु उन्होंने अनशन चालू रखने का अपना निश्चय दोहराया। अब जगह-जगह उन के समर्थन में अनशन होने लगे। सर्वदलीय संघर्षसमिति के अध्यक्ष एवं आन्दोलन के प्रशासक (डिक्टेटर) श्री आचार्य भगवान्देव ने श्री मान के सिवाय अन्य किसी द्वारा अनशन किये जाने पर पाबन्दी लगादी परन्तु विद्यार्थियों में तो इतना जोश था कि वे उसके बावजूद भी क्रमिक भूख हड़ताल पर बैठने लगे। उनके उत्साह को देखते हुये आचार्य जी ने उनको अनशन की छूट देदी परन्तु आमरण अनशन नहीं, केवल क्रमिक अनशन करने की आज्ञा प्रदान की। अत: हरयाणा में कालेज के विद्यार्थियों में भारी उत्साह पैदा होगया। श्री मान के दर्शन करने आनेवाली भीड़ को नियंत्रित करना कठिन होने लगा। तेजी से गिरते हुये उनके स्वास्थ्य को देखकर सरकार ने उनको हिरासत में लेकर हस्पताल में भेज दिया। वहां पुलिस का सख्त पहरा लगा दिया। इससे लोगों में और अधिक रोष पैदा होगया।

२ अक्टूबर १९६९ को रोहतक में अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के अध्यक्ष श्री बृजनारायण बृजेश की अध्यक्षता में फिर एक विराट् सम्मेलन हुआ। सम्मेलन को भारतीय क्रान्ति-दल के महामंत्री श्री पं० प्रकाशवीर शास्त्री, दिल्ली प्रदेश हिन्दूमहासभा के अध्यक्ष प्रो० रामसिंह, श्री जगदेवसिंह सिद्धान्ती और आचार्य भगवान्देव जी तथा चौ० देवीलाल जी ने सम्बोधित किया। इस सम्मेलन में सर्वसम्मति से हरयाणा का संकल्प फिर दोहराया गया। आचार्य जी ने जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों का आह्वान करते हुये कहा—आप सबको विधानसभा और लोकसभा से तुरन्त इस्तीफे देकर आन्दोलन को बल प्रदान करना चाहिये। इस पर सम्मेलन में उपस्थित चौ० माडूसिंह जी आदि अनेक विधायकों तथा चौ०

रणधीरसिंह आदि सांसदों ने अपने त्याग-पत्र आचार्य जी को सौंपने की घोषणा की। इससे उपस्थित जनता का उत्साह दुगुना होगया। अब हरयाणा का यह आन्दोलन पंजाब से अधिक प्रभावोत्पादक बन गया।

इस सम्मेलन में आन्दोलन के डिक्टेटर श्री आचार्य भगवान्देव ने केन्द्रीयमंत्री सरदार स्वर्णसिंह और बाबू जगजीवनराम को मध्यस्थ मानने से इन्कार करने की घोषणा करते हुए कहा कि हरयाणा के लोग ऐसा अनुभव करते हैं कि सरदार स्वर्णसिंह भी एक पक्ष है क्योंकि वे पंजाब के अनशनकारी नेता श्री दर्शनसिंह फेरुमान से मिलकर उन्हें अनशन चालू रखने के लिये कहते रहे हैं। अतः चण्डीगढ़ के प्रश्न पर श्री स्वर्णसिंह से कोई बातचीत नहीं कीजायेगी। इसकी आवश्यकता इसलिये पड़ी कि दोनों ओर से प्रबल आन्दोलनात्मक कार्यवाहियां होते रहने के कारण प्रधानमंत्री ने उक्त दोनों मंत्रियों को मध्यस्थता करने के लिये प्रस्तावित किया था। हरयाणा सर्वदलीय संघर्षसमिति के अध्यक्ष ने यह भी कहा कि श्री जगजीवनराम कई बार यह कह चुके हैं—"हरयाणा अपनी राजधानी बनाले और उसको इसके लिये मुआवजा देदिया जायेगा।" आपने कहा चण्डीगढ़ के प्रश्न पर मध्यस्थता का तो प्रश्न ही नहीं उठता। शाह आयोग चण्डीगढ़ को हरयाणा में मिलाने की सिफारिश कर चुका है। वह इसे मिलना ही चाहिये। वह इसे अवश्य मिलेगा। यदि ऐसा नहीं होता है तो हरयाणा हर बलिदान के लिये तैयार रहेगा।

हरयाणा और पंजाब दोनों ही ओर से केन्द्र पर दबाव डालने के प्रयास तीव्रतर होते जारहे थे। केन्द्रीयसरकार भी इस समस्या के समाधान के लिये चिन्तित थी। इधर चौ० उदयसिंह मान और उधर श्री दर्शनसिंह फेरुमान की हालत तीव्रगति से खराब होरही थी। श्री मान साहब की अवस्था तो इतनी शोचनीय थी कि उनको कभी भी कुछ भी होसकता था। उनको पुलिस के पहरे में हस्पताल में रखा जारहा था। वहां हजारों लोग प्रतिदिन उनके दर्शन करने पहुंच रहे थे। ऐसी स्थिति में प्रधानमंत्री ने एक विशेष सन्देशवाहक रोहतक भेजकर उनसे अनशन समाप्त करने का आग्रह किया। इधर हरयाणा के मुख्यमंत्री ने भी मान साहब से अनशन खोलने की अपील की। उन्होंने तो यहां तक कहा कि—"आपने जिस उद्देश्य से व्रत रखा था वह जन-जागृति का काम पूरा होगया है। अब चण्डीगढ़ लेना हमारा काम है। आप हम पर विश्वास रखिये और अनशन खोल दीजिये।" इन दोनों आग्रहों पर श्री मान साहब ने अनशन समाप्त करने की

इच्छा प्रकट की। संघर्षसमिति ने भी यही उचित समझा और सम्मान के साथ उनका अनशन समाप्त कराया गया। आचार्य जी उस दिन वहां उपस्थित नहीं थे।

उधर दर्शनसिंह फेरुमान ने अपना अनशन चालू रखा। फलत: पंजाब का पक्ष फिर एक बार भारी पड़ने लगा। यह देख आचार्य जी ने हरयाणा की ओर से दिल्ली में एक विशाल प्रदर्शन करने की घोषणा की। संघर्षसमिति ने १७ नवम्बर का दिन प्रदर्शन के लिये निश्चित किया।

इसी बीच केन्द्रीयसरकार ने २२ अक्तूबर को पंजाब, हरयाणा के नेताओं को विवाद सुलझाने के लिए वार्ता के लिये दिल्ली बुलाया। इस बातचीत के लिये हरयाणा के १५ तथा पंजाब के १० नेताओं को आमन्त्रित किया गया। गृहमंत्री श्री यशवन्तराव बलवन्तराव चह्वाण ने दोनों ओर से नेताओं से दो-तीन दिन तक लगातार बातें कीं। हरयाणा के शिष्टमण्डल ने पूज्य आचार्य जी के नेतृत्व में प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गान्धी से भी भेंट की। उन्होंने बड़े ही सौहार्दपूर्ण वातावरण में बात की और आश्वासन दिया कि पंजाब के दबाव वा सन्त फतहसिंह की धमकियों में आकर हम कोई गलत निर्णय नहीं करेंगे। दूसरी ओर श्री चह्वाण भी बाचचीत कर रहे थे। इसी समय सन्त फतेहसिंह ने आत्मदाह करने की घोषणा करदी। वार्ता विफल होगई और कोई हल नहीं निकल सका। क्योंकि दोनों ही पक्ष अपने-अपने रुख पर दृढ़ थे।

इस परिस्थिति पर विचार करने के लिये रोहतक में सर्वदलीय संघर्ष समिति की विशेष मीटिंग बुलाई गई। उसके बाद एक सभा हुई जिसमें सैकड़ों ने जवाबी आत्मदाह के लिये अपने आपको प्रस्तुत किया। उस समय का उत्साह वर्णनातीत है। लगता था हरयाणा के अधिकारों के लिये मर-मिटने की होड़ लग गई थी। कोई स्वयं आकर मंच से अपने आत्मदाह की घोषणा करता था तो कोई अपना नाम लिखकर भेजकर अपने आपको इस कार्य के लिये तैयार बतला रहा था। उस दिन जनता में जो सामूहिक उत्साह देखा वैसा अन्यत्र देखने में नहीं आया। यहीं आचार्य जी ने १७ नवम्बर के प्रदर्शन की तैयारियों का भी ब्यौरा दिया और उस दिन भारी संख्या में दिल्ली पहुंचने का आह्वान किया। इन्होंने कहा उस दिन कम से कम दस लाख आदमी पहुंचने चाहियें। लोगों ने हाथ उठाकर उनकी बात का समर्थन किया। यहां से जाकर प्रत्येक आदमी अपने तरीके से प्रदर्शन के प्रचार और तैयारियों में जुट गया।

१७ नवम्बर का विराट् प्रदर्शन

१७ नवम्बर १९६९ का दिन हरयाणा तथा दिल्ली के इतिहास में अभूतपूर्व दिन था। इस दिन वीरप्रसू हरयाणाभूमि के लाखों लोगों ने अपनी शक्ति और एकता का प्रदर्शन किया। दिल्ली के इतिहास में इससे बड़ा प्रदर्शन पहले कभी नहीं हुआ था। इस प्रदर्शन की सफलता के पीछे युवाशक्ति के हृदयसम्राट् आर्यसमाज एवं हरयाणा के सर्वाधिक प्रभावशाली मूर्धन्यनेता आचार्य भगवान्देव जी की तपस्या और घोर परिश्रम था। उनकी संगठनशक्ति का ही यह परिणाम था कि उमड़ते जन-सागर को देखकर दिल्लीवासियों ने दांतों तले अंगुली दबाली। शहर के हजारों लोग इनके दर्शन के लिये जलूस के आगे दौड़ते और इनको वहां न देख पूछते फिरते कि आचार्य जी महाराज कहां हैं ? यही हाल संवाददाताओं और प्रेसफोटोग्राफरों का भी था। ऐसे अवसरों पर कुछ न करनेवाले लोग भी आगे आकर आत्मप्रदर्शन का प्रयास करते हैं और चाहते हैं किसी तरह हमारा नाम भी समाचारपत्रों में आजाये किन्तु धन्य हैं आचार्यप्रवर! जिनके अथक परिश्रम से यह सब हुआ और वे इस विशाल जलूस के बीच में कहीं पैदल ही चल रहे थे। जबकि हरयाणा के कई अहंमन्य नेता, जिन्होंने कुछ भी नहीं किया और न ही जिनमें कुछ करने का सामर्थ्य था, वे खुली जीप में आगे-आगे चलकर अपने आपको सर्वेसर्वा सिद्ध करने और हावभाव से कृत्रिम गरिमा टपकाने के प्रयास में थे परन्तु अखबारवालों का क्या करें, वे तो वास्तविकता को जानते थे। वे जलूस के आगे से हटकर पीछे आचार्य जी की खोज में दौड़ रहे थे। आचार्य जी उसी प्रकार पैदल ही चलते जारहे थे। इसी बीच सुप्रीमकोर्ट के पास हरयाणा के कुछ नेता गाड़ी लेकर आये और आचार्य जी को कहने लगे आप चलिये प्रधानमंत्री से मिलना है। सबकुछ करके भी कुछ न पाने की यह इच्छा कितनी ऊंची स्थिति की परिचायक है, यह पाठक अनुमान कर सकते हैं। संसार एवं प्रकृति का यह नियम है कि जो व्यक्ति जिस वस्तु के पीछे नहीं दौड़ता वह उसके पीछे दौड़ती है। सम्भवतः इसीकारण प्रतिष्ठा और सम्मान आचार्य जी की चरणवन्दाना करते थे।

इस प्रदर्शन के सम्बन्ध में अगले दिन प्रमुख दैनिक समाचारपत्रों में जो समाचार निकले उनसे यह निष्कर्ष निकला कि दिल्ली के इतिहास में इतना विशाल, शान्तिपूर्ण और अनुशासित प्रदर्शन पहले कभी नहीं हुआ था। पीली, नीली और केसरिया पगड़ियां पहने पुरुष और सिर पर चुण्डा तथा नीचे घाघरा पहने स्त्रियों के— **''चण्डीगढ़ हमारा है, आधा नहीं, सारा का सारा है''** आदि

गीतों ने दिल्ली का दिल जीत लिया। ऐसा लग रहा था मानो सारा हरयाणा एकत्र हो दिल्ली में उमड़ पड़ा है। इस प्रदर्शन का आचार्य जी के बाद सर्वाधिक श्रेय चौ० देवीलाल जी को जाता है। वे भी दो तीन दिन लगातार सोये नहीं। हरयाणा के दूर से आनेवाले लोगों के लिये दिल्ली देहात में व्यवस्था करने का भार भी उन्हीं पर था। उन्होंने चौ० हीरासिंह जी से मिलकर दिल्ली के बोर्डर के गांवों में उन लोगों के ठहरने और भोजन की व्यवस्था का पूरा प्रबन्ध किया। इस कार्य में चौ० हीरासिंह जी ने विशेष सहयोग दिया। लाखों लोगों के ठहरने की व्यवस्था इन्होंने गांवों में करवाई। इन लोगों की हरयाणा के साथ स्वाभाविक सहानुभूति थी। फिर चौ० हीरासिंह जी तो आचार्य जी के बहुत पुराने सहयोगी थे। इस प्रदर्शन के लिए अन्य लोगों में जिन्होंने बहुत अधिक काम किया—श्री चौ० सुल्तानसिंह भू०पू० सदस्य राज्यसभा, चौ० माडूसिंह, महाशय भरतसिंह तथा श्री कपिलदेव शास्त्री का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इस पूरे आन्दोलन को चलाने और प्रदर्शन के लिये दयानन्दमठ रोहतक को केन्द्र बनाया गया था। चौधरी देवीलाल जी उन दिनों यहीं जमे हुये थे। वे आचार्य जी के सर्वाधिक सहयोगी और मुख्यपरामर्शदाता थे। प्रदर्शन के लिये हजारों गाड़ियों व ट्रकों का इन्तजाम भी उन्होंने ही किया था। सेठ घनश्यामदास गुप्त का योगदान भी सराहनीय था। चौ० बंसीलाल व प्रो० शेरसिंह की सहानुभूति तो इसके साथ थी ही।

इस प्रदर्शन का जलूस प्रात:काल दस बजे से लालकिले के पीछे से प्रारम्भ होकर सायंकाल ५ बजे तक वोट क्लब की ओर बढ़ता रहा। वोट क्लब पर ५ बजे सभा समाप्त होने तक भी लोग लाल किले से चलने की प्रतीक्षा में थे। इसी से अनुमान लगाया जासकता है कितने लोग इस प्रदर्शन में थे। प्रमुख दैनिक समाचरपत्रों में ५ से १० लाख तक की संख्या लिखी गई। इस प्रदर्शन का प्रभाव इतना अधिक पड़ा कि सन्त फतेहसिंह की आत्मदाह की धमकी फीकी पड़ गई और आत्मदाह के लिये बने कुण्ड सूखने लगे। सन्त की पोल खुल गई। केन्द्र पर दबाव डालने के लिये उनका यह अन्तिम हथियार था वह भी असफल होगया परन्तु दोनों ओर से दबाव की कार्यवाहियां चलती रहीं। हरयाणा में इससे पहले इतनी अधिक एकता कभी नहीं हुई। श्री आचार्य जी के नेतृत्व में सम्पूर्ण हरयाणा एकजुट था। इसी कारण केन्द्र भी पंजाब के दबाव के आगे नहीं झुका।

उधर पंजाब में विश्वसिक्खसम्मेलन ने चण्डीगढ़ पंजाब में मिलाने का प्रस्ताव पास किया। जवाबी कार्यवाही के रूप में आचार्य जी ने भी जगह-जगह

बड़े-बड़े सम्मेलन रखे। पूरे दिसम्बर मास में यह कार्यक्रम चलता रहा। १६ जनवरी के दिन फिर 'हरयाणा बन्द' का निश्चय हुआ। संघर्ष के डिक्टेटर आचार्य जी ने जब इसकी घोषणा की तो समाचारपत्रों ने उसको बड़ी प्रमुखता से प्रसारित किया। इससे केन्द्रसरकार समझ गई कि हरयाणावालों में लम्बी लड़ाई लड़ने का सामर्थ्य है और सूझबूझ भी है। इस आन्दोलन की यह विशेषता थी कि आचार्य जी ने इसको कभी शिथिल नहीं होने दिया। जबकि पंजाब का आन्दोलन श्री दर्शनसिंह फेरुमान की शहादत के बावजूद बीच-बीच में ठण्डा पड़ जाता था। जब केन्द्र ने यह अनुभव कर लिया कि दोनों ओर का संघर्ष लम्बा चलेगा तो जनवरी के पहले सप्ताह में ही हरयाणा और पंजाब के नेताओं को संघर्ष टालने और बातचीत के लिये दिल्ली बुलाया गया।

दिल्ली में दोनों पक्षों से बातचीत कर सरकार ने निर्णय किया कि चण्डीगढ़ पंजाब को देदिया जाये और उसके बदले हरयाणा को मुआवजा मिले तथा फाजिल्का और अबोहर के हिन्दी-भाषी क्षेत्र हरयाणा में मिला दिये जायें। इस निर्णय से हरयाणा को बड़ा लाभ हुआ। आन्दोलन के प्रारम्भ से ही हरयाणा के सब नेता यह जानते थे कि चण्डीगढ़ का मिलना कठिन है और वह मिल जाये तो भी हरयाणा के लिये कोई अधिक लाभदायक नहीं रहेगा। यदि हरयाणा की ओर से इतना प्रबल आन्दोलन न होता तो चण्डीगढ़ तो जाता ही, साथ में न तो मुआवजा मिलता और न ही फाजिल्का और अबोहर हरयाणा को देने की बात आती। इन क्षेत्रों का मिलना हरयाणा के लिये बहुत बड़ी उपलब्धि थी। इस निर्णय पर पंजाब में तीव्र प्रतिक्रिया हुई और गुरनामसिंह मन्त्रिमण्डल को कुछ समय बाद जाना पड़ा। हरयाणा में भी चौ० रिजकराम आदि ने लोगों को गुमराह कर अपनी भविष्य की राजनीति का मार्ग प्रशस्त करने का असफल प्रयास किया। निर्णय हुआ किन्तु उस समय की परिस्थितियों के अनुसार उसे लागू करना ठीक नहीं समझा गया। तब से टला हुआ वह अधर में ही लटक रहा है। नवम्बर १९८२ में पुनः आन्दोलन चला किन्तु निर्णय लागू नहीं होसका।

षष्ठ अध्याय

सोवियत रूस-यात्रा

सितम्बर २७ से ४ अक्तूबर १९६८ ई० तक दोशाम्बे (सोवियत रूस) में यूनेस्को के सहयोग से कुषाणकाल के सम्बन्ध में पुरातत्त्व इतिहास और कलाविषयक एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन (International Conference on the Archeology history and Arts of Central Asia in the Kushan period) होरहा था। इस सम्मेलन के लिये डॉ० लोकेशचन्द्र अध्यक्ष सरस्वती विहार हौजखास दिल्ली को निमंत्रण मिला। एक दिन श्री आचार्य जी उनसे मिलने उनके हौजखास स्थित निवास पर गये थे। उन्होंने आचार्य जी से कहा कि मैं रूस जारहा हूं। वहां विश्व इतिहास सम्मेलन में मैं मथुरा से प्राप्त एक कुषाणकालीन शिलालेख पर अपना शोध-पत्र प्रस्तुत करूंगा परन्तु मेरे सामने एक कठिनाई है और वह यह है कि उस शिलालेख पर एक चिह्न है जिसका पता नहीं चल रहा कि यह किसका है वा किस उद्‌देश्य से अंकित किया गया है? डॉ० साहब ने वह चिह्न बनाकर दिखाया तो आचार्य जी ने कहा कि यह चिह्न तो कुषाणवंश के राजा वासुदेव का है जो उसके सिक्कों पर भी मिलता है। डॉ० साहब ने प्रमाण जानने की उत्कण्ठा प्रकट की तो आचार्य जी ने कहा— यदि आप प्रमाण देखना चाहते हैं तो हमारे यहां पुरातत्त्व संग्रहालय में पधारियेगा, आपको प्रमाण भी मिल जायेगा। तदनुसार वे ३० अगस्त १९६८ ई० को गुरुकुल झज्जर पधारे और उन्होंने कुषाणकालीन पुरातत्त्वीय सामग्री को विशेष रुचि से देखा। गुरुकुल झज्जर संग्रहालय में संगृहीत कुषाणराजाओं के लगभग पांच हजार सिक्के देखकर डॉ० लोकेशचन्द्र जी ने बहुत आश्चर्य प्रकट किया और पूछा आपने यह अद्‌भुतसंग्रह कहां से और कैसे एकत्रित किया? साथ ही उन्होंने जब यहां कुषणावंश के तीन प्रसिद्ध राजा कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव प्रथम व द्वितीय तथा कनिष्क तृतीय के मुद्रा-सांचे (Coin-Moulds) देखे तो उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उन्होंने कहा—"आचार्य जी आपके पास तो कुषाण-वंश की ऐसी सामग्री है जो संसारभर में कहीं नहीं मिलेगी।"

श्री डॉ० लोकेशचन्द्र जी ने दिल्ली लौटकर इस सम्मेलन के प्रबन्धकों को पत्र लिखा-"आचार्य भगवान्‌देव जी के पास बहुत ही दुर्लभ, नई और महत्त्वपूर्ण सामग्री है। यदि आप उन्हें नहीं बुलाते तो आपका यह सम्मेलन अधूरा रह

जायेगा।'' यहां यह लिखना उचित होगा कि अपने देश में किसी भी नये महत्त्वपूर्ण कार्य को उतना महत्त्व नहीं दिया जाता जितना कि दिया जाना चाहिये। यही कारण है कि भारत में बहुत कम व्यक्ति किसी नये कार्य को प्रारम्भ करने का साहस कर पाते हैं किन्तु उन्नत देशों में इससे कुछ दूसरी ही स्थिति है। वहां का शासन और समाज दोनों ही किसी भी ऐसे कार्य को पूर्ण सहयोग देकर प्रोत्साहन देते हैं जिससे राष्ट्र का गौरव बढ़ता हो। वे ऐसे कार्य के करनेवाले का भी पूरा सम्मान करते हैं। उनकी यह प्रवृत्ति अपने ही कुछ गिने-चुने व्यक्तियों तक सीमित हो, ऐसा भी नहीं है। प्रत्युत दूसरे देश में भी यदि वे ऐसे किसी व्यक्ति को देखते हैं तो उसका भी बहुत आदर करते हैं। इसीलिये जब डॉ० लोकेशचन्द्र जी के पत्र से उनको आचार्य जी के सम्बन्ध में पता चला कि इन्होंने कुषाणों से सम्बद्ध बहुत महत्त्वपूर्ण पुरातत्त्वीय सामग्री एकत्रित की है तो उन्होंने वहीं सोवियत रूस से तार व पत्र भेजा-''आचार्य जी! आप कुषाण इतिहास पर आयोजित इस सम्मेलन में अवश्य पहुंचिये और अपने अनुसंधान से लाभान्वित कीजिये। आपका आने-जाने का वायुयान (हवाई जहाज) का किराया भी हम ही देंगे।'' यह निमन्त्रणपत्र १७ सितम्बर १९६८ को मिला। सम्मेलन २७ सितम्बर से प्रारम्भ होना था। पारपत्र तथा विदेशी-मुद्रा आदि की औपचारिकताओं के लिये यह समय अत्यल्प था किन्तु अनेक सहयोगियों के कारण वह सब यथासमय पूरा होगया।

२५ सितम्बर १९६८ ई० को प्रात: श्री आचार्य जी व डॉ० लोकेशचन्द्र जी ने पालम हवाई अड्डे से दोशाम्बे (रूस) के लिये प्रस्थान किया। उसी दिन १२ बजे ये अफगानिस्तान के काबुल हवाई अड्डे पर उतरे। यहां एक दिन मित्रोपोल नामक होटल में ठहरे। यहां ये कई हिन्दुओं से मिले और एक हिन्दूमन्दिर में भी गये। वहां पता चला कि काबुल में लगभग बीस-पच्चीस हजार हिन्दू बसते हैं। वे अधिकांशत: कपड़े का व्यापार करते हैं। उनकी आर्थिक हालत अच्छी है किन्तु समाज में उनकी स्थिति दयनीय है। बहुधा हिन्दूकन्याओं से वहां बलात् विवाह करने की घटनायें भी होती रहती हैं। अफगानिस्तान में बहुत वर्ष पहले पीर रत्ननाथ नामक एक साधु गया था। उसने हिन्दुओं को उत्साहित किया। उनमें प्रचार कार्य भी किया। उसी के कारण वहां आज भी हिन्दू हैं। इस साधु की काबुल में अनेक जगह पर समाधियां बना रखी हैं और हिन्दू लोग वहां उनकी पूजा भी करते हैं। काबुल हवाई अड्डे पर अनेक वायुयानों पर **'आर्याना एयरवेज'** लिखा था। एक होटल का नाम भी **'आर्याना होटल'** था जहां रूस से

वापस लौटते हुए आचार्य जी ठहरे। अफगानिस्तान और ईरान के लोग अपने आपको आर्यों का वंशज मानते हैं।

अगले दिन काबुल से रूसी वायुयान द्वारा चलकर ताशकन्द होते हुये आप दोशाम्बे पहुंचे। यहां २७ सितम्बर से ४ अक्तूबर तक उपर्युक्त सम्मेलन चला। १ अक्तूबर को श्री आचार्य जी ने सम्मेलन में अपना शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किया। विषय था--''Last Struggle of the Kushana's in India'' (कुषाणों का भारत में अन्तिम संघर्ष)। क्योंकि आचार्य जी का शोध-पत्र पुरातत्त्वीय गवेषणाओं पर आधारित और प्रमाणसम्मत था अत: उसका बहुत अच्छा प्रभाव रहा। देश विदेश के अनेक प्रख्यात विद्वानों ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। अनेक ने भारत आकर आचार्य जी द्वारा संस्थापित संग्रहालय देखने की इच्छा प्रकट की। विदेशी विद्वानों के लिये यह बड़े आश्चर्य की बात थी कि एक महात्मा वा साधु इस तरह की गंभीर खोज कर रहा है। क्योंकि बाह्य देशों में हमारे देश के साधु-संन्यासियों की जो ख्याति है वह बहुत विकृत है अथवा आध्यात्मिकता तक ही सीमित है। पहली बार वे एक श्वेतवस्त्रधारी महात्मा को इतिहास और पुरातत्त्वीय प्रमाणों के आधार पर कुषाण इतिहास जैसे जटिल और मतभेदपूर्ण विषय पर बोलता हुआ सुन रहे थे। यह वास्तव में उनके लिये ही नहीं, भारत से जानेवाले विद्वानों के लिए भी आश्चर्य की वात थी। यद्यपि भारत से जानेवाले इतिहास के सभी विद्वानों ने पहले से ही आचार्य जी का नाम तो सुन रखा था और अधिकांश उनके कार्य से भी परिचित थे; परन्तु उनमें से दो-तीन को छोड़कर आपको देखा किसी ने नहीं था।

श्री आचार्य जी रूस में भी अपनी उसी वेशभूषा में गये थे जिसमें वे यहां रहते थे—एक कटिवस्त्र, ऊपर एक चद्दर और सर्वथा नंगे पैर, सिर पर लम्बी चोटी। भोजन भी आपका विदेश में भी वही रहता था। नमक और मीठेरहित सर्वथा शाकाहारी। दूध और घी भी आप वहां भी गाय का ही प्रयोग करते रहे। दिनचर्या भी आपकी यहां जैसी ही रही। प्रात: नित्य संध्या तथा हवन करते रहे। इस सबको देखकर आप वहां आकर्षण का केन्द्र बने रहे। वहां अन्यों की अपेक्षा आदर भी आपको सर्वाधिक मिलता रहा। जिस समय आपको निमंत्रण मिला तो सम्मेलन के आयोजकों ने आपको अपने रहने और आवास का व्ययभार स्वयं वहन करने के लिये लिखा था किन्तु जब आप वहां होटल में किराया देने लगे तो उन्होंने लेने से निषेध किया और कहा आपका सम्पूर्ण व्यय हमारा शासन वहन करेगा। यह आचार्य जी के प्रभाव का ही फल था। वहां रहकर आपने रूस के दो

प्रदेश ताजकिस्तान और उजबेकिस्तान की संस्कृति और सभ्यता का विशेष रूप से अध्ययन किया जिसको आपने अपने यात्राविवरण "**रूस में पन्द्रह दिन**" में प्रकाशित किया था। इसमें आपने अपनी रूस-यात्रा का पूरा वृत्तान्त लिखा था। १० अक्तूबर १९६८ को आप रूस से भारत आगये।

रूस से वापस लौटने पर १५ अक्तूबर को नरेला में श्री आचार्य जी व डॉ० लोकेशचन्द्र जी के सम्मान में एक विशाल स्वागत समारोह का आयोजन हुआ। इसमें बोलते हुये श्री विद्याचरण शुक्ल (तत्कालीन गृहराज्यमंत्री भारतसरकार) ने इस बात पर प्रसन्नता व्यक्त की कि श्री आचार्य जी अपनी भारतीय और वह भी साधु की वेशभूषा में ही रूस में रहे। वास्तव में यह बात कहने और सुनने में बहुत सामान्य और हल्की प्रतीत होती है परन्तु इसका प्रभाव कितना गहरा होता है यह विचारने की बात है। यदि हम अपनी वेशभूषा में बाहर जाते हैं तो हमें और हमारे माध्यम से देश को सम्मान मिलता है। जिस व्यक्ति वा देश को अपनी राष्ट्रीयता, अपनी वेशभूषा और अपनी संस्कृति पर गर्व नहीं वह प्रगति भी नहीं कर सकेगा।

संन्यास-दीक्षा

आचार्य भगवान्देव जी का जीवन यौवनावस्था से एक सधे हुये संन्यासी का जीवन रहा था। अपने ब्रह्मचर्यजीवनकाल में भी वे एक कठोर तपस्वी, श्रद्धालु साधक, आध्यात्मिकता से ओतप्रोत व्रती संन्यासी के रूप में रहे थे। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि इन्होंने अपने जीवन में कभी दिखावा नहीं किया। आडम्बर इनके जीवन में कभी नहीं आया। मैंने अपने जीवन में अनेक साधु संन्यासी देखे हैं परन्तु आचार्य जी जैसी संन्यस्तवृत्ति का उनमें कोई भी देखने को नहीं मिला। जीवन के यौवनकाल में ही इन्होंने घर-बार छोड़ा, अथाह सम्पत्ति छोड़ी, सगे सम्बन्धी छोड़े, पत्नी छोड़ी और माता पिता को छोड़ा। एक बार ये सब छोड़े तो सदा के लिए ही छोड़ दिए। फिर कभी उधर मुंह करके नहीं देखा। यह कितना कठोर व्रत है। इसको अच्छी प्रकार केवल वे ही व्यक्ति समझ सकते हैं जिन्होंने जीवन में कोई व्रत रखने वा त्याग के मार्ग पर चलने का प्रयास किया है। अनेक साधु संन्यासी वा वानप्रस्थी ऐसे भी हैं जो मोह को नहीं छोड़ पाते और घर जा-जाकर अपने पारिवारिकजनों से मिलते रहते हैं। अनेक ऐसे हैं जो लोकलाज के कारण स्वयं तो घर नहीं जाते किन्तु घरवालों को अपने पास बुला लेते हैं और समाज का पैसा उन्हें देते रहते हैं। अनेक ऐसे हैं जो- "**पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा मया परित्यक्ता**" कहकर भी इनमें लिप्त रहते हैं। पुत्र और वित्त की

एषणा का त्याग तो कई लोग कर देते हैं किन्तु लोकैषणा छोड़ना बड़ा कठिन कार्य है। पाठकगण! आपने भी अनेक ऐसे संन्यासी देखे होंगे जो पद और नाम के लोभ में अपने काषायवस्त्रों की गरिमा को ताक पर रख राजनीतिक नेताओं के पीछे फिरते हैं। किसी राजनीतिक नेता से उसकी उच्च मानवीयता और ईमानदारी के कारण किसी का सम्बन्ध होना अलग बात है किन्तु मात्र किसी पदप्राप्ति के लिये इन लोगों का पिछलग्गू बनना तो संन्यासधर्म पर कलंक लगाना है। ऐसे संन्यासियों के कारण ही साधुओं के प्रति लोगों की अश्रद्धा होजाती है। ऐसे साधुओं से तो गृहस्थी अच्छे जो कम से कम अपने परिवार के प्रति तो उत्तरदाई और ईमानदार हैं किन्तु ऐसे संन्यासियों का क्या जो स्वयं अपनी आत्मा के प्रति भी ईमानदार नहीं।

आचार्य स्वामी ओमानन्द सरस्वती को ऐसी तुच्छ एषणायें जीवन में कभी छू भी नहीं पाई थीं। इनकी चिरन्तन तपस्या में ये सब इच्छायें भस्मसात् होगई थीं। किसी पारिवारिक वा सम्बन्धी की सहायता करना तो दूर रहा, इन्होंने तो कभी अपने लिये भी संस्था वा समाज का पैसा व्यय नहीं किया। मुझे अनेक वर्षों तक इनके निकट सांनिध्य में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। जितने लगावरहित निश्छल और निस्स्पृह ये थे उतना शायद ही दूसरा कोई होगा। कठोर तप, त्याग से परिपूर्ण, दुनियादारी से सर्वथा दूर आचार्य जी प्रारम्भ से ही संन्यासी जैसे थे किन्तु सन् १९७० ई० में इन्होंने विधिवत् दीक्षा लेकर संन्यासाश्रम में प्रवेश किया। इस दीक्षा को भी इन्होंने अपने स्वभावानुसार अत्यन्त गुप्त रखा। किसी प्रकार का कोई प्रचार नहीं, कोई दिखावा नहीं। शास्त्रविधिसम्मत विशुद्ध सात्त्विक ढंग से इनकी दीक्षा-विधि सम्पन्न हुई।

अप्रैल १९७० में आचार्य जी गुरुकुल घरौंडा के उत्सव पर गये। ब्रह्मचारी विरजानन्द दैवकरणि, ब्र० धर्मवीर (महाराष्ट्र) और ब्र० विक्रम (उड़ीसा) इनके साथ थे। आचार्य जी ने स्वामी भीष्म जी से घरौंडा से ही संस्कारविधि लेकर पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। यहां से आप आर्यसमाज बटाला के उत्सव पर पहुंचे। वहां आचार्य जी के दो व्याख्यान हुये किन्तु आपने वहां भोजन नहीं किया। वहां इन्होंने ब्र० धर्मवीर को एक ओर लेजाकर अपने कुछ वस्त्र दिये और समझा दिया कि जाओ दीनानगर जाकर स्वामी सर्वानन्द जी महाराज से प्रार्थना करो कि मुझे संन्यास दीक्षा देने की तैयारी करें परन्तु उसको यह भी आदेश दिया कि इस बात का पता ब्र० विरजानन्द आदि को भी नहीं चलना चाहिये। अब तीन दिन से

आचार्य जी ने भोजन नहीं किया तो चिरञ्जानन्द जी ने इनसे भोजन के लिये आग्रह किया किन्तु ये टाल गये और निराहार ही रहे। अपने कपड़े रंगने के लिए धर्मवीर जी के द्वारा दीनानगर भेज दिये। सायंकाल स्नान के समय कपड़े न मिलने पर चिरञ्जानन्द चिन्तित हुआ और दुकान से नये कपड़े खरीद लाया। आचार्य जी कहते रहे कि नये कपड़े मत खरीदना, कोई आवश्यकता नहीं है। चिरञ्जानन्द ने कहा लगता है दिन में बन्दर कपड़े उठा ले गये होंगे, इसीलिए कपड़े नहीं मिल रहे। तब भी आचार्य जी ने अपनी दीक्षा की बात गुप्त रखी। दयानन्दमठ दीनानगर में भी ४ अप्रैल १९७० को प्रातः ३ बजे पहुँचे जबकि उसी दिन प्रातःकाल दीक्षा लेनी थी। वहां जाकर भी ब्र० चिरञ्जानन्द जी आदि को तब तक पता नहीं चल पाया जब तक कि ये यज्ञवेदी पर नहीं पहुँचे। वहां पहुँचने पर ही ज्ञात होसका कि पिछले तीन-चार दिन से आचार्य जी जो कुछ कर रहे थे वह सब इस दीक्षा की सज्जा हेतु ही कर रहे थे कितने महान् हैं आचार्यप्रवर! अपने जीवन की इतनी बड़ी घटना को भी इन्होंने कितने सहज भाव से लिया। कहां वे लोग जो संन्यासप्रवेश को भी आडम्बरपूर्ण बनाकर उसको प्रचार का माध्यम बनाते हैं और कहां यह दीक्षा?

आचार्य जी महाराज ने अपना दीक्षागुरु भी एक ऐसे महात्मा को ही चुना जो सच्चे अर्थों में संन्यासी था। सब प्रकार की एषणाओं और महत्त्वाकांक्षाओं से सर्वथा दूर रहकर भगवद्भजन और गरीबजनों की सेवा ही जिसका व्रत था। हजारों रुपयों की महंगी से महंगी औषधियां भी जो गरीबों में मुफ्त बांटते रहते थे। केवल आर्यसमाजी ही नहीं अपितु सनातनी, सिक्ख और मुसलमान भी जिनको अपना श्रद्धेय मानते थे। ऐसे पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज को श्री आचार्य जी ने अपना दीक्षागुरु बनाया। उनके प्रति आचार्य जी की प्रारम्भ से ही अत्यधिक श्रद्धा थी।

स्वामी जी ने जब आचार्य जी को संन्यासाश्रम में दीक्षित किया तो दयानन्दमठ दीनानगर की यज्ञवेदी पर प्रतिदिन की भांति लगभग पचास व्यक्ति वहां उपस्थित थे। सम्पूर्णविधि-अनुसार दीक्षा देकर स्वामी जी महाराज ने आचार्य जी का परिवर्तित नाम घोषित किया और दण्डकमण्डलु लेकर वे अब आचार्य भगवान्देव से श्री स्वामी ओमानन्द सरस्वती होगये। स्वामी जी ने अपने दीक्षागुरु के चरण छूये। इस तरह एक तेजस्वी ब्रह्मचारी ने, जिसने जीवनभर अन्याय और अत्याचारों से टक्कर ली, संन्यासाश्रम में प्रवेश किया। इनका यह कार्य भी उतना ही आदर्श

था जितने कि जीवन के पहले अनेक कार्य।

संन्यासग्रहण कर दयानन्दमठ दीनानगर से चलकर आप कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में डॉक्टर बलदेवसिंह के पास होते हुये कन्या गुरुकुल नरेला आये। यहां सूबेदार धीरजसिंह जी व वैद्य कर्मवीर जी आदि व्यवस्थापकों तथा ब्रह्मचारिणियों को आचार्य जी को काषायवस्त्रों में देखकर कौतुहल होना स्वाभाविक था। कुछ तो रोने भी लगे कि स्वामी जी महाराज अब हमें छोड़कर चले जायेंगे। उन्होंने स्वामी जी से प्रार्थना भी की कि आप कृपया इस कार्यक्षेत्र को मत छोड़िए। आप तो पहले से ही संन्यासी रहे हैं। नरेला आर्यसमाज मन्दिर में भी स्थानीय आर्यों के साथ चित्र खिंचवाये। यहां से ६ अप्रैल १९७० को आप गुरुकुल झज्जर पधारे। वहां भी ऐसी ही प्रतिक्रिया हुई। वहां ब्रह्मचारियों ने स्वामी जी से बहुत अधिक आग्रह कर अपने साथ उनके चित्र खिंचवाये। वहां से ७ अप्रैल को स्वामी जी महाराज दयानन्दमठ रोहतक पहुंचे। यहां तीन युवक श्री इन्द्रदेव जी, श्री श्यामराव जी और श्री मनुदेव जी राजशाही ढंग से संन्यास दीक्षा ग्रहण कर रहे थे। यहां हजारों आर्यसमाजी उपस्थित थे। उन्होंने भी तभी आचार्य जी को संन्यासी-वेश में देखा।

महाशय कृष्ण जी के ज्येष्ठपुत्र प्रसिद्ध पत्रकार श्री वीरेन्द्र जी ने आचार्य भगवान्देव जी के संन्यास आश्रम में प्रवेश पर आर्यज्योति-पत्र में लिखा था—

"ऋषि दयानन्द से लेकर आज तक आर्यसमाज ने कई बड़े-बड़े वीतराग संन्यासी पैदा किये हैं जिनके कारण हमें कई नई-नई प्रेरणायें और नया उत्साह मिलता रहा है। उसी पंक्ति में आर्यसमाज के प्रसिद्ध और त्यागी नेता आचार्य भगवान्देव जी भी आ खड़े हुए हैं। वैसे तो उनका सारा जीवन ही किसी संन्यासी से कम न था। उन्होंने अपना सर्वस्व आर्यसमाज के लिए अर्पण कर रखा था। हरयाणा का एक-एक गांव उनकी गतिविधियों का साक्षी है। परन्तु आज ४ अप्रैल को उन्होंने दयानन्दमठ दीनानगर में, श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज से विधिवत् संन्यास ले लिया है और उनका नाम अब आचार्य भगवान्देव से, स्वामी ओमानन्द होगया है। आर्यसमाज के वीतराग संन्यासियों की श्रेणी में एक और नये त्यागी और तपस्वी महात्मा के प्रवेश से आर्यसमाज को निश्चय ही एक नई शक्ति और नया प्रोत्साहन मिलेगा। इस समय तक आचार्य भगवान्देव जी का सम्बन्ध आर्यसमाज के एक धड़े से रहा है। संन्यासी बनने के पश्चात् अब वह किसी एक धड़े के नहीं, समूचे आर्यसमाज की एक गौरवमयी सम्पत्ति बन गये हैं। आर्यसमाज

ने सदा ही अपने संन्यासियों पर गर्व किया है। उनके कारण समाज का सिर ऊँचा हुआ है। हमें इस बात का पूर्ण विश्वास है कि स्वामी ओमानन्द जी महाराज भी उन परम्पराओं को न केवल जीवित रखने, अपितु आगे बढ़ाने का यत्न करेंगे जो उन से पूर्व, श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज, स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज, महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज और स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ने कायम की थीं। उन से आर्यसमाज को नया जीवन और नई प्रेरणा मिली थी। श्री स्वामी ओमानन्द जी महाराज भी यदि चाहें तो अपने प्रयत्नों से आर्यसमाज के इतिहास में एक नया अध्याय आरम्भ कर सकते हैं।''

—वीरेन्द्र

जापान, फार्मोसा, थाईलैण्ड यात्रा

२८ अगस्त १९७० ई० को जापान से 'कोयासान यूनिवर्सिटी' के प्रोफेसर और 'बुद्धिस्ट म्यूजियम रिहोकान' के अध्यक्ष श्री डॉ० चिक्योयामा मोतो ने स्वामी ओमानन्द जी को हरयाणाप्रान्तीय पुरातत्त्वसंग्रहालय गुरुकुल झज्जर के अध्यक्ष के नाते निमन्त्रण भेजा—''आशा है आप हमारा निमन्त्रण स्वीकार करेंगे और हमारे म्यूजियम की बौद्धकला वस्तुओं को देखकर आप सन्तुष्ट होंगे। जापान में आपकी यात्रा आदि का व्यय सब हमारा म्यूजियम उठायेगा।'' यह निमन्त्रण डॉ० लोकेशचन्द्र जी सहित आप दोनों को मिला था। डॉ० लोकेशचन्द्र जी बृहत्तर भारत के महान् गवेषक हैं। उनके कन्धों पर राष्ट्रभाषा और लुप्तसंस्कृति का रूप निखारने और संवारने का गुरुतर भार है। वे सुदूर पूर्व के एशियाई देशों में भारत के अतीतसम्बन्धी इतिहास और संस्कृति का अनुसंधान कार्य भी करते हैं। बहुधा राजनीति में भी प्रवेश रखते हैं। अतः वे विदेश के अनेक निमन्त्रण छोड़ देते हैं किन्तु इस बार श्री स्वामी जी महाराज ने भी साथ जाना था इसलिये वे भी तैयार होगये।

स्वामी जी का जीवन भी व्यस्तताओं से परिपूर्ण रहता था। जापान से निमन्त्रण आने से पूर्व ही ये आर्यसमाज जम्मू को एक सप्ताह वेदकथा के लिये दे चुके थे। जम्मू जाने से पूर्व ये श्री बाबू जगन्नाथ जी बी०ए०, एल०एल०बी० को विदेशी-मुद्रा और वीजा आदि का कार्य सौंप गये। २ सितम्बर को उन्होंने स्वामी जी को ट्रंककाल कर जम्मू में सूचित किया कि आपको स्वयं आना होगा जिससे कार्य समय पर होसके। स्वामी जी ५ सितम्बर को वहां से आकर दिल्ली पहुंच गये। आप दोनों इतनी विदेशी-मुद्रा चाहते थे जिससे एक मास तक विदेश में रहा जासके। क्योंकि जापान से वापस लौटते हुये आप दोनों थाईलैण्ड, बाली और

जावा आदि उन कई द्वीपों में जाना चाहते थे जहां की धरती पर आज भी भारतीय संस्कृति पलती है और हिन्दुत्व की रक्षा होरही है। इन द्वीपों से ये कुछ ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व की सामग्री भी लाना चाहते थे किन्तु समस्या यह थी कि प्रयास करने पर भी १५ दिन की भी विदेशी-मुद्रा नहीं मिल पारही थी।

अन्ततोगत्वा श्री प्रो० शेरसिंह जी, श्री विद्याचरण जी शुक्ल, श्री रघुवीरसिंह जी शास्त्री तथा बाबू जगन्नाथ जी के प्रयत्न से १५ दिन तक विदेश में रहने योग्य विदेशी-मुद्रा मिल गई। इसे एक विडम्बना ही कहना चाहिये कि देश के लिये अमूल्यनिधि बटोरने के लिये जानेवालों के साथ भी विदेशीमुद्रा के मामले में वैसा ही व्यवहार किया जाता है जैसा कि एक सामान्य पर्यटक के साथ होता है।

११ सितम्बर १९७० को आप दोनों पालम हवाई अड्डे से एक वायुयान द्वारा जापान के लिये उड़े। बैंकाक (थाईदेश) और मनीला होते हुये जापान की राजधानी टोकियो पहुंच गये। टोकियो से ओसाका पहुंचे और वहां एक्सपो ७० विश्वमेला देखने गये। जापान की व्यापारिक राजधानी ओसाका में आयोजित इस विश्वमेले से जापान को जहां कला, उद्योग, तकनीकी और वैज्ञानिकक्षेत्र में बहुत कुछ सीखने और सिखाने का अवसर मिला वहां दूसरी ओर उसे करोड़ों येन का विशुद्ध लाभ भी हुआ। विदेशी-मुद्रा अर्जित करने का भी अवसर उसको मिला। ओसाका शहर जापान में टोकियो के बाद दूसरे नम्बर पर माना जाता है। इसकी सुन्दर चौड़ी सड़कें लाजवाब हैं। स्वच्छता यहां का गहना है। व्यापारिक केन्द्र होने के नाते यह शहर जापान के दूसरे बड़े नगरों से परिवहन एवं यातायात से भलीभांति जुड़ा है। यहां के पुराने ऐतिहासिक स्थानों में सबसे प्राचीन ओसाका दुर्ग है। यह १५८५ ई० में बना था।

यहां से आप क्योतो गये। वहां अनेक मन्दिरों में भी आप गये। वहां के "सान्जूशन गैंदो" मन्दिरों में तो ७००१ मूर्तियां हैं। ये मूर्तियां यद्यपि लकड़ी की हैं किन्तु इन पर स्वर्ण का पानी फेर दिया गया है। यहां स्थापित एक विशालकाय मूर्ति के एकादश मुख और एकसहस्र भुजायें दिखाई हैं। यह अवलोकितेश्वर की मूर्ति है। इसके पृष्ठभाग में इन्द्र, अग्नि और वायु हिन्दू देवताओं की मूर्तियां बनी हैं। यह पूरा मन्दिर लकड़ी का बना है। क्योतो के सभी मन्दिरों में अगरबत्ती तथा धूपबत्तियां जल रही थीं। इन मन्दिरों में कई मन्दिर ऐसे हैं जो ७०० वर्ष से १२०० वर्ष पुराने हैं। जापान में इनकी सुरक्षा का बहुत अधिक ध्यान रखा जाता है। अनेक मन्दिर ऐसे भी हैं जिन पर करोड़ों रुपया व्यय किया गया है। प्रायः सभी मन्दिरों

पर चीनी वास्तुकला का प्रभाव है। इसका कारण यह है कि बौद्धधर्म भारत से चलकर पहले चीन पहुंचा और वहां से जापान।

यहां एक विचित्र घटना घटी। १४ सितम्बर १९७० ई० को स्वामी जी शौच स्नानादि से निवृत्त हो, होटल के अपने कमरे में हवन करने बैठ गये। यहां प्रायः सभी होटलों में अग्नि प्रज्वलित करने का निषेध है। अनेक होटलों में ऐसे यन्त्र भी लगे होते हैं जो आग जलते ही प्रबन्धकों को सूचित कर देते हैं और आग को तुरन्त शांत कर दिया जाता है। यहां भी ऐसा ही हुआ। ज्यों ही स्वामी जी ने यज्ञाग्नि प्रज्वलित की यन्त्र ने सूचना दी कि अमुक कमरे में आग लगी है। बस फिर क्या था। होटल में खतरे का संकेत गूंज गया और वहां ठहरे सभी लोगों में भगदड़ मच गई। सब एक दूसरे से पहले भागने लगे। होटल के दुर्घटना द्वार (एमरजेन्सी डोर्स) खोल दिये गये। इतनी देर में एक घबराई और हड़बड़ाई हुई होटल की परिचारिका आई। उसने स्वामी जी वाले कमरे का द्वार खोला तथा हवनकुण्ड में जलती यज्ञाग्नि को देखकर बहुत घबरा गई। उसने हाथ तथा शारीरिकचेष्टाओं से इस प्रकार के भाव प्रकट किये मानो यह अग्नि पूरे होटल को स्वाहा कर देगी। स्वामी जी का हवनकुण्ड एक बड़े कटोरे में और कटोरा होटल की एक बड़ी प्लेट पर रखा था। अतः न तो कमरे का फर्श खराब होने की कोई बात थी और न ही आग लगने का कोई भय। स्वामी जी ने इस बात को संकेत द्वारा उसे समझाया भी कि यज्ञाग्नि कुण्ड से बाहर नहीं जायेगी किन्तु भाषा अज्ञान के कारण इन दोनों की स्थिति उस आदमी की-सी थी जो कहना तो बहुत कुछ चाहे, पर कह कुछ भी न सके। एक ओर होटलपरिचारिका को आग लग जाने का भय कंपित कर रहा था, दूसरी ओर स्वामी जी अपना स्पष्टीकरण देने के लिये विह्वल थे। अन्त में संकेतों द्वारा वह स्वामी जी के भाव समझ गई और शान्त होकर नीचे चली गई। तभी डॉ० लोकेशचन्द्र जी अपने दूसरे कमरे से स्नान कर वहां आपहुंचे और उन्होंने नीचे जाकर होटलवालों को वस्तुस्थिति से अवगत कराया जिससे उनके मनमें अन्यथाभाव न रहे। क्योतो में इन्होंने विश्वविद्यालय भी देखा। इस विश्वविद्यालय के प्रतीक्षाकक्ष में हाथ में पुस्तक व पूर्णघट लिये देवी की एक बड़ी प्रतिमा स्थापित कीगई थी। यहां बौद्धधर्म और संस्कृतविभाग में १८० उपस्नातक व स्नातक विद्यार्थी थे।

क्योतो से स्वामी जी नारा गये। यहां इन्होंने ७४५ ई० में स्थापित एक प्राचीन मन्दिर देखा। यहां भगवान् बुद्ध की एक विशाल प्रतिमा है। इस मूर्ति की लम्बाई

५३ फीट, चेहरे की लम्बाई १५ फीट चौड़ाई ९ फीट ५ इंच। इसकी एक-एक आंख ३ फीट ९ इंच की है। कान की लम्बाई ८ फीट ५ इंच, घुटनों की लम्बाई ८ फीट ५ इंच है। घुटनों की मोटाई ७ फीट तथा दोनों घुटनों के बीच का अन्तर ३ फीट ८ इंच है। अंगूठे की लम्बाई ५ फीट ३ इंच है। इसके घुंघराले बालों की संख्या ९६६ है। इस मूर्ति का कुल भार ५०० मीट्रिक टन है। यह तोजाई मन्दिर तथा नारा इस मूर्ति के कारण संसारभर में प्रसिद्ध हैं।

२२ सितम्बर को इनके मेजबानों ने इनके लिए प्रेसकान्फ्रेंस का प्रबन्ध किया। जहां प्रेसकान्फ्रेंस होरही थी वह एक समाचारपत्र का कार्यालय था। उसमें कई जगह संस्कृतमंत्र लिखे थे। अगले दिन जापानी दैनिक समाचारपत्रों में स्वामीजी व डॉ० लोकेशचन्द्र जी के चित्रों सहित इनके सुझावों को बड़ी प्रमुखता से छापा।

जापान के कई विश्वविद्यालयों में आप दोनों के अनेक भाषण हुये। वहां से महत्त्वपूर्ण सामग्री भी प्राप्त की और वहां के संग्रहालयों का अध्ययन किया। डॉ० लोकेशचन्द्र जी अपनी इस यात्रा में अपने साथ गंगाजल लेकर गये थे। स्वामी जी तथा उन्होंने थाईलेण्ड के कई मन्दिरों आदि से जब पैसे से प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ व सिक्के खरीदने चाहे तो वहां के लोगों ने इन्कार कर दिया किन्तु जब उन्हें गंगाजली दीगई तो ये वस्तुयें सहज में ही प्राप्त होगईं। थाईलैण्डवासी भारतीयों को देखकर भारी श्रद्धा प्रकट करते हैं और कहते हैं कि भारत जाकर गंगाजल अवश्य भेजना। इसका विस्तृत विवरण '**जापान यात्रा**' नामक पुस्तक में दिया है। यहां आप उस मन्दिर में भी गये जहां प्रसिद्ध क्रान्तिकारी सुभाषचन्द्र बोस के अवशेष रक्खे हुये थे।

जापान से ताइवान (फार्मोसा) गये। फार्मोसा में जिधर देखो लामाओं के रूप में चारों ओर बौद्धभिक्षु दिखाई पड़ते थे। वहां प्रत्येक व्यक्ति जीवन में एक बार भिक्षु अवश्य बनता है। २० वर्ष की आयु से पहले कोई भिक्षु नहीं बन सकता। सब भिक्षु सिर मुंडवाकर त्यागमय जीवन व्यतीत करते हैं। फार्मोसा सांस्कृतिक दृष्टि से छोटा भारत है। वहां के लोगों के मन में आज भी भारतीयों के लिये प्रेम और आदर है। इसी कारण उन्होंने आपको भी राजकीय अतिथि के रूप में ठहराया और स्वागत किया। वहां के अनेक संसद्सदस्यों और राजनयज्ञों ने आपको भोजन पर निमन्त्रित किया।

चार दिन ताईवान में व्यतीत कर और वहां की संस्कृति तथा जनजीवन का अध्ययन कर ४ अक्तूबर १९७० को आप थाईलैण्ड के लिये प्रस्थान कर गये।

एक घण्टा बाद हांगकांग पहुंच गये। यहां लगभग १० हजार भारतीय रहते हैं। दो हिन्दू मन्दिर और एक गुरुद्वारा भी है। यहां चीनी अधिक संख्या में हैं—लगभग तीस लाख। यहां से चीन की सीमा केवल ४५ मील है। ६ घण्टे हांगकांग में घूमने के उपरान्त आप थाई देश की राजधानी बैंकाक के लिये चले। वहां आपने अनेक हिन्दू व बौद्ध मन्दिरों की यात्रा की। इस देश में महात्मा बुद्ध का बहुत अधिक मान है। बुद्ध के अतिरिक्त अन्य भारतीय देवताओं की भी पूजा होती है। थाईलैण्ड के राजा अपने को विष्णु का अवतार मानते हैं। रामायण का यहां बहुत प्रचलन है। कला में हर जगह रामयण का बोलबाला है।

यहां महात्मा बुद्ध की एक स्वर्ण-मूर्ति साढे पांच टन की है। जब बर्मावाले इनकी सब मूर्तियां उठाकर लेगये तब इस भारी मूर्ति पर एक भिक्षु ने चतुराई से सीमेंट पुतवा दिया, जिससे यह बच गई। यहां आर्यसमाज मन्दिर भी है जिसकी स्थापना सन् १९५४ में हुई थी। यहां के राष्ट्रीय पुस्तकालय में ५८ हजार ग्रन्थ हस्तलिखित हैं जिसमें से ३६ हजार काले नीले कागज पर हैं। २२ सहस्र ताड़पत्र पर हैं। स्वामी जी और डॉ० लोकेशचन्द्र जी ने इस देश के अनेक स्थानों की यात्रा की और वहां के अनेक हस्तलिखित ग्रन्थ आदि प्राप्त कर २६ दिन की यह विदेश-यात्रा पूरी कर आप अपनी मातृभूमि वापस लौट आये।

आस्ट्रेलिया, सिंगापुर, बाली, इण्डोनेशिया यात्रा

जापान यात्रा से लौटने के कुछ मास बाद स्वामी जी अपनी तीसरी विदेश-यात्रा पर निकले आस्ट्रेलिया में हो रही 28th International Congress of Orientalists (प्राच्यविदों का २८वां अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन) का स्वामी जी को निमन्त्रण मिला किन्तु उन्होंने मार्गव्ययादि का प्रबन्ध कर सकने में असमर्थता प्रकट की। ऐसी अवस्था में स्वामी जी जैसे व्यक्ति के लिये, जो जीवन में एकान्ततः भिखारी था वा यूं कहना चाहिये कि जो अपने ऊपर निज के लिये मिला पैसा भी व्यय न कर संस्थाओं को देदेते थे, का जाना असम्भव-सा होगया। दूसरे स्वामी जी का यह स्वभाव था कि वे समाज से अपने लिये कुछ लेने की अपेक्षा समाज को कुछ देना अच्छा समझते थे। निरन्तर इसी प्रकार के चिन्तन ने उनके स्वभाव को भी इसी ढांचे में ढाल दिया। जब कभी वे संस्था वा समाज का द्रव्य अपने लिये व्यय होता देखते तो उन्हें बहुत अखरता था और वे दुःखी होजाते थे। इसलिये शुभचिन्तकों द्वारा बार-बार कहने पर भी उन्होंने आस्ट्रेलिया सम्मेलन में जाने से स्पष्ट निषेध कर दिया किन्तु केन्द्रीय शिक्षामंत्रालय इनके लिये मार्गव्यय

आदि की सब सुविधायें जुटाने के लिये तैयार होगया। अत: जाने में अब कोई कठिनाई नहीं रही।

३ जनवरी १९७१ को 'हरयाणा ग्रामीणपरिषद् दिल्ली' ने स्वामी जी की विदाई में हरयाणाभवन दिल्ली में एक समारोह का आयोजन किया। ४ जनवरी को इन्होंने आस्ट्रेलिया के लिये प्रस्थान किया। अगले दिन आप कैनबरा पहुंचे। वहां बर्टन होटल में ठहरने की व्यवस्था थी। इस बार भारतीय प्रतिनिधिमण्डल में डॉ० नूरूल हसन, डॉ० लोकेशचन्द्र और डॉ० श्रीमती कपिला वात्स्यायन आदि भी थे। इस सम्मेलन में स्वामी जी ने अपना शोध-लेख "Ancient Seals of Yaudheya Ripablic (यौधेयगण की प्राचीन मोहरें)" पढा। इस सम्मेलन में चीन को छोड़कर संसार के सभी प्रमुख देशों के विद्वान् भाग लेरहे थे।

१३ जनवरी १९७१ को अस्ट्रेलिया से चलकर स्वामी जी सिंगापुर पहुंचे। वहां आप आर्यसमाज मन्दिर में ठहरे। उस समय वहां आर्यसमाज के मन्त्री श्रीधर त्रिपाठी थे। उन्होंने स्वामी जी को कहा कि अभी कुछ दिन पहले हमने आपको निमन्त्रण भेजा था किन्तु स्वामी जी उस समय आस्ट्रेलिया में थे। यहां तीन-चार दिन स्वामी जी सत्संगों में प्रवचन करते रहे। एक सत्संग में तो ५०० व्यक्ति उपस्थित थे। स्वामी जी का बड़ा प्रभाव हुआ। वहां के लोग कम से कम एक मास तक रोकने का आग्रह कर रहे थे किन्तु स्वामी जी का पहले से ही कार्यक्रम निश्चित था और इण्डोनेशिया जाना था। उनको लौटते हुये आने का वचन देकर स्वामी जी इण्डोनेशिया पहुंच गये।

इण्डोनेशिया में आपका पूर्वपरिचित कोई नहीं था। वहां आप एक गुरुद्वारे में ठहरे। वहां आपने आधा घण्टा सत्संग में राम और कृष्ण के सम्बन्ध में व्याख्यान दिया। वहां सत्संग में पांच छ: व्यक्तियों को छोड़कर सब मुत्रे हिन्दू थे। वहां की राजधानी जकार्ता में स्वामी जी ठहरे। वहां मुसलमान बहुसंख्यक थे। चीनी और जापानियों के अतिरिक्त पांच छ: हजार भारतीय भी थे। अगले दिन भी स्वामी जी "अनुव्रतः पितुः पुत्रो......." मन्त्र पर एक घण्टा बोले। वहां हिन्दू ज्योतिषाचार्यों की बनाई वेधशाला भी इन्होंने देखी। इसी दिन २० जनवरी १९७० को जकार्ता के गान्धी स्कूल में—"विद्याविलासमनसो......" विषय पर स्वामी जी एक घण्टा बोले। स्कूल के प्रिंसिपल ने इनके व्याख्यान का अंग्रेजी अनुवाद किया। यहां अनेक पारिवारिक सत्संगों में भी स्वामी जी के उपदेश हुये। जहां कोई भी परिचित नहीं था वहां अब सैंकड़ों परिचित होगये और स्वामी जी से

जकार्ता के लिये अधिक समय देने का आग्रह करने लगे।

जकार्ता से आप इस देश के दूसरे प्रसिद्ध नगर जोग्यकर्ता पहुंचे। वहां श्री छबीलदास सिन्धी के यहां ठहरे। जिस समय डॉ० सुकर्णो को अपदस्थ किया तो सब भारतीय अपने परिवारों को भारत छोड़ गये थे। सुकर्णो की हिन्दू-धर्म और संस्कृति में गहरी रुचि थी। उसकी मां बाली द्वीप की एक हिन्दू देवी थी, जबकि पिता मुसलमान थे। योग्यकर्ता राज्य की विमानसेवा का नाम ''गरुड़'' है। यहां के मन्दिरों को देखने से ऐसा लगता है जैसे हम दक्षिणभारतीय मन्दिरों को देख रहे हैं। शिव, ब्रह्मा, विष्णु, गणेश, उमा, महेश्वर, कुबेर, बुद्ध, अवलोकितेश्वर तथा सरस्वती आदि की सभी मूर्तियां यहां विद्यमान हैं। प्राचीन समय में हिन्दू-धर्म का बोलबाला था परन्तु मूर्तियों की पूजा नहीं होती थी। अब पूजा होती है। अब भी बाली आदि द्वीपों में लोग मन्त्रपाठ कर भगवद् आराधना करते हैं।

स्वामी जी यहां से संसारप्रसिद्ध बोरोबुडुर बौद्धबिहार देखने गये। यह अत्यधिक विशाल है। कई मंजिला है। भगवान् बुद्ध की यहां हजारों मूर्तियां हैं।

यहां से चलकर २४ जनवरी १९७१ को स्वामी जी बाली द्वीप पहुंचे। स्वामी जी ने यहां एक मन्दिर में २५ रुपये दिये। यहां सभ्य व्यक्ति को आर्य कहा जाता है। यहां के मन्दिरों में सर्वत्र रामायण और महाभारत के कथानकों के आधार पर मूर्तियां अंकित हैं। डॉ० सुकार्णो ने यहां के हिन्दुओं को कभी मुसलमान बनाने का प्रयास नहीं किया। इसी कारण बाली में अब भी ८० प्रतिशत हिन्दू हैं। पहले यहां के हिन्दू अपने को हिन्दू नहीं कहते थे। क्योंकि भारत के हिन्दू मूर्तिपूजक थे और ये मूर्तिपूजा के विरुद्ध थे। इसी कारण ये अपने को हिन्दू नहीं लिखते थे। बाद में डॉ० लोकेशचन्द्र के पिता आचार्य डॉ० रघुवीर जी ने वहां जाकर इनको बहुत समझाया तो ये अपने को हिन्दू लिखाने लगे। यहां अब 'हिन्दूधर्मपरिषद्' नाम का एक शक्तिशाली संगठन है। पं० नरेन्द्रदेव ने संध्या की पुस्तकें यहां इण्डोनेशियाई भाषा में छपवाकर बंटवाई थीं। बाली में भी स्वामी जी के कई जगह व्याख्यान वा उपदेश हुये।

बाली से लौटकर स्वामी जी २८ जनवरी १९७० को पुनः सिंगापुर पहुंचे। सिंगापुर और इण्डोनेशियाई द्वीपों में साधुओं का बड़ा सम्मान है। इस कारण किसी भी हवाई अड्डे पर स्वामी जी की तलाशी नहीं लीगई। जकार्ता से लौटने पर आर्यसमाज सिंगापुर में श्री बाबू जगन्नाथ जी का तार और प्रो० योगानन्द का पत्र मिला, जिनमें ५ मार्च से भारतीय लोकसभा के मध्यावधि चुनाव की चर्चा

करते हुये स्वामी जी से तुरन्त स्वदेश लौट आने का आग्रह किया गया था। ६-७ दिन स्वामी जी सिंगापुर में और रहे और दर्शनों स्थानों पर उनके व्याख्यान हुए। चलने से पूर्व आर्यसमाज सिंगापुर के प्रधान श्री दुर्गादास जी सचदेव ने स्वामी जी को एक टेपरिकार्डयुक्त ट्रांजिस्टर (Two in one) भेंट किया और ४ जनवरी १९७७ को स्वामी जी अपनी यात्रा पूरी कर सकुशल वापस स्वदेश लौट आये।

यहां आने पर अपने एक स्वागतसमारोह में स्वामी जी ने सुदूरपूर्व में भारतीय संस्कृति की वस्तुस्थिति का विस्तार से परिचय दिया जो यहां के दैनिक समाचारपत्रों में विस्तार से छपा था। इस समारोह की अध्यक्षता तत्कालीन गृहराज्यमन्त्री श्री कृष्णचन्द्र पन्त ने की थी।

योरोप-यात्रा

स्वामी जी की चतुर्थ विदेश-यात्रा योरोप की थी। सन् १९७३ ई० में पेरिस में "प्राच्यविदों का २९वां अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन" हुआ उसी में भाग लेने के लिये स्वामी जी गये थे। डॉ० लोकेशचन्द्र जी भी उनके साथ थे। डॉ० योगानन्द को भी इस सम्मेलन में शोध-पत्र प्रस्तुत करने के लिये निमन्त्रण मिला। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मार्ग-व्यय देने पर वे भी दिल्ली विश्वविद्यालय की ओर से इस सम्मेलन के लिये श्री स्वामी जी के साथ गये थे। जम्बो जैट वायुयान द्वारा १४ जुलाई १९७३ को दिल्ली से चलकर बम्बई कुवैत, रोम होते हुये वे अगले दिन फ्रांस की राजधानी पेरिस पहुंचे। यहां का हवाई अड्डा बहुत बड़ा है। पेरिस में वे सारबोन यूनिवर्सिटी, जहां यह सम्मेलन होना था, के निकट लिंकन होटल में रुके। १६ जुलाई १९७३ से सम्मेलन आरम्भ हुआ। सम्मेलनस्थल पर ही डॉ० लोकेश जी के परिचित एक जिप्सी विद्वान् मिल गये। वह पहले भारत में डॉ० साहब के यहां रहकर कार्य कर चुके थे। उनसे रोमाजिप्सियों के बारे में जानकारी हुई।

जिप्सी लोग मध्यकाल में मुसलमानी अत्याचारों से पीड़ित होकर राजस्थान छोड़कर चले गये थे। वे सब राजस्थान के राजपूत लोग थे। आज भी इनकी बोलचाल की भाषा और वेशभूषा लगभग राजस्थानी ही है। ये लोग भारत से निकलकर ईरान आदि से होते हुये योरोप पहुंच गये थे। पेरिस के निकट अब इनकी एक बड़ी बस्ती है। फ्रांस में इनकी जनसंख्या ३० हजार के लगभग थी। यह संख्या बड़ी तेजी से बढ़ रही है। योरोपवासियों के एक-दो ही बच्चे होते हैं जबकि इनके यहां दस-दस बच्चे होते हैं। फ्रांसीसी इस बात से चिन्तित थे कि

कहीं आगे चलकर ये लोग फ्रांस पर पूरा कब्जा ही न करलें। फ्रांस में इन्होंने अनेक म्यूजियम देखे। जिनमें 'लूव म्यूजियम' तथा "म्यूज्ये निने" विशेष उल्लेखनीय है। लूव म्यूजियम में तो हस्तचित्रों पेंटिंग्स (Paintings) का इतना बड़ा संग्रह है कि संसारभर में उतना शायद कहीं नहीं होगा। संसारभर के चित्रकारों के चित्र वहां हैं। कलाकारों ने रंग और तूलिकाओं के मेल से जिस कला की सृष्टि की है वह— 'सत्यम् शिवं सुन्दरम्' की मुंहबोलती कहानी है। इतने बड़े और भव्य चित्र, जिनमें अधिकांश तैलचित्र हैं, योरोपभर में ही नहीं अमेरिका में भी कहीं देखने को नहीं मिले। पेरिस से ये रविकुमार के साथ "वारसाई" के राजमहल देखने गये। ये अपनी भव्यता के लिये संसारभर में प्रसिद्ध हैं। इन्हीं महलों से लुई सोलहवें को घसीटकर सन् १७८९ की क्रान्ति के समय फ्रांस की जनता पेरिस लेगई थी और वहीं उसको कैद किया था।

फ्रांस में एक बात और विशेष देखने को मिली, वह यह कि यहां के ९५ प्रतिशत व्यक्ति अंग्रेजी नहीं जानते या नहीं बोलते। यहां आकर इनका यह व्यामोह टूट गया कि अंग्रेजी सम्पूर्ण योरोप की भाषा है। विशेषकर सम्मेलन ने तो यह सिद्ध कर ही दिया कि उसके स्थानीय आयोजक अंग्रेजों से घृणा करते हैं। उन्हें अपनी फ्रेंच भाषा पर गर्व है और वे इसे ही बोलते हैं। अपनी राष्ट्रभाषा से उनका यह प्रेम प्रशंसनीय है।

पेरिस में इन्होंने लगभग सभी दर्शनीयस्थल देखे। संसारप्रसिद्ध एफिल टावर पर भी चढ़े। सम्मेलन में बेल्जियम के एक विद्वान् ने, जो उन दिनों आस्ट्रेलिया में प्रोफेसर था, स्वामी दयानन्द पर लेख पढ़ा। स्वामी जी जान-बूझकर उसका लेख सुनने गये थे। उस विद्वान् ने सत्यार्थप्रकाश के प्रथम तथा द्वितीय संस्करणों में भेद दिखलाकर महर्षि दयानन्द पर कुछ आक्षेप किये थे। उसका लेख समाप्त होते ही स्वामी जी खड़े हुये और उससे प्रश्न कर तथा तर्कपूर्वक उसकी स्थापना का खण्डन कर इन्होंने ऐसी स्थिति पैदा करदी कि उसको जवाब देना कठिन होगया। ऐसी स्थिति में उस विभाग के अध्यक्ष रूसी विद्वान् कैलीशोव ने उसका पीछा छुड़ाया और स्वामी जी से आगे और कोई प्रश्न न करने की प्रार्थना कर उसे बैठा दिया। उस दिन डॉ० योगानन्द जी स्वामी जी की तर्कबुद्धि देखकर दंग रहगये। वहां बैठे अनेक विदेशी विद्वानों ने भी इनकी प्रशंसा की। २१ जुलाई १९७३ को यह सम्मेलन समाप्त हुआ।

२३ जुलाई १९७३ को पेरिस से उड़कर १ घण्टा बाद सभी लोग स्वामी जी के साथ लन्दन पहुंच गये। यहां पांच दिन रहकर ब्रिटिश म्यूजियम तथा विक्टोरिया

एलबर्ट म्यूजियम देखे। ब्रिटिश म्यूजियम में पुरातत्त्वीय सामग्री का अथाह संग्रह है। अंग्रेज भारत से कितनी बहुमूल्य निधि उठा लेगये हैं यह वहीं पर जाकर ठीक तरह पता चला। यौधेयगण के इतिहास में रुचि और कार्य होने के कारण इन्होंने इनके सिक्के विशेषरूप से देखे। इसके लिये इन्हें उच्चाधिकारियों से विशेष आग्रह करना पड़ा।

यहां ये एक गुजराती होटल सरूना में ठहरे। तीन दिन तक लगातार ये 'हरे रामा हरे कृष्णा' मन्दिर में भी जाते रहे। लन्दन में इनके कई मन्दिर हैं। यहां योरोप के विभिन्न देशों के ब्रह्मचारी रहते हैं जो भारतीयविद्या का अध्ययन करते हैं और भारतीयसाधुओं की भांति ही रहते हैं।

लन्दन से पश्चिम जर्मनी तथा पूर्वी जर्मनी गये। पूर्वी जर्मनी की राजधानी बर्लिन में इन दिनों ''विश्व युवक सम्मेलन'' होरहा था। दुनियांभर के युवक वहां एकत्र थे। विशेषकर जर्मन की युवक-युवतियों ने जब स्वामी जी को देखा तो वे जगह-जगह इनको घेरकर खड़े होजाते और इनके हाथमें बालपेन थमाकर अपनी बनियानों पर इनके हस्ताक्षर कराते। कोई पीठ पर तो कोई वक्षःस्थल पर। कोई गेंद पर तो कोई अपने गुब्बारे पर। ये अपने इस सम्मेलन की यादगार रखने के लिये ऐसा करा रहे थे। स्वामी जी वहां अत्यधिक श्रद्धा अर्जित कर रहे थे। इस दिन न जाने कितने सौ हस्ताक्षर स्वामी जी ने किये होंगे।

जर्मनी से नार्वे डेनमार्क (कोपनहेगन) और स्वीडन में दो-दो तीन-तीन दिन ठहरते हुये ये हालैण्ड की राजधानी अमस्टर्डम पहुंचे। यहां डच लोगों का कमाल देखने को मिला। उन्होंने समुद्र पर काबू पा-पाकर किस प्रकार इस शहर का विस्तार किया है यह अपने आप में बहुत दिलचस्प बात है। वे अब भी समुद्र को सीमित करने में जुटे थे।

हालैण्ड से ये स्विट्जरलैण्ड के प्रसिद्ध नगर ज्यूरिक पहुंचे। यहां से डॉ० लोकेशचन्द्र जी इनसे अलग चले गये और ये रोम आगये। रोम में 'वेटेकन सिटी' देखा जो दुनियां की एक अनोखी धार्मिक सल्तनत-सी है। यहां का प्रसिद्ध गिरजाघर भी दर्शनीय है। ईसाइसों का सदियों से यह गढ़ तीर्थस्थल रहा है परन्तु यहां रोम में जितनी अन्धेरगर्दी और नैतिकपतन देखने को मिला वह योरोप में अन्यत्र कहीं नहीं। यहां बारगेनिंग बहुत अधिक थी। यहां जितने अधिक चर्च गिरजाघर और पादरी हैं उतना ही अधिक यहां भ्रष्टाचार है। दो दिन रोम में रहकर ये ९ अगस्त १९७३ को वापस मातृभूमि पर आपहुंचे।

अफ्रीका-यात्रा

सन् १९७८ ई० में स्वामी जी अफ्रीका यात्रा पर गये। आर्यसमाज नैरोबी ने अपनी ७५ वर्षीय हीरक जयन्ती तथा आर्यप्रतिनिधि सभा पूर्वी अफ्रीका ने अपना रजत-जयन्ती समारोह सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा के आग्रह पर अन्तर्राष्ट्रीय आर्यसम्मेलन के रूप में परिवर्तित कर दिया। इस सम्मेलन में भाग लेने के लिये भारत से लगभग २०० आर्यसमाजी लोग पहुंचे। हरयाणा आर्यप्रतिनिधि सभा के आग्रह पर स्वामी जी भी वहां पहुंचे। हरयाणा से कई आर्य इस सम्मेलन में जाना चाहते थे परन्तु सार्वदेशिक सभा की ओर से प्रवन्ध ही नहीं किया जासका। अनेक व्यक्तियों को अपना मार्ग-व्यय आदि वापस लेना पड़ा।

नैरोबी में होनेवाले इस सम्मेलन के लिये श्री स्वामी जी ने १२ दिसम्बर १९७८ को सायं दिल्ली से और १३ सितम्बर को बम्बई से वायुयान द्वारा प्रस्थान किया। इनके साथ जानेवाले अन्य प्रमुख व्यक्तियों में चौ० हीरासिंह भूतपूर्व कार्यकारी पार्षद दिल्ली, श्री चौ० हरकिशन जी मलिक डिस्ट्रिक्ट सेशन जन दिल्ली, श्री सोमनाथ मरवाह एडवोकेट और श्री सच्चिदानन्द जी शास्त्री उपमंत्री सार्वदेशिक सभा आदि थे।

इस सम्मेलन में कनाडा, अमेरिका, इंग्लैण्ड आदि अनेक देशों के आर्यप्रतिनिधि भाग लेरहे थे। सम्मेलन के अवसर पर नैरोबी आर्यसमाज की ओर से यजुर्वेदपारायण-यज्ञ का आयोजन हुआ। यज्ञ के उपरान्त स्वामी जी के दो बार उपदेश हुये। विभिन्न सम्मेलनों में भी इनके भाषण हुये।

नैरोबी आर्यसमाज आज एक धनाढ्य संस्था है। इसका मन्दिर अतिविशाल तथा सुन्दर है। मन्दिर के बाहर की ओर निकाली गई दुकानों से लाखों रुपये प्रतिवर्ष आय होती है। यहां इस देश में अनेक आर्यसमाज हैं। स्त्री-आर्यसमाजों का भी अच्छा प्रचार है। आर्यसमाज की ओर से कई शिक्षणसंस्थायें भी चलती हैं। ५ जुलाई १९०३ के दिन म० जयगोपाल जी के घर नैरोबी आर्यसमाज की स्थापना हुई थी। तत्पश्चात् यह उत्तरोत्तर उन्नति करता गया। नैरोबी के अतिरिक्त स्वामी जी आदि ने मुम्बासा की भी यात्रा की। स्वामी जी ने अपनी नैरोबी-यात्रा में वहां के सम्बन्ध में विस्तार से लिखा है। यहां विस्तारभय से अधिक लिखना उचित नहीं। २९ सितम्बर १९७८ को वहां से चलकर ३० सितम्बर १९७८ ई० को स्वामी जी, चौ० हीरासिंह जी व श्री चौ० हरिकिशन जी मलिक वापस भारत लौट आये। नैरोबी में आर्यसमाज के पुरोहित प्रो० जयदेव वेदालंकार ने इनकी सुविधाओं का बहुत ध्यान रखा।

स्वामी ओमानन्द जी की अन्तिम विदेशयात्रा (१९८४)

—विरजानन्द दैवकरणि

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के प्रबुद्ध स्नातक और प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार ने दक्षिणपूर्वी एशियाई देशों में भारतीय संस्कृति के अध्ययन हेतु एक सांस्कृतिक शिष्टमण्डल की यात्रा करवाई थी। इस शिष्टमण्डल के बीस सदस्य थे—

१. सर्वश्री डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार, २. स्वामी ओमानन्द सरस्वती, ३. श्रीमती उषा त्रिखा (डॉ० सत्यकेतु की पुत्री), ४. विरजान्द दैवकरणि, ५. रामवीर शास्त्री (कंसाला) ६. प्रसिद्ध चित्रकार एन.एस.बेन्द्रे (मुम्बई) सपत्नीक, ८. रामाज्ञा वैरागी (मुजफ्फरपुर बिहार), ९-१०. दयानन्द वकील आगरा (सपत्नीक), ११-१२. दत्तात्रेय तिवारी (ग्रीनपार्क, दिल्ली) सपत्नीक, १३. डॉ० कमला प्रधान (लखनऊ), १४. कु० सुषमा आर्या (कन्या गुरुकुल नरेला), १५. लक्ष्मीनारायण अल्वा (कर्नाटक), १६. सत्यनारायण जायसवाल (लखनऊ), १७. ज्वालापुर के एक वानप्रस्थ सज्जन आदि।

ये सब सज्जन २१ सितम्बर १९८४ को सायंकाल दिल्ली से चलकर २२.९.१९८४ को प्रातःकाल २.१० बजे बैंकाक विमानपत्तन पर उतरे। आर्यसमाज बैंकाक के अधिकारियों ने फूलमालाओं से सभी का स्वागत किया और वहीं के मनोहर होटल में सबको ठहराया। वहां का रोजगार्डन देखा तथा थाईनृत्य और मुष्टामुष्टि, लाठी आदि युद्ध के दृश्य भी देखे।

२३ सितम्बर १९८४ को आर्यसमाज बैंकाक में यज्ञ और स्वागत के पश्चात् स्वामी ओमानन्द जी, डॉ० सत्यकेतु जी, रामाज्ञा वैरागी और सुषमा आर्या के भाषण हुए। आर्यसमाज बैंकाक के साथ ही विष्णुमन्दिर भी है, इस मन्दिर में भी भाषण हुए और मैंने तथा ब्र० रामवीर ने आसन तथा अनेक प्रकार के व्यायाम दिखाये। इनको स्थानीय लोगों ने बड़े चाव और उत्साह से देखा।

२४ सितम्बर १९८४ को बैंकाक का बुद्धमन्दिर देखा। बुद्ध की एक प्रतिमा ७०० वर्ष पुरानी है, ३ मीटर ऊंची, २.५ टन भारी तथा सारी सोने की है ऐसा बताया। एक अन्य मूर्ति १०० टन भारी, १६० फीट लम्बी लेटे हुए बुद्ध की है जो ४० फीट ऊंचाई पर है। उसके पास १०८ भिक्षापात्र बने हैं। बैंकाक में 'धर्मस्थान' नामक विश्वविद्यालय है।

उसी दिन बैंकाक से ११० मील दूर पटाया स्थान पर बस द्वारा गये। पटाया में समुद्र के किनारे नग्नता और भ्रष्टाचार की झलक देखी तो सभी व्यक्ति तुरन्त वहां से चलकर १८ भाट प्रतिव्यक्ति किराया देकर एक घण्टा तक नाव से समुद्र में घूमे। उसी दिन पटाया में ही समुद्र किनारे पर स्थित रायल गार्डन रिसोट होटल में ठहरे।

२५ सितम्बर को पटाया से बस द्वारा बैंकाक पहुंचे। बैंकाक में एक स्थान पर जावा की लिपि में '**मोक्षार्थं जगद् हिताय च**' यह लेख लिखा है, उसके नीचे स्वस्तिक चिह्न बना है तथा स्वस्तिक के नीचे '**इति धर्मः**' लिखा है। ऐसा स्वस्तिक चिह्न भारत में सिन्धुघाटी की सभ्यता के युग से लेकर आजतक प्रचलित है। भारत से बाहर भी बीस से अधिक देशों में यह चिह्न पाया गया है। उसी दिन बैंकाक से विमान द्वारा दो घण्टे की यात्रा करके ३.३० बजे सिंगापुर पहुंचे। सिंगापुर में कुछ स्थल देखकर ८.३० बजे विमान से जकार्ता के लिए प्रस्थान किया और १० बजे जकार्ता पहुंचे। जकार्ता में सबंग मैट्रोपोलिटिन नामक होटल में ठहरे।

२६ सितम्बर १९८४ को जकार्ता के विभिन्न स्थल देखे। यहां पुराकाल में श्री पूर्णवर्मन्देव ने तारुदावा=तरुणनगरी बसाई थी। उसके पश्चात् श्री मूलवर्मन् ने चन्द्रभागा नहर का निर्माण कराया। उसने राजसूययज्ञ करके पुरोहितों को १०० गायें प्रदान की थी। पुराकाल में सुमात्रा में आदित्यवर्मन्=श्रीविजय नामक शासक था। बौद्धधर्मानुयायियों की यह राजधानी रही है। कलिंगदेश (उड़ीसा) से महर्षि अगस्त्य ने वहां जाकर भारतीय संस्कृति का प्रचार किया था। उन्होंने वहां जाकर अगस्त्य नाम को बदलकर भट्टारक गुरु नाम रख लिया था। नीललोहित नामक व्यक्ति ने जावा में जाकर भारतीयसभ्यता का प्रचार किया। जावा की राजधानी का नाम '**बिल्वतिक्त**' था। अगस्त्य महर्षि बाली द्वीप में नहीं पहुंच पाये थे। कश्मीर से मार्कण्डेय महर्षि बालीद्वीप में पधारे थे। बालीद्वीप में भार्गव लोग रहते हैं, वे स्वयं को भारतवर्ष से आया हुआ बताते हैं। वहां "**जम्बूद्वीपे भरतखण्डे...**" आदि संकल्प प्रचलित है। जावा के निवासियों की मान्यता है कि पाण्डव भारत के नहीं थे, किन्तु जावा के थे। जावा में ब्राह्मण को वंजमेन कहते हैं, अर्थात् रक्तवर्णवाला ब्राह्मण। बाली में पद्मासनस्थ शिव प्रतिमा त्रिशक्ति=त्रिशूलयुक्त बनी है। त्रिशक्ति=चंडशक्ति, प्रभुशक्ति और अणिमा, लघिमा, महिमा शक्ति। अष्टदल कमल भी चित्रित हैं। महादेव को सोमनाथ कहते हैं। ये पांच स्थानों की

शक्ति के स्वामी थे। कर्मकाण्ड देवयज्ञ, पंचयज्ञ आदि बालीद्वीप में प्रचलित है। शकसंवत् भी बाली में प्रचलित है। गजमद प्रधानमन्त्री का नाम है। पुत्री को **आत्मजा** कहते हैं, उसक। नाम विश्वा है। रक्षामन्त्रालय को वहां ''**गृहपूर्णयुद्ध**'' कहते हैं। बैंक को '**अर्थलोक**' कहते हैं। प्रधानमन्त्री का निवास '**कपालनगर**' कहाता है। दूत और मन्त्री नाम भारत की भांति ही हैं। एम.पी. को '**दीवानराज्य**' बोला जाता है। सेना के लिए '**(युद्ध) बलतन्त्र**' शब्द प्रयुक्त होता है। धर्मपत्नी=**धर्मवनिता**, कमिश्नर=**भूपति**, प्रिया=**युवा**, रोड=**मार्ग**, सिरिमाकासी=**श्रेयमाकांक्षी**, यासकरती=मैरिज (शादी) इत्यादि शतशः नाम ऐसे हैं जो प्राचीन भारत की भाषा से सम्बद्ध हैं, भारत से तो ये शब्द लुप्त होगये, परन्तु बाली, जावा, जकार्ता और थाईलैण्ड की ओर अभी तक सुरक्षित हैं।

इस प्रकार के शब्दों को सुनकर पूरा शिष्टमण्डल प्रसन्न होगया। २६ सितम्बर १९४८ को जकार्ता से '**गरुड**' नामक विमान से जोगजकर्ता के लिए प्रस्थान किया। विमानस्थल नगर से ६ किलोमीटर दूर है। जोगजकर्ता का अर्थ वहां के लोग '**आयुधकर्ता**' बताते हैं। विमान से उतरते ही स्थानीय लोगों ने सभी यात्रियों का स्वागत '**ओं स्वस्ति अस्तु**' यह वाक्य बोलकर किया। योग्याकार्ता में '**पुरी अर्थ**' नामक होटल में रुके। यद्यपि वहां ८५% मुस्लिम हैं परन्तु उनके नाम भारतीयों जैसे हैं—**सत्यवती सुलेमान**। एक चौक '**सुमंगली**' कहलाता है। वहां नवम शती ईसवी के हिन्दू और बौद्धमन्दिर हैं। राजा=वाङ्शा, भूतेशमन्दिर, ब्रह्माननमन्दिर, इस प्रकार के हैं जैसे जापान देश के मन्दिर हैं। ऐसे २०४० मन्दिर हैं। ब्रह्मानन मन्दिर के वाहर भीतर रामकथा उत्कीर्ण की गई है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव के मन्दिर हैं। इनके वाहन **हंस, गरुड़** और **नन्दी** की प्रतिमाएं भी बनी हुई हैं। चांदी कलशन=चांदी कैलाश नामक स्थान पर तीन मन्दिर देखे। दर्जनों मन्दिर तोड़फोड़ रखे थे। शिवमन्दिर को शिबुमन्दिर कहते हैं। ब्रह्मानन को '**परबनंद**' कहा जाता है।

२८ सितम्बर १९८४—योग्याकार्ता से ४५ कि.मी. बोरोबुदूर नामक प्रसिद्ध मन्दिर है। बोरोबुदूर का अर्थ है—पर्वतस्थित चैत्य। वहां महात्मा बुद्ध की अनेकरूपोंवाली प्रतिमायें अतिसुन्दर बनी हैं—जैसे—भूमिस्पर्शमुद्रा, धर्मचक्रप्रवर्तनमुद्रा, ध्यानमुद्रा आदि। जावा में ६५ लाख की आवादी है। मोटिलन नगर में रोमनकैथोलिक लोग रहते हैं। जगलका नामक मन्दिर में बोधिसत्व, बद्धपाणि

और अवलोकितेश्वर की प्रतिमायें हैं। शाक्यमुनि की तीन मीटर ऊंची प्रतिमा स्थित है। जगलका मन्दिर का योजनाकार गुणवर्मा था, ऐसा सुना है।

योग्याकार्ता के प्राचरानालान ग्राम में जब हम पहुंचे तो वहां का '**पावनमन्दिर**' देखा। वहां के प्रबन्धक महन्त ने '**ओम् आवेशनम्**' ऐसा कहकर हम सबको बैठाया। इसके पश्चात् '**ओम् स्वस्ति अस्तु, ओम् अविघ्नमस्तु** और **ओम् दीर्घायु अस्तु**' ऐसा कहकर हमारे लिए कल्याण की कामना की।

यह परम्परा प्राचीनभारत की विशुद्ध परम्परा थी जो भारत से विलुप्त होगई परन्तु योग्याकार्ता में अभी तक प्रचलित है।

उसी दिन योग्याकार्ता से बालीद्वीप के डेनपसार नामक विमानस्थल पर उतरे। विमानस्थल पर बाली द्वीप का परम्परानुसार नृत्य के साथ सब यात्रियों का भव्य स्वागत किया गया।

बाली के डेनपसार नगर में हिन्दूधर्मपरिषद् है। १९६३ में उदयन यूनिवर्सिटी की स्थापना हुई थी। इसमें २००० विद्यार्थी तथा ७५ प्राध्यापक थे। वहां पूजे सूरपा डॉ० पाली प्रोवाइसचांस्लर, सुरातक, पुरुवी, मलयकेतु आदि थे। उदयन विश्वविद्यालय में संस्कृत और भारतीय दर्शन के प्राध्यापक मुकुन्दमाधव शर्मा थे।

वाली के शिवलिंग पर '**ओम् आदित्याय शिवाय नमः**' उत्कीर्ण था। वहां संजय (शिवलिंग) और पूर्ण वासुकि, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, पञ्चमहायज्ञ, मनुस्मृति, उपनिषद्, वेद, ब्रह्माण्डपुराण और गीता के अनुवाद किये हुए हैं। त्रिकालसन्ध्या विधि से पूजा होती है। किन्तु मूर्तिपूजा कोई नहीं करता, जबकि लकड़ी आदि से बनी हजारों मूर्तियां सर्वत्र उपलब्ध हैं। पूजाहेतु संस्कृत में श्लोकादि उच्चारण करते हैं— **गायत्री मन्त्र, ओम् नारायणपदम्......, एको नारायणः, न द्वितीयोऽस्ति कश्चित्, ...पापोऽहं पापकर्माऽहं, क्षमस्व मां महादेव सर्वप्राणिहितकर, सन्दह कायिकान् दोषान्** आदि।

वालीद्वीप में पञ्चश्रद्धा नाम से पूजा होती है। कर्मफल को मानते हैं। चोरी नहीं है। पुनर्भव और मोक्ष की मान्यता है।

सुतसोम, वृहस्पतितत्त्व, सारसमुच्चय, रामायण, महाभारत की मान्यता पर्याप्त है। गरुड़ राष्ट्रीय चिह्न है। गुरु को **आगमतीर्थ** कहते हैं। आगम हिन्दू को भी कहते हैं। पंचमुखी सितारा ☆ वनाकर उसके प्रतिकोण पर एक-एक करके गरुड़, नन्दी, वटवृक्ष, व्याल और बेल बने हैं। अमलापुर के निकट तीर्थगंगा है। गंगा, सिन्धु, सरस्वती तीनों नदियां हैं। पुर मन्दिर अनेक हैं। उनमें छः प्रसिद्ध हैं, जैसे—

का कारखाना देखा। वहां ५ लाख रुपये तक की मूर्ति थी। मलेशिया से पानी खरीदते हैं। तीस मील लम्बी पाइप लाईन से पानी आता है। ३०० समुद्री जहाज हैं, उनके द्वारा ताइवान, चीन, मलेशिया, आस्ट्रेलिया, जापान आदि देशों से दूध, फल, लकड़ी, बांस आदि अनेक प्रकार के पदार्थों का आयात होता है। २००० फैक्ट्रिया हैं, १९६० यूनियन हैं। फैक्ट्री मालिक और मजदूरों के झगड़ों में सरकार मजदूरों के हक में फैसला करती है। चावल थाईलैंड और लंका से आता है। सदा कोई न कोई प्रदर्शनी लगी रहती है। एक द्वीप का नाम '**सन्तोष**' है।

४ अक्टूबर १९८४ को सिंगापुर से कैमरा, टेपरिकार्डर, घड़ी, अटेची, कैमरे के लैंस आदि खरीदे। ५ अक्टूबर १९८४ को सिंगापुर से दिल्ली लौट आये। इस प्रकार १५ दिन की इस यात्रा में यह अनुभव हुआ कि प्राचीन भारतीय संस्कृति अपने पर्याप्त विशुद्ध रूप में दक्षिणपूर्वीय एशिया के देशों में सुरक्षित है। इन लोगों से सतत सम्पर्क यदि किया जाये तो आर्यसमाज और वैदिक धर्म के प्रति ये लोग अतिशीघ्र आस्थावान् हो सकते हैं। परन्तु आर्यसमाज की अपेक्षा मुस्लिम मतवाले उधर अधिक प्रचार कर रहे हैं। इस विषय में स्वामी ओमानन्द जी की इच्छा पुन: वहां जाकर गुरुकुल खोलने और आर्यसमाजों की स्थापना करने की थी, परन्तु उनको कोई योग्य और स्थायी रहनेवाला शिष्य नहीं मिला, इसलिए वह विचार क्रियान्वित नहीं होपाया।

श्री स्वामी ओमानन्द जी के साथ १९६५ ई० से ही मैं प्राय: अनेक यात्राएं करता रहा हूं। सन् १९६९ में एक विशेष यात्रा नेपाल में स्थित महात्मा बुद्ध के जन्मस्थान **लुम्बिनी** तक की थी। उसका एक विशेष प्रयोजन था।

महाराजा भरतपुर के पास बयाना के पास से निकली गुप्त स्वर्णमुद्राओं में एक मुद्रा चन्द्रगुप्त द्वितीय की थी, उस पर "**चक्रविक्रम**" लिखा था। आचार्य जी, प्रो० शेरसिंह जी और योगानन्द जी भरतपुर गये और वह सिक्का खरीदना चाहा। परन्तु राजा ने उसका मूल्य उस समय एक लाख रुपये बताया। इतना रुपया आचार्य जी उस समय दे नहीं सकते थे, फलत: वापस लौट आये और वह इच्छा मन में टीस बनकर उद्वेलित करती रही।

इसी बीच ज्ञात हुआ कि उसी प्रकार की एक मुद्रा यू.पी. के जौनपुर जिले में किसी के पास है। आचार्य जी ने श्रीरूपराम गुप्त नकी फाटक जौनपुर से सम्पर्क किया और मुद्रा लेने का मन बनाकर रुपये लेकर यात्रा पर चल दिए। मुझे साथ ले लिया। दिल्ली से मुरादाबाद होते हुए जौनपुर से रामरूप जी को लेकर

पूर्ववैशाखी, मदरटैम्पल=मातृमन्दिर, पूर्वपुलाकी आदि। पारिवारिक मन्दिर प्रत्येक घर में है। पुरदेश=ग्राम मन्दिर। यदि किसी से कोई दुर्घटना हो जाती है तो नाराज नहीं होते, हंसकर चल देते हैं। पुरदालान, वाहिका उक्कू आदि मन्दिर हैं। वर्ष में ३० सप्ताह और २१० दिन होते हैं। शिवरात्रि और सरस्वती की पूजा वर्ष में दो बार होती है। दुर्गापूजा काली मां के रूप में है। हरि, उशना, बाली और मयदानव को मानते हैं। भक्तिमार्ग प्रधान है। जातिबन्धन नहीं है। **''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते''** का साक्षात् पालन होता है। पर्दा प्रथा नहीं है। १०० वर्ष पूर्व वैशाखी पर एकादश रुद्र का यज्ञ हुआ था। विवाह परस्पर की प्रसन्नता पर होता है। विवाह के निश्चित दिन पर मन्दिर में जाकर माता-पिता सम्बन्धी के साथ मिलते हैं। इत्यादि अनेक प्रथाएं प्राचीन संस्कृति की उद्वाहक हैं।

३० सितम्बर १९८४ को आंगुपर्वत पर ब्रह्मा, शिवमहादेव और विष्णु के मन्दिर देखे। इनको वहां क्रमशः **सदाशिव, शिव** और **परमशिव** नाम से बोला जाता है।

१ अक्टूबर १९८४ को बाली के गवर्नर श्रीमन्त्र से १० बजे मिले। ४० मिनट तक भेटवार्ता हुई। सामूहिक चित्र भी लिए। अल्पहार भी गवर्नर महोदय ने कराया। उन्होंने कहा कि इतना बड़ा सांस्कृतिक यात्री समूह यहां कभी नहीं आया। मैं आपको देखकर अतिप्रसन्नता अनुभव करता हूं। मैं भी सप्ताहभर तक लखनऊ में रहा हूं।

गवर्नर महोदय के भवन में रामायण के विभिन्न दृश्य दीवार में खुदे हुए थे।

सायं साढे चार बजे हिन्दूधर्म परिषद् में आसन नेति, धोती, सरिये मोड़ना आदि का प्रदर्शन ब्रह्मचारी रामवीर ने किया। कुछ आसन मैंने भी करके दिखाये। उस समय लगभग १००० छात्र वहां उपस्थित थे।

२ अक्टूबर १९८४ को डेनपसार से जकार्ता होते हुए ४ बजे सायं सिंगापुर पहुंचे। डेनपसार और जकार्ता के विमानस्थलों की दीवारों पर रामायण और महाभारत के विशाल चित्र खुदे हुए थे। कर्ण-अर्जुन युद्ध, नाराच (बाण) द्वारा अर्जुन के किरीट को उड़ाया जाने वाला दृश्य, रावण द्वारा सीताहरण और जटायु आदि।

३ अक्टूबर १९८४ को सिंगापुर का भ्रमण किया, टाइगर बाम गार्डन देखा, सिंगापुर में ८०० स्कूल, ५ विश्वविद्यालय थे। सिंगापुर भ्रमण के समय रत्नोपरत्नों

खैर! यह बात मुझे स्मरण रही। कुछ दिन बाद जब वापस लौटते हुए दयानन्द मठ रोहतक में पहुंचे तो पता चला कि उसी दिन उसी समय किसी ने मेरे ट्रंक में आग लगादी और उसमें रक्खे चारों मूलवेद (जिनके अक्षर गिने हुए थे), महाभाष्य, महर्षि दयानन्द का जीवनचरित (देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय), अन्य सारी पुस्तकें और मेरी माता जी का एकमात्र चित्र सब जला दिये।

उस दिन ज्ञात हुआ कि आचार्य जी को योगाभ्यास के कारण भावी और दूरस्थ घटनाओं का आभास होजाता है।

इसी प्रकार की एक अन्य घटना है। गुरुकुल में १९६२ के लगभग दौलतपुर हिसार के विश्वदेव-बलदेव आदि छात्र पढ़ते थे। सायंकाल व्यायाम के पश्चात् स्नानादि से निवृत्त होकर आचार्य जी सन्ध्या करने बैठे। मैं गोदुग्ध लेकर बाहर बैठा था कि सन्ध्या के पश्चात् इनको दूध पिला दूंगा। परन्तु दो मिनट बाद ही आचार्य जी सन्ध्या से उठकर बाहर आये और मुझे कहा कि नीचे जाकर पता करो कि किसी को चोट लगी है क्या? मैं तुरन्त नीचे गया और सब जगह देखकर बताया कि सब ठीक है। यह सुनकर वे पुनः सन्ध्या में बैठ गये, किन्तु कुछ क्षण बाद फिर उठकर आये और कहा जा दुबारा देखकर आ। मैं पुनः गया और वही बात दोहरादी और कहा कि सभी छात्र व्यायाम कर रहे हैं। इस पर आचार्य जी पुनः सन्ध्या में बैठ गये, परन्तु तुरन्त उठकर कहने लगे कि ठीक तरह से पता लगाकर आ। मैंने कहा मैं तो दो बार देख आया। अब आप स्वयं तसल्ली करलें। यह सुनकर आचार्य जी नीचे मैदान में जाकर व्यग्रता से इधर-उधर घूमने लगे। पांच-सात मिनट बाद देखते हैं कि एक विश्वदेव नामक ब्रह्मचारी को हाथों पर उठाये हुए कई ब्रह्मचारी गुरुकुल में प्रविष्ट हुए। आचार्य जी तुरन्त दौड़कर वहां पहुंचे और उसे सम्भाला और आक की जड़ का छिल्का उतरवाकर संजीवनी तैल में हलवा बनाकर उसके पैरों की पट्टी करदी।

घटना इस प्रकार थी—गुरुकुल में बेलारूस बड़ा ट्रैक्टर था। उसकी ट्राली में तीन हजार ईंटे भरकर चौ० प्रियव्रत के भट्ठे सिलानी से गुरुकुल में आरहे थे। विश्वदेव ट्राली में ईंटों के ऊपर बैठा था, वह चलते-चलते ट्राली से ट्रेक्टर पर आना चाहता था, इसी प्रक्रिया में ट्रेक्टर पर पहुंचते समय उसके हाथ फिसल गये और वह ट्रेक्टर और ट्राली के बीच में गिर गया और तीन हजार ईंटों से भरी ट्राली विश्वदेव के दोनों पैरों पर से गुजर गई और वह दुर्घटना होगई। जिस समय यह

शाहगंज कस्बे के अरसिया बाजार में लाला पन्नालाल की दुकान पर जा पहुंचे। दुकान पर पहुंचकर सिक्का दिखाने के लिए कहा तो लाला जी ने आचार्य जी को ऊपर से नीचे तक देखकर कहा—बाबाजी! यह आपके काम का नहीं है क्या करोगे सिक्का देखकर। उत्तरप्रदेश पुरातत्त्व विभाग के कई विद्वान् आ-आकर चले गये, परन्तु कोई नहीं ले पाया।

आचार्य जी बोले—कोई बात नहीं, नहीं लिया जायेगा तो नहीं सही, दिखा तो दो। इस पर लालाजी ने सिक्का आचार्य जी को पकड़ा दिया। आचार्य जी ने देखकर मुट्ठी में बन्द कर लिया और कहा लालाजी! कितने रुपये का है? लालाजी अचम्भे में रह गये और कहा दस हजार रुपये का है, एक रुपया भी कम नहीं है। भाइयों के बंटवारे में मुझे यह दस हजार का दिया गया है। आचार्य जी ने मेरी ओर संकेत किया और मैंने दस हजार रुपये की गड्डी निकालकर आचार्य जी को दी, उन्होंने वे रुपये लालाजी की गोद में फैंक दिये। लालाजी ने रुपये नहीं उठाये और आश्चर्य से आचार्य जी की ओर देखकर कहा—महाराज! आपका परिचय? आचार्य जी बोले—परिचय का क्या करना है, आपको रुपये चाहियें थे, हमें सिक्का, सो हमने लेलिया और रुपये आपको मिल गये।

लालाजी ने पुनः आग्रह किया तो आचार्य जी बोले मुझे आचार्य भगवान्‌देव कहते हैं। यह सुनते ही लाला जी अपनी सीट से तुरन्त उठे, आचार्य जी के चरण स्पर्श किये और कहा मेरे धन्यभाग हैं जो आपके दर्शन हुए। आपका नाम तो वर्षों से सुनता आ रहा था, आज दर्शन होगये। मैं यहां के आर्यसमाज का प्रधान हूं। यह सुनकर आचार्य जी बोले—कुछ आर्यबन्धु के नाते ही कम करदो। इस पर लालाजी ने पांच सौ रुपये वापस कर दिये। इस प्रकार यह मुद्रा आचार्य जी को मिली। उसी समय उन्हीं लालाजी से कुछ अन्य गुप्त मुद्रायें भी लीं।

सिक्का लेकर आचार्य जी आगे आजमगढ़, बलिया, फूलपुर, गोरखपुर होते हुए नेपाल में महात्मा बुद्ध के जन्मस्थान लूम्बिनी तक पहुंच गये। गोरखपुर में इतिहास की कान्फ्रेंस में आचार्य जी ने **वृष्णिगण की मोहरों पर लेख** भी पढ़ा था। फूलपुर से आहत रजत मुद्राएं भी खरीदी थीं।

गोरखपुर में एक विचित्र घटना घटी। वहां के आर्यसमाज में रुके हुये थे। प्रातःकाल सन्ध्या के पश्चात् आचार्य जी ने कहा—गुरुकुल झज्जर में कोई दुर्घटना हुई है! मैंने कहा क्या हुई है? तो बोले—यह तो पता नहीं, परन्तु हुई अवश्य है। पूरा ध्यान नहीं हो पा रहा।

सप्तम अध्याय

प्रचार-कार्य

स्वामी जी का अधिकांश जीवन आर्यसमाज के प्रचार व समाज-सुधार में व्यतीत हुआ था। न केवल भारत में अपितु विदेशों में भी इन्होंने प्रचार-कार्य किया। यौवन-काल में रात्रिपाठशालायें चलाकर सहभोजों का आयोजन कर तथा राष्ट्रीय कांग्रेस के मंच से स्वतन्त्रता के लिये जो महनीय उद्योग किया वह आपके जीवन का एक गौरवमय इतिहास है। सन् १९४२ के बाद गुरुकुलों के माध्यम से विद्वान् स्नातक प्रचारक तैयार करने की दिशा में आप जुटे। साथ-साथ प्रचार-कार्य भी आपका चलता रहा। कई बार तो जीवन में ऐसा समय भी आया जब आपको दिन में कई-कई बार उपदेश व व्याख्यान देना होता था। देश का शायद कोई ही कोना शेष होगा जहां आप प्रचार के लिये न गये हों। यहां तक कि सन् १९६६ में अण्डमान निकोबारद्वीपसमूह में भी आपने २० दिन प्रचार-कार्य किया। वहां आप प्रतिदिन कई-कई सत्संगों में बोलते थे। वहां के लोगों पर आपके प्रचार का इतना गहरा असर पड़ा कि बाद में भी वे लोग आपको बुलाते रहते थे किन्तु अधिक व्यस्तता के कारण आप वहां पुनः नहीं जासके परन्तु आपने वहां अपने शिष्य श्री ब्र० सत्यव्रत वसु (स्वामी सुधानन्द सरस्वती) दयानन्दमठ दीनानगर को प्रचारार्थ भेजा। उन्होंने वहां कई महीने रहकर प्रचार-कार्य किया। अण्डमान निकोबार से अनेक लोगों ने उनके प्रचार-कार्य की प्रशंसा के पत्र स्वामी जी को लिखे थे। वे अत्यधिक कर्मठ और योग्य हैं। इन्हीं को आपने अफगानिस्तान में प्रचार के लिये भेजा। इन्होंने वहां तीन मास लगातार प्रचार-कार्य किया। वहां से ये जर्मनी आदि कई योरोपीय देशों में भी प्रचार के लिये गये।

स्वामी जी की व्याख्यान वा उपदेश की अपनी निराली शैली थी। हृदय से निकले उनके शब्द श्रोता के रोम-रोम को पुलकित कर देते थे। उनके भाषणों में सत्य होता था जो लोगों के जीवन में जीवनदायिनी संजीवनी का काम करता था। उनकी वाणी में कड़क और मुखमण्डल पर अत्यधिक तेज था। उनके चेहरे का आभामण्डल कुछ ऐसा तेजोमय था कि उन्हें देखनेवाला एकदम प्रभावित होजाता था। यह बात विदेश में भी देखने को मिली। इनसे सर्वथा अनजान और अपरिचित व्यक्ति भी इनके प्रथम दर्शन से ही अत्यधिक प्रभावित होजाता था।

दुर्घटना घट रही थी, उसी समय आचार्य जी सन्ध्या करने बैठे थे और निर्मल चित्त के कारण उनको इसका आभास होगया।

मैंने राजस्थान के जयपुर, अजमेर, चित्तौड़गढ़, शिवगंज, उदयपुर, जोधपुर, आबू आदि, उत्तरप्रदेश के गाजियाबाद, हापुड़, मुरादाबाद, बरेली, लखनऊ, इलाहाबाद, कानपुर, फतेहपुर, झांसी, कौशाम्बी, अयोध्या, फैजाबाद, शाहजहांपुर, सीतापुर, आजमगढ़, बहराइच, बलिया, रुद्रपुर, गोरखपुर, मेरठ, मथुरा, हाथरस, सहारनपुर, हरद्वार, रुड़की, बनारस आदि। हरयाणा पूरा प्रान्त, पंजाब के लुधियाना, जालन्धर, अमृतसर, फिरोजपुर, बटाला, नवांशहर, पठानकोट, दसुहा, चण्डीगढ़, रायकोट, जगरांव आदि।

मध्यप्रदेश के ग्वालियर, भोपाल, चिचौली आदि, महाराष्ट्र के नागपुर, बम्बई, गुजरात के बड़ौदा, टंकारा आदि। बिहार के पटना, दानापुर आदि। जम्मू-कश्मीर के जम्मू, छम्ब, जोड़ियाँ, अखनूर, ऊधमपुर, श्रीनगर, अनन्तनाग, उड़ी, रुस्तम पहाड़ी आदि क्षेत्रों में स्वामी ओमानन्द के साथ वर्षों तक यात्राएं की हैं। इन यात्राओं में स्वामी जी ने अपने सुख हेतु खान-पान, रहन-सहन की कभी चिन्ता नहीं की।

प्रातः उठकर व्यायाम, स्नान, प्राणायाम, सन्ध्या, यज्ञ तक की चिन्ता सदा की, इसके बाद भागदौड़ प्रारम्भ हो जाती थी। भोजन किसी परिचित ने करा दिया तो कर लिया, अन्यथा भुने हुए चने, गाजर, तरबूज आदि खाकर पूरा दिन व्यतीत करते रहते थे। गोदुग्ध और गोघृत का नियम करने के कारण वह सर्वत्र उपलब्ध नहीं होता था, अतः प्रायः करके सूखी रोटी खानी पड़ती थी। बहुत कहने-सुनने पर घी अपने साथ रखने लग गये थे, उसे भी अनेक बार साथ रहनेवाले सेवक उसी घर में भूल जाते थे, जहां भोजन किया होता था।

इस प्रकार स्वामी जी का पूरा जीवन त्याग और कठोर तपस्या के साथ आर्यसमाज के प्रचार और सत्साहित्य के प्रसार में व्यतीत हुआ। ऐसा पुरुषार्थी और दिनचर्या का कठोरता से पालनकर्त्ता मेरी दृष्टि में दूसरा व्यक्ति नहीं आया। हमें उनके जीवन से प्रेरणा लेकर उनका अनुकरण करने का प्रयास करना चाहिये।

प्रचार-प्रसार और आर्यसाहित्य के सृजन में सतत प्रयत्नशील हैं। इन्होंने और इनकी माता श्रीमती सुशीला आनन्द ग्रेटर कैलाश-१ दिल्ली ने स्वामी जी को लाखों रुपया साहित्य प्रकाशन और प्रचार हेतु प्रदान किया था।

लासएंजेलैस (अमेरिका) में श्री डॉ० सुधीर आनन्द ने स्वामी जी की यात्रा और भोजनसम्बन्धी सभी सुविधाओं का विशेष ध्यान रखा। डॉ० सुधीर की माता श्रीमती सुशीला आनन्द ग्रेटर कैलाश (दिल्ली) भी इसी भांति श्रद्धापूर्वक आतिथ्य करती थीं। श्री स्वामी जी अमेरिका से लौटकर पुनः इंग्लैण्ड आये और लगभग दो मास तक वैदिकधर्म का प्रचार यज्ञ और व्याख्यान आदि के द्वारा किया। **लंदन में एक नये आर्यसमाज की भी स्थापना की**। जिसमें श्री धर्मपाल जी डूडी आदि विशेष रुचि लेरहे थे। विशेष जानकारी के लिये स्वामी जी की विदेश-यात्रा **''मैंने इंग्लैण्ड में क्या देखा''** नामक पुस्तक पढ़ें।

आचार्य जी की प्रचारयात्राएं

आचार्य भगवान्देव जी ने अपने सुदीर्घ ९२ वर्ष के जीवनकाल का अधिक भाग प्रदेश, देश और विदेशों में वैदिक धर्म, आर्यसमाज और भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के प्रचार-प्रसार निमित्त यात्रा एवं देशाटन में व्यतीत किया था। यह उनके जीवन से, विशेषतया डायरी-विवरण से विदित होता है।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली के प्रधान महात्मा नारायण स्वामी जी आर्यसमाज मन्दिर नरेला की स्थापना के निमित्त २७ मार्च १९३३ में नरेला पधारे थे। ब्र० भगवान्देव तथा इनके साथी विद्यार्थियों के कार्य से प्रभावित होकर इन्हें महर्षि दयानन्द निर्वाण अर्धशताब्दी (सन् १९३३) के अजमेर सम्मेलन में पहुंचने का आदेश दिया। तदनुसार ये अपने १८ नवयुवकसाथियों के साथ अजमेर गये थे। वहां रहकर २३ दिन तक सेवाकार्य किया था।

सन् १९३९ में प्रसिद्ध हैदराबाद सत्याग्रह में आप सत्याग्रही जत्था लेकर गये थे। वहां नाना प्रकार की कारावास यातनाएं सहन की थीं।

सन् १९४२ में गुरुकुल झज्जर का आचार्य बनने के पश्चात् पहले भारतीय सेना की छावनियों में प्रचारार्थ जाते थे। वहां से गुरुकुल झज्जर को आर्थिक सहायता प्राप्त होती थी। साथ ही प्रचार से प्रभावित आर्य विचारधारा के सैनिकों ने अपने भाई पुत्र आदि को भी गुरुकुल झज्जर में अध्ययनार्थ प्रविष्ट करवाया। उनमें वेदव्रत शास्त्री, यशपाल (बास), धर्मव्रत चुड़ेला, देवव्रत बारड़ा, धर्मवीर बारड़ा, वेदपाल अजीतपुरा, विजयपाल शैवचन्दि ढाणी भालोठ आदि नाम प्रमुख हैं।

जम्मू कश्मीर में भी स्वामी जी का अत्यधिक प्रभाव था। सन् १९६६ ई० में स्वामी जी एक मास तक वहां वेदकथा करके आये। ब्र० विरजानन्द जी तब इनके साथ थे। बाद में स्वामी जी वहां समय-समय पर वेद-प्रचार के लिये जाते रहे। हैदराबाद तथा गुजरात में भी आप प्रचार के लिये अनेक बार गये थे। महाराष्ट्र के तो गुरुकुल झज्जर में अनेक विद्यार्थी पढ़कर स्नातक होकर गये थे। अगस्त १९७९ में भी आप लातूर (उस्मानाबाद) आदि में एक मास प्रचार-कार्य करके आये थे। इस समय देशभर में जगह-जगह पर आपके शिष्य प्रचार-कार्य कर रहे हैं। श्री ब्र० देशपाल जी (स्वामी दीक्षानन्द महाराष्ट्रवाले) आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत धारण कर बिहार के संथाल परगना क्षेत्र तथा उड़ीसा में प्रचार-कार्य कर रहे हैं। आपके ही स्नातक वा शिष्य स्वामी धर्मानन्द सरस्वती (पूर्वनाम ब्र० धर्मदेव नैष्ठिक) भी उड़ीसा के कालाहाण्डी में गुरुकुल की स्थापना कर उस क्षेत्र में शिक्षा व जन-जागृति का महान् कार्य कर रहे हैं। स्वामी जी के शिष्य स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती (आचार्य हरिदेव) ने गुरुकुल गौतमनगर को पुन: जीवनदान देकर छ: गुरुकुल नये चलाये हैं। हरयाणा, उत्तरप्रदेश, राजस्थान और मध्यप्रदेश में तो अनेक स्थानों पर गुरुकुलों का संचालन आपके शिष्य कर रहे हैं। भारत में शायद ही कोई गुरुकुल होगा जहां आपके स्नातक सेवा-कार्य में न जुटे हों। दूसरी ओर आपके दर्जनों स्नातक विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों और स्कूलों में संस्कृत तथा राष्ट्रभाषा और इतिहास का अध्यापन कार्य कर रहे हैं। आपके अनेक स्नातक वा शिष्य ऐसे हैं जो समाज के पिछड़ेवर्गों से आकर गुरुकुलों में पढ़े और स्नातक होकर ऊंचे पदों पर पहुंचे। श्री दिलीप वेदालंकार आदि कई सज्जनों के आग्रह पर आपने अमेरिका में आर्यसमाज एवं भारतीय संस्कृति के प्रचार के लिये जाने की योजना बनाई थी।

इसी योजना के अन्तर्गत अगस्त १९८० में होनेवाले सार्वभौम आर्य महासम्मेलन में श्री स्वामी ओमानन्द जी लन्दन गये थे। वहां सार्वजनिक यज्ञ, विद्वत्सम्मेलन, शिक्षासंस्कृतिसम्मेलन, राष्ट्रमेधयज्ञ, यूथफोर्म, योगसम्मेलन, कविसम्मेलन, सार्वभौम आर्यमहासम्मेलन, विदेशी प्रतिनिधि सम्मेलन, विश्वधर्म सम्मेलन तथा संगीतकला सम्मेलन इत्यादि विशेष सम्मेलनों में भाग लिया। इसके अतिरिक्त श्री धर्मपाल जी, श्री जयसिंह जी आदि अनेक सज्जनों के परिवारों में पारिवारिक सत्संग और यज्ञ भी करवाये। इस प्रकार इंग्लैण्ड में १५ दिन रहकर अमेरिका के लासएंजेलैस आदि नगरों में यज्ञ और प्रचारकार्य किया। लासएंजेलैस में स्वामी जी के शिष्य डॉ० सुधीरकुमार आनन्द आर्यसमाज के

११. प्रकाशचन्द्र और नरेन्द्र जी किशोराणी दोनों भाई बम्बई, महाराष्ट्र १९७० में गुरुकुल झज्जर में प्रविष्ट हुए और स्नातक बने।

१२. ब्रह्मदत्त और सत्यकाम औरंगाबाद से आकर स्नातक बने। सत्यकाम पाठक नान्देड़ में प्राध्यापक है।

इस प्रकार आचार्य जी के प्रचार और तेजस्वी जीवन से प्रभावित दक्षिण भारत के अनेक आर्यों ने अपने पुत्रों को सुदूरप्रान्त हरयाणा के गुरुकुल झज्जर में अध्ययनार्थ भेजा था। ये सभी अच्छे विद्वान् वक्ता, प्रोफेसर, डॉक्टर आदि बने हैं। इनमें से श्री धर्मपाल मलवाड़े ने कुछ पंक्तियां आचार्य जी के बारे में इसी प्रकार लिखकर प्रेषित की हैं—

आचार्य जी की देन

१९५१ में मेरे चाचा जी श्री तुकाराम विठोबा मलवाड़े (पाटिल) ने मुझे गुरुकुल झज्जर में प्रविष्ट किया। मेरे लिये गुरुकुल का वातावरण, खान-पान, पोषाक, भाषा बिल्कुल भिन्न थे। मेरी मातृभाषा मराठी थी, यहां हिन्दी थी। लंगोट आदि वस्त्र गुरुकुल में थे, नंगे पैर यहां रहना पड़ता था और खानपान में नमक मिर्चरहित, छोंकरहित भोजन, जो प्रारम्भ में अरोचक था। गांव, शहर से दूर एकान्त में यह गुरुकुल था जहां उस समय लगभग २५ विद्यार्थी अध्ययन करते थे।

ऐसे वातावरण को देखकर मैं लगभग एक महीना रोता रहा और छः महीने जी न लगा। फिर धीरे-धीरे उस वातावरण में घुल-मिल गया। मन में निश्चय किया कि यहां की पढ़ाई शीघ्र समाप्त कर महाराष्ट्र जायेंगे, घर जायेंगे।

गुरुकुल झज्जर की दिनचर्या, यह आचार्य भगवान्देव जी की बहुत बड़ी देन लगती है—

प्रातः चार बजे हम हर ऋतु में उठते थे। ईश्वरप्रार्थना, शौच, स्नान (ठण्डे जल से), व्यायाम, सन्ध्या-हवन, प्रातराश, अध्ययन, भोजन, विश्राम, फिर अध्ययन, फिर चार बजे शौच, एक घंटा काम (खेत में हर प्रकार का काम) फिर व्यायाम, स्नान, सन्ध्या-हवन, भोजन, भ्रमण १५ मिनट (गीत गाते हुए), फिर अध्ययन और ठीक नौ बजे 'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु' मन्त्रोच्चारण के साथ शयन।

गुरुकुल के विषय में बहुत कुछ लिखा जासकता है परन्तु इस भागदौड़ की, आधुनिक वैज्ञानिक दुनिया में न किसी लेखक को वक्त है न किसी पाठक को पढ़ने का समय।

फरवरी सन् १९४७ में गुरुकुल झज्जर की रजतजयन्ती मनाने के पश्चात् स्वतन्त्र भारत में आचार्य जी ने दक्षिण हैदराबाद महाराष्ट्रादि में अनेक बार प्रचारयात्रायें की थीं। हैदराबाद सत्याग्रह के अमरशहीद भाई श्यामलाल जी के भाई बंसीलाल जी (वकील हाईकोर्ट) से आचार्य जी का विशेष परिचय हुआ था। वे आपको बार-बार दक्षिण भारत में प्रचारार्थ निमन्त्रित करते रहते थे और आप स्वयं भी उत्सव आदि में हैदराबादप्रान्त में जाते थे।

आचार्य जी से प्रभावित हैदराबाद महाराष्ट्र आदि के सुदूरवासी आर्यों ने अपने पुत्रों को अध्ययनार्थ गुरुकुल झज्जर में भेजा था।

१. सर्वप्रथम भाई बंसीलाल जी ने अपने पुत्र सत्यव्रत को गुरुकुल वेदविद्यालय दिल्ली में प्रविष्ट करवाया था। वह अष्टाध्यायी पढ़ने के पश्चात् जून १९५० में गुरुकुल झज्जर में आया और काशिका महाभाष्यादि पढ़कर १९५३ में स्नातक बना।

२. महादेव सुपुत्र यशवन्त गिरि आर्य लातूर उस्मानाबाद महाराष्ट्र से आकर १५-७-१९४९ में गुरुकुल झज्जर में प्रविष्ट हुआ।

३. धर्मपाल सुपुत्र पंढरीनाथ मलवाड़े गांव मुर्शीदाबाद, पो० बोरी त० लातूर, महाराष्ट्र से ३१-८-१९५१ को गुरुकुल झज्जर में प्रविष्ट हुआ।

४. डॉ० रवीन्द्रकुमार सुपुत्र चुक्कारेड्डी आर्य देगलमडी चिंचोली जिला गुलबर्गा से ३-११-१९५१ को गुरुकुल झज्जर में प्रविष्ट हुआ।

५-६. धर्मदेव, कुशलदेव दो छात्र १६-४-१९५८ में गुरुकुल झज्जर में आये थे। धर्मदेव अब स्वामी वेदरक्षानन्द सरस्वती है और प्रो० कुशलदेव (सेवानिवृत्त) आर्य-अनुसंधानकर्ता का देहान्त ९ जनवरी २०११ को कोलकाता में होगया।

७-८. नीतिमान और इन्द्रदेव दो भाई हैदराबाद से गुरुकुल झज्जर में अध्ययनार्थ आये थे।

९. धर्मवीर सुपुत्र भीमसेन आर्य चाकूर उस्मानाबाद, महाराष्ट्र से आकर १०-३-१९५८ में गुरुकुल झज्जर में प्रविष्ट हुआ था। स्नातक बनकर कानपुर विश्वविद्यालय से आयुर्वेदाचार्य भी बने। इस समय डॉ० धर्मवीर परोपकारिणी सभा अजमेर के मन्त्री हैं।

१०. सुरेशकुमार, शोलापुर, महाराष्ट्र से ११-७-१९६४ में गुरुकुल झज्जर में अध्ययनार्थ आया था।

फालीवाला तैल

गुरुकुल झज्जर के निकटवर्ती किसान संजीवनी तैल को ''फालीवाला तैल'' कहते थे। बैलों से हल चलाते समय बैल के पिछले पैर में हल की फाली लग जाने पर बैल के पैर से रक्त निकलने लगता है और पीड़ा के कारण बैल लंगड़ाता है अथवा हल को खींचने में असमर्थ होजाता है। चोट के स्थान पर संजीवनी तैल की विधिवत् पट्टी बांध देने पर बैल के पैर का रक्त वन्द होजाता है तथा पीड़ा भी शान्त होजाती है। कुछ काल विश्राम के पश्चात् बैल हल चलाने योग्य होजाता है। इस संजीवनी तैल का मैंने स्वयं अपने ऊपर और दूसरों पर भी अनेक बार सफल प्रयोग किया है। आचार्य जी की यह अनुपम खोज है।

सर्पदंशामृत

दक्षिण भारत प्रचारयात्रा में ही स्थानीय लोगों से नाकुली बूंटी का ज्ञान प्राप्त हुआ। उसके योग से आचार्य जी ने ''सर्पदंशामृत रस'' औषधी बनवाई थी। सांप के काटने पर यदि तुरन्त इसका सेवन करवा दिया जाये तो मृत्यु-भय से मुक्ति मिल जाती है। सलफास की जहरीली गोली खाये हुए व्यक्ति के भी इस के सेवन से प्राण वच गये थे।

विषचिकित्सा पर स्वामी जी ने ''सर्पविषचिकित्सा'' और ''बिच्छूविष-चिकित्सा'' दो पुस्तकें भी लिखी हैं।

विषनाशक आसव चूर्ण और वटी

स्वामी जी ने अपने जीवन के अन्तिम समय में कैंसर (अर्बुद) चिकित्सा पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया। नाकुली बूंटी से निर्मित ''सर्पदंशामृत रस'' का जो योग था उसमें अन्य विषनाशक औषधियां अपने ज्ञान, अनुसन्धान और अनुभव के आधार पर मिलाकर विषनाशक आसव, विषनाशक चूर्ण और विषनाशक वटी तैयार करवाई। स्वामी जी इनका प्रयोग कैंसर-चिकित्सा में करते थे। अनेक रोगियों को इनके सेवन से लाभ भी हुआ है। विशेषतया कैंसररोग की प्रथम अवस्था में।

अर्बुद (कैंसर) एक विषैला फोड़ा है। इसका विष रक्त के साथ सम्पूर्ण शरीर में प्रवाहित होजाता है। शरीर के विष को नष्ट करने के लिए ही उक्त औषधियों का प्रयोग किया जाता है।

मैंने चार हजार सूत्रों की अष्टाध्यायी कण्ठस्थ कर एकदम सुनाई। आचार्य जी ने मुझे 'महाभाष्य' भेंट में दिया और मेरा भोजनव्यय माफ किया। अष्टाध्यायी कण्ठस्थ करने के लिए मन एकाग्र करके सूत्रों की मन में ही पुनरावृत्ति करनी पड़ती थी। शौच जाते समय, स्नान करते समय, काम करते समय, यहां तक कि भोजन करते हुए भी पुनरावृत्ति करनी पड़ती थी।

हमें वर्ष में एक दिन की भी छुट्टी नहीं होती थी। चाची की मृत्यु की खबर मुझे ७ वर्ष के बाद मिली। इसी चाची इन्दिराबाई ने मेरी माता भागीरथीबाई की प्लेग से मृत्यु के बाद मुझे पाला-पोसा था। कहने का अर्थ गुरुकुल में गांव का वा किसी रिश्तेदार का कोई सम्बन्ध नहीं रहता। आचार्य जी के गर्भ में ही हमें शान्त रहना पड़ता था। इसी कारण हम कुछ प्राप्त कर सके।

आचार्य जी देशप्रेमी थे, उन्होंने हमें देशप्रेम सिखाया। आचार्य जी तपस्वी थे, उन्होंने हमें तपस्वी बनाया। आचार्य जी संयमी थे, उन्होंने हमें संयमी बनाया। आचार्य जी कर्मठ थे, उन्होंने हमें कर्मठ बनाया। खुद का काम खुद करने के लिए सिखाया। आचार्य जी एक आग की भट्ठी थे जिसमें हमें तपाया संकट झेलने के लिए। इसीलिए कहा जाता है—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

—**धर्मपाल पंढरीनाथ मलवाड़े**, सीताराम नगर,
लातूर (महाराष्ट्र) पिनकोड नं० ४१२१३१

हरयाणा-पंजाब, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, उड़ीसा, बिहार आदि के साथ-साथ नेपाल के विद्यार्थी भी गुरुकुल झज्जर के स्नातक बने हैं। यह सब आचार्य जी के तप, त्याग, प्रसिद्धि और प्रचार के कारण ही आकर्षित हुए।

संजीवनी बूंटी की खोज

दक्षिण भारत प्रचारयात्रा में आपने वाल्मीकिरामायण में वर्णित संजीवनी बूंटी की खोज की और उसके साथ अन्य आयुर्वेदिक औषधियां मिलाकर आपने गुरुकुल झज्जर की रसायनशाला में संजीवनी तैल का निर्माण करवाया जो चोट लगने अथवा शस्त्र से कटने पर शरीर से बहते रक्त को बन्द करता है और शरीरपीड़ा को शान्त करता है। अग्निदग्ध=अग्नि से जले हुए घावों को ठीक करता है और जलने से होनेवाली पीड़ा को शान्त करता है। बहते कान में डालने पर उसको ठीक करता है और बहरेपन में भी लाभदायक है।

तक सम्बद्ध रहा। ५७ वर्ष ३ महीने के सुदीर्घकाल में आचार्य जी के साथ रहने वा यात्रा के अनेक अवसर मिले। कुछ का संक्षिप्त वर्णन यहां किया जाता है। "**मेरी जीवन कहानी**" पुस्तक में भी आचार्य जी से सम्बद्ध अनेक घटनाओं का वर्णन मैंने किया है।

देवली गांव में चतुर्वेदपारायणयज्ञ और यात्रा

अष्टमी से पूर्णमासी तक ८ से १६ जून १९५४ ई० तक मा० जागेराम जी आर्य ने अपने गांव देवली (नई दिल्ली) में ऋग्वेदपारायण यज्ञ ताऊ स्वामी निर्भयदास जी की प्रेरणा और सहयोग से करवाया था। यज्ञ के ब्रह्मा थे आचार्य भगवान्देव जी और वेदपाठी थे गुरुकुल के बड़े ब्रह्मचारी वेदव्रत, यज्ञदेव, सुदर्शनदेव, राजवीर, देवशर्मा आदि। ग्राम में प्रचार के लिये भजनोपदेशक स्वामी नित्यानन्द जी भी साथ थे। ग्राम महीपालपुर के सूबेदार धीरजसिंह जी आदि भी यज्ञ में उपस्थित रहते थे।

विशेष घटना

गुरुकुल के ब्रह्मचारी और आचार्य जी नमक नहीं खाते थे। इसलिये हमारी दाल बिना नमक मिर्च मसाले के ही बनाई जाती थी। एक दिन मध्याह्नभोजन में मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि हमारी दाल में कुछ नमक का अंश है। मेरे कहने पर सब ने ध्यान से पुनः दाल खाकर देखी और कहा कि इस में नमक बिल्कुल नहीं है किन्तु मैं अपनी बात पर अड़ा रहा। आचार्य जी ने कहा यदि नमक होता तो स्वामी नित्यानन्द जी ने ऊपर से और नमक डाला है, इनकी दाल तो जहर हो जाती। आखिर मैंने कहा कि नमक जरूर है, बनानेवाली से इसकी तसल्ली की जावे। इस पर मा० जागेराम जी ने अपनी छोटी बहन कस्तूरी से पूछा, तब उसने बताया कि मैं दाल में नमक डालने लगी तब मुझे याद आया कि इसमें नमक तो नहीं डालना था। उस समय कुछ दाने नमक के दाल में गिर गये थे।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थयात्रा

प्रातःकाल और सायंकाल दोनों समय देवली में यज्ञ होता था। ११ जून को मध्याह्न भोजनोपरान्त गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ देखने का कार्यक्रम बनाया। देवली ग्राम से पूर्व में थोड़ी दूर पर ही पहाड़ पर गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ स्थित है। सड़क का मार्ग लम्बा था अतः हम नाक की सीध में पगडण्डी से सीधे पहाड़ पर चढ़ गये।

अनुभव से देखने में आया कि किसान अपने खेतों में विषैले कीटनाशकों का स्प्रे (छिड़काव) करते हैं तब विपरीत वायु चलने के कारण श्वास के साथ कीटनाशकों का विष छिड़काव करनेवाले किसान के शरीर में भी प्रविष्ट होजाता है। अनेक व्यक्ति इससे मर भी जाते हैं।

विषनाशक आसव के सेवन से स्प्रे द्वारा शरीर में प्रविष्ट विष भी नष्ट होता है। इसी प्रकार यह आसव मलेरिया ज्वर में भी लाभप्रद है। वैसे ज्वर के लिए स्वामी जी ने ज्वरामृत नाम से आसव बनवाया था जो मलेरिया बुखार की उत्तम औषधी है। कुछ वैद्यों ने विषनाशक आसव का भी ज्वर में प्रयोग किया और इसे लाभप्रद बतलाया है।

बलदामृत

खांसी, जुकाम, सिरदर्द, मानसिक थकावट और शारीरिक कमजोरी को दूर करने के लिए यह एक सुमधुर स्वादिष्ट और उत्तम औषधी है। इसका मैंने अपने ऊपर भी प्रयोग करके अत्यन्त लाभप्रद पाया है। इसके सेवन से पाचनशक्ति बढ़ती है और भूख लगती है। यह लाभप्रद होने के साथ-साथ मीठा भी है। यह ताजा अंगूरों के रस से बनाया जाता है।

नेत्रज्योति सुर्मा और नेत्रामृत

स्वामी जी द्वारा विकसित एवं निर्मित नेत्रज्योति सुर्मा और नेत्रामृत दोनों ही नेत्ररोगों में विशेष लाभप्रद हैं। नीरोग अवस्था में भी इनके प्रयोग से नेत्रज्योति बढ़ती है अथवा स्थिर रहती है, घटती नहीं।

१. संजीवनी तैल, २. सर्पदंशामृत, ३. विषनाशक आसव, ४. बलदामृत, ५. नेत्रज्योति सुर्मा और नेत्रामृत आदि। ये आयुर्वेद के ज्ञान, अनुसन्धान और चिकित्सा-अनुभव के आधार पर स्वामी जी द्वारा स्वनिर्मित योग हैं और अत्यधिक सफल हैं।

आचार्य भगवान्देव जी के साथ यात्राएं

—वेदव्रत शास्त्री

मैंने ३० दिसम्बर १९४५ को प्रात:काल आर्यसमाज मन्दिर नरेला (दिल्ली) की यज्ञशाला पर प्रथमवार आचार्य जी के दर्शन किये थे तब से दिसम्बर १९६४ तक १९ वर्ष पर्यन्त मैं गुरुकुल झज्जर में विद्यार्थी और उपाचार्य एवं सहायक मुख्याधिष्ठाता के रूप में रहा। तत्पश्चात् गुरुकुल से बाहर आने पर भी गुरुकुल का मन्त्री, कोषाध्यक्ष, प्रधान के रूप में तथा आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा के मन्त्री, कोषाध्यक्ष, उपप्रधान आदि के रूप में अन्तिम समय (२३ मार्च २००३)

हाथी, घोड़ों पर चढ़े हुए मनुष्यों की मूर्तियां हैं। तालाब के पश्चिम में विष्णु की मूर्ति है। मुख्य ऊंचे द्वार पर खम्बों पर टालियों के चित्र हैं। मूर्तियां भी हैं।

इससे प्रतीत होता है कि यह मस्जिद नहीं विष्णु मन्दिर था। इसी के प्रांगण में लोहे की लाठ (भीम की किल्ली) है, वह वास्तव में महाराजा चन्द्र का विजयस्तम्भ है। उसके पास के भवन पर संस्कृत में एक श्लोक लिखा है— "**यस्योद्वर्तयतः प्रतीपमुरसः**" इत्यादि। वैसे इस स्तम्भ पर भी ब्राह्मी (गुप्त) लिपि में लिखा हुआ है।

गान्धी अध्ययनकेन्द्र की स्थापना

८ सितम्बर १९५४ को गांधी स्मारक निधि पंजाब के संचालक श्री ओम्प्रकाश त्रिखा पट्टी कल्याणा से गुरुकुल झज्जर में पधारे थे। उन्होंने गुरुकुल झज्जर के सभी विभागों को देखकर जानकारी प्राप्त की, गुरुकुल में गान्धी अध्ययनकेन्द्र की स्थापना भी की थी। इस केन्द्र में अध्ययनार्थ गान्धी साहित्य भी रखा गया था। मुझे इसका मन्त्री बनाया गया था।

प्रो० शेरसिंह जी और आचार्य भगवान्देव जी आर्यसमाजी होने के साथ-साथ कांग्रेसी भी थे और गान्धी जी के स्वदेशी, स्वावलम्बन, स्वराज्य और ग्रामोत्थान जैसे विचारों से प्रभावित थे। प्रो० शेरसिंह जी ने गुरुकुल को ग्रामीण विश्वविद्यालय (देहाती यूनिवर्सिटी) बनाने के सम्बन्ध में लेख भी लिखे थे जो सुधारक मासिक पत्र के सितम्बर-अक्तूबर १९५३ के अंकों में छपे थे।

२७ अक्तूबर १९५४ को आर्यकुमार सभा नरेला के वार्षिकोत्सव पर आचार्य भगवान्देव जी ने प्रधानपद ग्रहण किया। मैं भी उन के साथ था।

सौराष्ट्र यात्रा

(५ से २९ नवम्बर १९५४ तक)

सौराष्ट्र गुजरात के ग्राम सणोसरा में १३ से १५ नवम्बर १९५४ तक अखिल भारतीय नई तालीम संघ का महासम्मेलन होना था। उस सम्मेलन में भाग लेने के लिये जानेवाले प्रतिनिधियों को रेल किराये में आधी छूट मिलती थी। हमने भी उसका लाभ उठाया और आचार्य भगवान्देव जी के साथ वेदव्रत, सुदर्शनदेव, महावीर, सोमवीर, मनुदेव, देवशर्मा, स्वामी नित्यानन्द, सूबेदार धीरजसिंह महिपालपुर दिल्ली, पं० राजपाल विहूनी गढमुक्तेश्वर और अतरसिंह माजरा जहाजगढ (झज्जर) कुल ११ सदस्यीय प्रतिनिधिमण्डल ने पूरी तैयारी करके देहली जंक्शन से ५

गुरुकुल में जाकर गुरुकुल देखा। तब वहां एक बहुत चौड़ा कुआं था, जिसे बावड़ी भी कह सकते हैं। ऊपर तक पानी भरा था। आचार्य जी के साथ हमने उस में स्नान किया। जिन्हें तेरना आता था उन में मैं भी एक था। गुरुकुल देखकर हम उसी पगडण्डी से वापस देवली आरहे थे। हमारे साथ सूबेदार धीरजसिंह जी आदि भी थे। वापसी के समय करणीसिंह सूटिंग रेंज में चांदमारी होरही थी। गोलियां चलरही थीं। बड़ी चिन्ता के साथ हमने उस स्थान को पार किया। वैसे चांदमारी से पूर्व स्थानीय लोगों को सूचना देकर वहां जाने से मना कर दिया जाता था किन्तु हमें इसकी सूचना नहीं मिली थी। यज्ञ के दिनों में ही आचार्य जी के साथ दिल्ली के ऐतिहासिक स्थलों की भी यात्रा की थी।

दिल्ली के ऐतिहासिक स्थलों की यात्रा

(१) कुतुब मीनार (यमुना स्तम्भ)

यह मीनार २३८ गज ऊंची है और इस के ऊपर चढने के लिए ३७९ पैड़ियां लगी हुई हैं। इसे सन् १२०२ में दिल्ली के पहले सुलतान कुतुबुदीन ऐबक ने शुरू किया। उसने सिर्फ नीचे की एक मंजिल बनवाई। बाद में अलतमस (१२१०-१२३५ ई०) ने इस मीनार को पूरा किया। फिरोजशाह तुगलक (१३५१-१३८८ ई०) ने सुधार किया और दो मंजिलों में रेलिंग भी लगाई।

(२) अलाई दरवाजा

खिलजीवंश के दूसरे सुलतान अलाउद्दीन ने सन् १३३१ में इसे बनवाया, इसी ने मस्जिद का दक्षिणी दरवाजा बढाया था।

(३) इमाम जामिन का मकबरा

सन् १५३९ में अपनी जिन्दगी में ही बनवाया। यह तुर्किस्तान का साधु था।

(४) अलाई मीनार

खिलजी वंश के दूसरे सुलतान अलाउद्दीन ने इसे सन् १३३१ में बनाना शुरू किया था, लेकिन कभी पूरा न होसकी।

(५) खिड़की मस्जिद

फिरोजशाह (१३५१-१३५८ ई०) के प्रधानमंत्री खानिजहां जूना शाह ने बनवाई। पहले यह पृथिवीराज का योगमाया मन्दिर था।

(६) मस्जिद कुव्वलतुल-इस्लाम (विष्णु मन्दिर)

मूर्ति में मेखला, यज्ञोपवीत तीन सूत्र का, मूर्तियों के मुख तोड़ रखे हैं। विष्णु की चार हाथ की मूर्तियां हैं। इसके प्रत्येक स्तम्भ पर चार-चार मूर्तियां हैं।

दो बहिनें चंचल और शान्ता नाम की रहती थीं, जो आर्यसमाज का प्रचारकार्य करती थीं। टंकारा में वह शिवमन्दिर भी देखा जहां पर स्वामी दयानन्द जी के पिता शिव-पूजा किया करते थे। तत्पश्चात् उस डेमी नदी पर गये जहां बालक मूलशंकर स्नान करता था। हमने भी उस नदी में स्नान किया। तत्पश्चात् स्वामी जी के पैतृक घर जाकर मूलशंकर का जन्मस्थान भी देखा। १२ तारीख को टंकारा से मोरवी, सुरेन्द्रनगर होते हुए सायंकाल सणोसरा स्टेशन पर पहुंचे। रात्रि स्टेशन पर बिताई। १३ ता० को प्रातःकाल सणोसरा गांव के सम्मेलनस्थल पर जाकर १३ से १५ ता० तक नई तालीम सम्मेलन में भाग लिया। राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद जी भी पधारे थे। सभी प्रान्तों के शिक्षामन्त्री उपस्थित थे। प्रो० शेरसिंह जी ने भी नई तालीमसम्बन्धी शिक्षासमितियों में प्रतिनिधित्व किया। इस तालीम के अन्तर्गत सहशिक्षा का विरोध किया। १५ तारीख को सौराष्ट्र के प्रसिद्ध वयोवृद्ध महात्मा रविशंकर जी के दर्शन किये। रविशंकर जी कट्टर आर्यसमाजी थे किन्तु महात्मा गांधी के सम्पर्क में आने पर कांग्रेस की ओर भी कुछ झुकाव होगया।

आबूपर्वत पर

सणोसरा से मोगर ग्राम निवासी ब्र० दिलीप के साथ गुरुकुल सोनगढ गये। वहां से वापस सणोसरा और फिर आबूरोड आगये। आबूरोड स्टेशन से माउंट आबू १८ मील है। पर्वत की चढ़ाई है। बसें भी जाती हैं घूमकर। सीधा रास्ता छोटा पड़ता है। हमने आबूरोड की धर्मशाला के एक कमरे में अपने बिस्तर आदि रखकर ताला लगा दिया और हम आचार्य जी के आदेशानुसार पैदल ही चल दिये। अनेक सज्जनों ने पैदल जाने पर हिंसक जानवरों के आक्रमण का खतरा भी बतलाया था। चले तब विचार था कि आबूपर्वत पर चढ़ाई करके हम सायंकाल तक वापस आबूरोड स्टेशन पर आजायेंगे किन्तु चलते-चलते दिन छिप गया। १६ तारीख को आबू से ४ मील नीचे पहाड़ पर बने एक जैनमन्दिर में रुक गये। शीतकाल था। वस्त्र हमारे पास नहीं थे। ऊपर जाते तो और अधिक ठण्ड मिलती। सूबेदार धीरजसिंह जी का फौजी किट्ट (बिस्तरबन्द) काफी भारी था। हमें बार-बार उठाना पड़ता था। तब सूबेदार साहब कहते थे यह आबू पर काम आयेगा। किन्तु वह आबूरोड स्टेशन की धर्मशाला में ही बन्द रहा। हमने एक कुर्ते और कटिवस्त्र में कमरे के कोने में बैठकर रात बिताई।

जैनमन्दिर में रहनेवाले जैनी ने हमें चोर डाकू समझकर मन्दिर में ठहरने

नवम्बर को रात के १०.३० बजे वाली मेल गाड़ी से प्रस्थान किया। ६ तारीख को प्रातः अजमेर पहुंचकर आर्यसमाज मन्दिर अजमेर में ठहरे। वहां लकवा रोगग्रस्त प्रसिद्ध आर्यकवि प्रकाशचन्द्र जी से मिले। इसके पश्चात् सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित वैदिक यन्त्रालय (प्रेस) देखने गये। वहां पर स्वामी दयानन्द जी के समय की एक मशीन भी देखी। यन्त्रालय का अपना विशाल भवन है जिसमें पृथक्-पृथक् विभाग हैं। वहां से हम दयानन्द आश्रम, दयानन्द सरस्वती भवन, ख्वाजा चिश्ती की दरगाह, राजा भिनाय की कोठी देखकर पुष्कर चले गये। इस के बारे में लोकोक्ति है **''ताल तो पुष्कर और सब तलैया''**। वहां का विष्णु मन्दिर और ब्रह्मा मन्दिर भी देखा। भारत में असंख्य मन्दिर हैं किन्तु ब्रह्मा का एक मन्दिर केवल पुष्कर में ही है अन्यत्र कहीं नहीं। पौराणिक कथानुसार ब्रह्मा ने पुष्कर में सृष्टिरचना की थी। इसकी पुष्टि में एक मन्त्रांश भी उद्धृत किया जाता है। ब्रह्मा मन्दिर के आगे सुन्दर चौक है जो चांदी के रुपयों से जड़ा गया है। मन्दिर के पुजारी से हमारा संस्कृत में वार्तालाप भी हुआ। तत्पश्चात् अजमेर आकर अनासागर, बारादरी, दौलतबाग और विशाल जैनमन्दिर बाहर से ही देखते हुए आर्यसमाज मन्दिर में आगये।

दूसरे दिन अजमेर से चलकर ब्यावर पहुंचे। ब्यावर रेलवे स्टेशन से आर्यसमाज मन्दिर गये। यह स्थान स्टेशन से पर्याप्त दूरी पर है। हमने एक घोड़ा तांगा करके सब का बिस्तर आदि सामान उस में रखकर अतरसिंह जी को साथ बैठा दिया और हम सब पैदल चले गये।

आर्यसमाज मन्दिर ब्यावर

आर्यसमाज ब्यावर का मन्दिर बहुत अच्छा बना हुआ था। स्वामी शान्तानन्द जी की व्यवस्था में वहां प्रतिदिन अखाड़े में आकर नवयुवक व्यायाम आसन आदि करते थे। वहां पर वासुदेव जी-रविदत्त जी आदि कार्यकर्ताओं से मिले, आचार्य जी का भाषण रात्रि में ८ बजे आर्यसमाज मन्दिर में हुआ। सेठ राधाकृष्ण कुन्दनलाल ने भाषण सुनकर दूसरे दिन प्रात:काल अपने घर पर भोजन का निमन्त्रण दिया। दूसरे दिन प्रात:काल भोजनोपरान्त हम ब्यावर स्टेशन पर पहुंचे परन्तु भारी भीड़ के कारण हम उस १० बजे की मेल गाड़ी में नहीं चढ़ सके। ११ बजेवाली पैसेंजर गाड़ी से आबूरोड पहुंचे। रात्रि स्टेशन पर ही बिताई। मोरवी होते हुए हम ११ तारीख को टंकारा पहुंचे। टंकारा के आर्यसमाज मन्दिर में उस समय

भी देखा। यह किला एक मील लम्बा-चौड़ा है। एक हजार सेना राजा-प्रजा यहां सुरक्षित रह सकते हैं। कहावत है—''**गढ़ तो चित्तौड़गढ़ और सब गढैया**''। २० तारीख को सायंकाल वापस गुरुकुल में पहुंच गये। भोजनोपरान्त गुरुकुल के बड़े ब्रह्मचारी सत्यव्रत, सत्यानन्द, यज्ञदेव, वेदपति के साथ हमारा व्याकरण-विषयक वार्तालाप भी हुआ। २१ को गुरुकुल में ही रहे। २२ ता० को उदयपुर पहुंचे। वहां धर्मशाला में गये तो ठहरने के लिए स्थान नहीं मिला। दूसरी धर्मशाला में गए तो वहां किराया लिया जाता था अतः वहां नहीं ठहरे। तत्पश्चात् तीसरी धर्मशाला में सब सामान रखकर उदयपुर देखने चले गये। वहां पर गवर्नमेंट आयुर्वेदिक फार्मेसी, आयुर्वेद कॉलेज, कमलाबाग और अजायबघर, चिड़ियाघर, राजा भूपालसिंह का जलमहल, राणा अमरसिंह का महल देखे। बिलम्ब होने के कारण सहेलियों की बाड़ी, लक्ष्मीमहल आदि स्थान नहीं देख सके।

नाथद्वारा और हल्दीघाटी

२३ तारीख को प्रातःकाल नाथद्वारा जाते समय मार्ग में '**एकलिंगेश्वर महादेव**' का मन्दिर देखा। यह मन्दिर लगभग एक हजार वर्ष पुराना है। इसके साथ ३०० ग्राम लगे हुए हैं। इसकी वार्षिक आय लाखों में है। उदयपुर की राजगद्दी इसी मन्दिर के अधीन है। महाराणा सज्जनसिंह ने इसी मन्दिर की गद्दी स्वामी दयानन्द को सौंपने की बात कही थी किन्तु मूर्तिपूजा का खण्डन न करने की प्रार्थना के साथ। स्वामी जी ने कहा था इस छोटेसे राज्य को तो मैं एक दौड़ लगाकर पार कर सकता हूं किन्तु सर्वव्यापक ईश्वर के राज्य को पार नहीं कर सकता। इसके पश्चात् हम नाथद्वारा गये और वहां से १३ मील दूर हल्दीघाटी देखने गये, जहां पर अकबर के साथ महाराणा प्रताप का युद्ध हुआ था। उस स्थान की मिट्टी पीले रंग की हल्दी के समान है। इस घाटी से थोड़ी दूर महाराणा प्रताप के घोड़े चेतक की समाधि बनी हुई है। हम जाते समय नाथद्वारा से १३ मील पैदल गये थे किन्तु वापस मोटर द्वारा नाथद्वारा आये।

नाथद्वारा भी तीर्थस्थान है। नाथद्वारा मन्दिरों का शहर है। प्रतिदिन लाखों रुपयों का चढ़ावा चढ़ता है। ''**ठगद्वारा ठेठ का नाथद्वारा नाम**'' कहावत प्रसिद्ध है। नाथद्वारा से २४ तारीख को मारवाड़ होते हुए हम आर्यसमाजमन्दिर ब्यावर में ठहरे। २५, २६ ता० को हम ब्यावर में ही रहे। आचार्य भगवान्देव जी के दोनों दिन वहां व्याख्यान हुए। २७ को अजमेर आकर वैदिक साहित्य खरीदा और रात्रि

की अनुमति नहीं दी। पहले तो उसे धमकाया और बाद में प्यार से समझाया तो उसने हमारे लिए एक कमरा खोल दिया। नीचे बिछाने के लिए एक दरी भी दी। भोजन बनाने के लिए बर्तन और लकड़ियां भी दीं। पहाड़ पर रहनेवाले भील लोगों से हम आटा खरीदकर लाये, सब्जी के लिये एक कोहला भी खरीदा। स्वयं पकाकर भोजन करके सोगये। सर्दी में बिना वस्त्रों के नींद भी कम ही आई। लगभग ३ बजे आचार्य भगवान्देव जी ने सबको उठा दिया। नित्यकर्म करके हम ऊपर की यात्रा पर चल दिये। ८.३० बजे आबू पहुंचे। वहां पर नक्की तालाब आदि दर्शनीय स्थान देखकर १० बजे पुनः उसी जैनमन्दिर में आकर भोजन बनाकर खाया और पैदल ही चलकर आबूरोड स्टेशन की धर्मशाला में सायंकाल ५.३० बजे पहुंचे।

आबू राजस्थान का सुन्दर और स्वास्थ्यप्रदस्थान माना जाता है इसीलिए स्वामी दयानन्द जी को भी रुग्णावस्था में स्वास्थ्यलाभार्थ वहां लेजाया गया था। १७ तारीख की रात आबूरोड धर्मशाला में बिताई। १८ को प्रातःकाल मारवाड़ होते हुए सायंकाल १० बजे गुरुकुल चित्तौड़गढ़ पहुंचे। १९ तारीख को चित्तौड़गढ़ के राजा भूपाल का महल, रुण्डेश्वर महादेव का मन्दिर देखा। स्थानीय लोगों के कथनानुसार स्वामी दयानन्द जी भी इस मन्दिर में ठहरे थे। मन्दिर के पुजारी चन्द्रशेखर ने बताया कि मेरे दादा खेमचन्द जी के काल में स्वामी जी इस मन्दिर में ठहरे थे।

चित्तौड़गढ़ के दर्शनीयस्थान

२० तारीख को प्रातःकाल १० बजे चित्तौड़ का किला देखने के लिये चले। गुरुकुल के ब्र० सत्यानन्द (सत्यानन्द वेदवागीश) दुर्ग दिखाने के लिए हमारे साथ गये। वहां पर महाराणा रत्नसिंह का मन्दिर, अन्नपूर्णादेवी मन्दिर, कुक्कुड़ेश्वर महादेव मन्दिर, चारभुजा का मन्दिर, भीमगोडा बावड़ी, महाराणा फतहसिंह का मन्दिर, कीर्तिस्तम्भ, ८०० फीट ऊंचा सूरजपोलद्वार, नीलकण्ठ महादेव का मन्दिर, जैनमन्दिर, प्राचीन तोपघर, नोलखा खजाना, महाराणा कुम्भा का मन्दिर, कुम्भ श्याममन्दिर, सतीकुण्ड, महाराणा कुम्भा का विजयस्तम्भ, समिधेश्वर महादेव का मन्दिर, महाराणा प्रताप का जन्मगृह, सूर्यकुण्ड, भीमताल, कालका माता मन्दिर, महाराणी पद्मिनी का महल, अल्लाऊदीन खिलजी का कारागृह, गजस्थल, गोरा-बादल की समाधि, चित्रांगद मौर्वी का तालाब, गोमुखी तडाग, किले का गुप्तद्वार

आचार्य जी के भाषण भी हुए। अन्य विद्वानों के भाषण भी सुने। २ जनवरी को गुरुकुल घटकेश्वर देखकर सायंकाल ८ बजे दौंड होते हुए अहमदनगर के लिए प्रस्थान किया। मध्याह्नोत्तर तीन बजे अहमदनगर पहुंचे और वहां के आर्यसमाज मन्दिर में ठहरे। वहां पर खटमल बहुत थे। रात्रि में सुख की नींद नहीं ले सके। मैंने यहां पहली बार खटमलों के दर्शन किये।

४ जनवरी को रात्रि के ९ से ११ बजे तक अहमदनगर के बैंक हाल में आचार्य भगवानदेव जी का व्याख्यान हुआ। विषय था—साम्राज्य कैसे हो? ५ जनवरी को आश्रम-व्यवस्था पर व्याख्यान हुआ। अहमदनगर का आयुर्वेद कालेज और फार्मेसी भी देखी। हम प्रतिदिन प्रातःकाल आर्यसमाज से शारदा मिल में शौच-स्नानादि के लिये जाते थे।

फौज में व्याख्यान

६ जनवरी १९४७ को फौज के राधाकृष्ण मन्दिर में (सैनिक के) कर्नल श्री सम्पूर्णसिंह ने शराब के विरोध में आचार्य जी का व्याख्यान कराया। उसी दिन सायंकाल मेजर आत्मसिंह (R.T.R.) ने दूसरे मन्दिर में मांसादि के निषेध और गोपालन विषय पर आचार्य जी का व्याख्यान कराया।

मेजर आत्मसिंह मथुरा (उ.प्र.) के रहनेवाले थे। लम्बे कद के सुन्दर नौजवान थे। उनकी धर्मपत्नी भी अच्छी गृहिणी थी। उन्होंने अपने निवास पर हमें भोजन कराया। वह मेजर साहब के शराब मांस सेवन से बहुत दुःखी थी। उसकी प्रार्थना पर आचार्य जी ने उनके घर पर प्रातःकाल यज्ञ करवाकर उन्हें यज्ञोपवीत धारण करवाया और शराब मांस छोड़ने का नियम करवाया। मेजर साहब ने प्रतिज्ञा की कि आज के बाद घर में शराब मांस का सेवन नहीं करूंगा। मिलीट्री मैस आदि में भी सेवन न करने का पूरा प्रयत्न करूंगा। उन्होंने अपने निवास पर गाय भी रखी। बाद में भी उनका गुरुकुल से सम्पर्क रहा।

६ जनवरी १९४७ को बस द्वारा अहमदनगर से चलकर पूना शिवाजीनगर पहुंचे २ बजे। वहां भण्डारकर इन्स्टीट्यूट देखा और आनन्द आश्रम पूना-२ में भी गये किन्तु सायंकाल विलम्ब होने के कारण वह बन्द हो चुका था। ८ तारीख को प्रातःकाल ६ बजेवाली जनता रेल से बम्बई के लिए प्रस्थान किया। पूना से क्रान्तिकारी-विचारक साहित्य भी खरीदा था।

१०॥ बजे बम्बई में सेठ प्रतापसिंह शूर जी वल्लभदास के निवास कच्छ कैसल पर गये। वहां पर स्नान-भोजन आदि किया। सेठजी के यहां भोजन तो

की रात के २८ को देहली आगये और आर्यसमाज दीवानहाल में ठहरे। यहां आर्यसमाज दीवानहाल का उत्सव देखा। व्याख्यान सुने। २९ अक्तूबर को गुरुकुल झज्जर में आगये।

५ से २९ अक्तूबर १९५४ तक २५ दिन की हमारी यह यात्रा सुखद और आनन्ददायक रही। हमने आर्यसमाज और स्वामी दयानन्द के जीवन से जुड़े स्थानों को निकटता से देखा। चित्तौड़ के किले पर प्रथमवार सीताफल के छोटे-छोटे वृक्ष देखे और उनसे सीताफल तोड़कर खाये भी।

रोहतक जिले के ग्रामों की यात्रा

२८ फरवरी १९५५ से ८ मार्च १९५५ तक [illegible] दिन तक मैं आचार्य जी के साथ रहा। आचार्य जी के पास इस समय एक पुरानी जीप थी। ग्रामों में जाकर आर्यकुमारसभाओं की स्थापना करते थे। यज्ञोपवीत देते थे। स्कूलों में भाषण देते थे। सम्भवतः यह आर्यमहासम्मेलन की तैयारी के सम्बन्ध में यात्रा थी। टिटौली के स्कूल के छात्र ने "भाई बन्धु और कुटुम्ब कबीला कुछ साथ न जाता है" इत्यादि भजन भी सुनाया था।

२८ फरवरी १९५५ को रोहतक से चलकर, टिटौली, [illegible], [illegible], [illegible], मदीना, कुलताना, सांपला, [illegible], [illegible], बहादुरगढ़, टीकरी, [illegible], [illegible], [illegible], सोनीपत, भैंसवाल, गुरुकुल भैंसवाल, किलोई, लाढ़ौत, [illegible], मकड़ौली (छोटी बड़ी दोनों), सुखपुरा, रोहतक, देहली, नरेला ६ मार्च को पहुंचे। इस ग्रामयात्रा में मैं ८ दिन आचार्य भगवान्देव जी के साथ रहा था। ६ मार्च को गुरुकुल [illegible] और ८ मार्च को नरेला जाकर गुरुकुल झज्जर गये।

दक्षिणभारत यात्रा

२४ दिसम्बर १९५६ को दोपहर हैदराबाद जाने के लिये आचार्य भगवान्देव जी के साथ गुरुकुल से चलकर नई दिल्ली रेलवे स्टेशन पहुंचे। ५.३० बजे की ग्रांड ट्रंक एक्सप्रेस से नई दिल्ली से चलकर पलवल, मथुरा, आगरा, भोपाल, इटारसी, आमला, [illegible], [illegible], [illegible], नागपुर, वर्धा, काजीपेट होते हुए २६ तारीख को प्रातःकाल ८ बजे हैदराबाद पहुंचे। २७, २८, २९ दिसम्बर तक आर्य प्रतिनिधि सभा हैदराबाद की स्वर्णजयन्ती में सम्मिलित रहे और ३०, ३१ तथा १ जनवरी १९५७ तक आर्यसमाज सुलतान बाजार का वार्षिकोत्सव था। २ जनवरी को आर्यकुमारसभा सुलतान बाजार का प्रथम उत्सव हुआ। इस सब में

पंजाब सरकार उन्हें जीवित वा मृत किसी भी रूप में पकड़ना चाहती थी। इस गिरफ्तारी से बचने के लिये हमने लम्बा रास्ता चुना। १२ तारीख को रसूलपुर से शाहपुर, शाहपुर से मुजफ्फरनगर, मुजफ्फरनगर से मेरठ होकर हाथरस, हाथरस से मथुरा, भरतपुर, बांदीकुई होते हुए हम १३ की रात्रि में जयपुर पहुंचे। १४ तारीख को प्रातःकाल जयपुर से वापस सीकर झुंझुनूं होते हुए नारी खेतड़ी स्टेशन पर उतरकर घासीकाबास पहुंच गये। यह मार्ग बहुत लम्बा था। समय और किराया भी अधिक लगा किन्तु उत्तरप्रदेश से सीधे राजस्थान में आगये। दिल्ली और पंजाब की पुलिस की पकड़ से बाहर रहे। दूसरी बात यह भी थी कि इस मार्ग में आचार्य जी के परिचितों के मिलने की भी संभावना नहीं थी। सत्याग्रह की समाप्ति तक आचार्य भगवान्देव जी वहीं हमारे खेत के कुएं पर रहे। वहां से ही सत्याग्रह का संचालन किया। समय मिलने पर **देशभक्तों के बलिदान** पुस्तक के लिए राजस्थानसम्बन्धी लेख भी लिखते रहे।

मैं १५ तारीख को वहां से चलकर १६ नवम्बर को प्रातःकाल १० बजे गुरुकुल में आगया। आचार्य जी की भोजन आदि की व्यवस्था और सुरक्षा का प्रवन्ध बड़े भाई बृजलाल जी ने किया जो उनके बहुत पुराने फौज के और गुरुकुल झज्जर में कार्यकर्ताकाल के, सुपरिचित थे।

रघुवीरसिंह जी शास्त्री द्वारा प्राप्त सत्याग्रह-सम्बन्धी जानकारी देने के लिये २० नवम्बर को मध्याह्नोत्तर १ बजे गुरुकुल से चलकर रेवाड़ी लोहारू चिड़ावा होता हुआ २१ तारीख को प्रातःकाल आचार्य जी के पास घासीकाबास गया। सब समाचार दिये। दिन में चिड़ावा आकर श्रीकृष्ण पुस्तकालय से आचार्य जी को अभीष्ट पुस्तकें लेजाकर दीं। २२ तारीख को प्रातःकाल चलकर बस के मार्ग से सायंकाल ८ बजे गुरुकुल में आगया।

इस प्रकार गुरुकुल, हिन्दी सत्याग्रह और आचार्य भगवान्देव जी से सम्पर्क रखने आदि के निमित्त दिन में, रात में, बस से, रेल से, साइकल से और पैदल चलकर भी मैंने कार्य किया।

अभी तक मैंने गुरुकुल के अन्दर रहकर ही गुरुकुल का संचालन किया था। गुरुकुल के अन्न-धन-चारा संग्रह आदि का कार्य मुझे नहीं करना पड़ता था। किन्तु आचार्य भगवान्देव जी के भूमिगत होजाने पर संस्था का पूर्ण कार्यभार मुझ पर आगया था। फतहसिंह भण्डारी, हरिशरण आदि भी सत्याग्रह के कारण गुरुकुल से बाहर ही रहते थे। गुरुकुल की गोशाला के लिए बाजरा ज्वार की

पाचकों ने ही पकाया किन्तु भोजन के समय हमारे निकट बैठकर सेठानी जी ने अपने सन्मुख भोजन करवाया। भोजन के समय छोटे-छोटे फुलके आरहे थे, एक फुलके के दो ही ग्रास बनते थे। आचार्य जी ने धीरे-धीरे खाने का इशारा किया और यह भी बताया कि भोजनान्त में चावल देने की भी यहां परिपाटी है।

सेठ प्रतापसिंह जी जब तक रहे, तब तक स्वामी जी के पास प्रतिवर्ष नई डायरी भेजते रहे।

तत्पश्चात् हमने संस्कृतग्रन्थों के प्रमुख प्रकाशक निर्णयसागर प्रेस और श्रीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस में जाकर पुस्तकें खरीदीं। चौपाटीपथ पर स्थित कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी द्वारा स्थापित भारतीय भवन में भी गये और वहां का भी कुछ परिचय प्राप्त किया। आज पहली बार चौपाटी पर जाकर समुद्र के निकट से दर्शन किये। १० जनवरी को सायंकाल ५ बजे पंजाब मेल से चलकर बीना, झांसी, आगरा, मथुरा होकर ११ तारीख को सायंकाल ९ बजे नई दिल्ली रेलवे स्टेशन पर पहुंचे और रात्रि सम्राट् प्रेस पहाड़ी धीरज दिल्ली-६ में बिताई। १२ ता० को प्रातःकाल आचार्य जी नरेला चले गये और मैं ९॥ बजे प्रातःकाल गुरुकुल झज्जर पहुंच गया। इस प्रकार १९ दिन तक आचार्य जी के साथ सेवक के रूप में यह **दक्षिणभारत यात्रा** सम्पूर्ण हुई और भ्रमण में अनेक नये स्थान देखे। नये अनुभव हुये।

उत्तरप्रदेश से राजस्थानयात्रा

पंजाब के १९५७ के हिन्दीरक्षा आन्दोलन और सत्याग्रह के समय पंजाब सरकार ने आचार्य जी के गिरफ्तारी वारण्ट कर दिए थे किन्तु आचार्य जी गुप्त रहकर सत्याग्रह का संचालन कर रहे थे।

१० नवम्बर १९५७ को विद्यार्यसभा गुरुकुल झज्जर की बैठक १२ बजे गुरुकुल झज्जर में हुई। उस में मुझे ज्ञात हुआ आचार्य भगवान्देव जी बीमार होगये हैं। ११ नवम्बर को प्रातःकाल ६ बजे ही मैं रसूलपुर मुजफ्फरनगर (उ०प्र०) के लिए चल दिया और सायंकाल तक पहुंच गया। आचार्य जी ने बताया कि हल्का ज्वर और दमे की शिकायत होगई है। सर्दी का मौसम है। तर इलाका है। ऊपर से घी डालकर उड़द की दाल भोजन में दे देते हैं इत्यादि। किसी शुष्क स्थान पर जाने से स्वास्थ्य सुधर सकता है। मैंने कहा मेरी जन्मभूमि घासीकाबास सब से बढिया शुष्क और सुरक्षित स्थान है वहां चलो। आचार्य जी सहमत होगये। किन्तु राजस्थान के लिये मार्ग में देहली और रेवाड़ी में पकड़े जाने की संभावना थी।

का घर पूछा और मिलने की बात कही। उसने इनको अपने नोहरे के आगे वृक्ष की छाया में बैठा दिया। गजाधर के नोहरे के आगे काफी बड़ा घेर (बाड़ा) है। उसमें कई नीम के पेड़ छाया के लिये लगा रखे थे। उसमें उनके तथा पड़ौसियों के कई ऊंट बंधे हुए थे। कुछ देर बैठे रहने पर भी जब गजाधर ने बृजलाल जी से नहीं मिलवाया तो इनको शक होगया कि हम राजस्थान की पुलिस चौकी में फंस गये। उधर गजाधर ने इन पर शक किया कि ये पंजाब की सी.आई.डी. के आदमी हैं। शक सबसे बड़ा भूत वा डर होता है। गजाधर अपने पड़ोसी भाइयों से बात कर रहा था। बाबू रघुवीरसिंह जी सरकारी सर्विस में थे। इन्हें अपनी नौकरी का भय होगया। वे वहां से भागने की तैयारी में थे। गजाधर ने इनको पकड़ लिया। बाबू जी छुड़ाकर भागने लगे तो गजाधर ने अपनी जेब से चाकू निकालकर इनकी जांघ पर वार किया। चाकू साधारण था, उसने पैंट को तो चीर दिया किन्तु जांघ में चोट नहीं लगी और बाबूजी छुड़ाकर भाग गये। वे खेतों में से दौड़ते हुए लगभग १० मील का रास्ता तय करके पिलानी पहुंचे और प्रात:काल की दिल्ली जानेवाली पहली बस से रोहतक पहुंचकर अपने दफ्तर में हाजरी लगाई।

उधर ओम्प्रकाश मिस्त्री ने अपना परिचय दिया तथा ड्राइवरी लाइसेंस दिखाया और कहा मेरी मोटर साइकल थोड़ी दूर पर छौंर के बाड़े में खड़ी है। उसको आचार्य जी से मिलवाया। बाबू रघुवीरसिंह जी को इधर-उधर ढूंढा किन्तु वे तो सीधे पिलानी पहुंच चुके थे।

उसी दिन पं० रघुवीरसिंह शास्त्री भी आचार्य जी के पास मिलने गये हुए थे। मैं ३० नवम्बर को ही रात्रि की रेल से चलकर रेवाड़ी होता हुआ १ दिसम्बर को प्रात:काल ९.३० बजे गुरुकुल में आगया।

२८ दिसम्बर को सायंकाल प्राइवेट कैंटर द्वारा रोहतक गया। रात्रि के १२ बजे गुरुकुल का सत्याग्रही जत्था रोहतक जेल से छूटा, **सत्याग्रह स्थगन २८ दिसम्बर की घोषणा** के बाद। २९ दिसम्बर ५७ को प्रात: मैं रोहतक से ही पिलानी चिड़ावा होता हुआ घासीकाबास आचार्य जी के पास पहुंचा और ३० ता० को इसी बस मार्ग से वापस गुरुकुल झज्जर ७.३० बजे आगया।

झज्जर से अजमेर ४ दिन

२६ अक्तूबर १९६२ को आचार्य भगवान्देव जी के साथ प्रात:काल गुरुकुल झज्जर से चलकर बस द्वारा रेवाड़ी गया। रेवाड़ी से दिल्ली एक्सप्रेस द्वारा साढे पांच बजे जयपुर पहुंचे और आर्यसमाज किशनपोल में ठहरे।

पूलियां दान द्वारा संग्रह का समय था। इस के लिये मैं पहली बार तैयार होकर साइकल द्वारा चारा संग्रहार्थ निकला।

२८ ता० को प्रात:काल दादरी से इमलोटा, ठींठ, मिलकपुर १०५० पूलियां दान की लिखीं। मिलकपुर से वापस ठींठ, इमलोटा होकर मातनहेल गया। २९ नवम्बर को हरिशरण जी ने मातनहेल जाकर मुझे सूचना दी कि आपको बाबू रघुवीरसिंह जी ने रोहतक बुलाया है। जाना बहुत जरूरी है। मैं चारा-संग्रह का कार्य मध्य में ही छोड़कर बाबू जी के पास रोहतक पहुंचा। वे घबराये हुए थे। उन्होंने बताया कि मैं और ओम्प्रकाश (बलियाना) आचार्य जी से मिलने के लिए राजस्थान गये थे। वहां के पुलिस थाने में फंस गये। मैं तो छुड़ाकर रातोंरात नूनियां गोठड़ा से नाक की सीध में सीधा पिलानी पहुंचकर बस द्वारा रोहतक आगया किन्तु ओम्प्रकाश वहीं है, आप तुरन्त वहां जाओ। मैं रोहतक से चलकर २ बजे गुरुकुल पहुंचा और वहां से बस द्वारा रेवाड़ी और रात्रि की रेल से लोहारू चिड़ावा तक पहुंच गया। ३० नवम्बर को प्रात:काल चिड़ावा से घासीकावास तक पैदल गया।

विशेष-घटना

हमारे गांव घासीकावास जाने के लिये पहले नूनियां गोठड़ा जाना पड़ता है, वहां से एक मील उत्तर में चलकर घासीकावास खेतों में बसा हुआ है। हमारा अभिजन (पैतृकगांव) तो नूनियां गोठड़ा ही है। नूनियां गोठड़ा के पूर्व में गजाधर का मकान है। गजाधर भाई बृजलाल का फौज का साथी था। उसके नोहरे के आगे से बास में जाने का रास्ता है। अत: सुरक्षा की दृष्टि से भाई ने गजाधर की ड्यूटी लगा रखी थी कि पंजाब हरयाणे से कोई आचार्य भगवान्देव जी से मिलने वा पूछने आवे तो आप ध्यान रखना।

आचार्य भगवान्देव जी से मिलने के लिए बाबू रघुवीरसिंह जी मिस्त्री ओम्प्रकाश की मोटर साइकल पर सवार होकर रोहतक से चिड़ावा पहुंच गये। उस समय आगे की सड़क कच्ची थी, जहां तक संभव हुआ ये मोटर साइकल से गये। अधिक रेतीला मार्ग आने पर मोटर-साइकल को रास्ते के साथ लगे पूलियों के छौर के साथ के बाड़े में खड़ा करके आगे पैदल ही चल पड़े। इनके पास आचार्य जी के लिये भेजी गई औषधि, वस्त्र और पुस्तकों से भरा एक बड़ा थैला भी था। ये नूनियां गोठड़ा पहुंचकर गजाधर से ही टकरा गये। इन्होंने बृजलाल जी

सायंकाल ठा० देवीसिंह जी से मंडावा हाउस में मुद्राओं के विषय में मिलने गये। उन्होंने २७ तारीख का समय दिया अत: २७ को दोपहर पुन: उनसे मिलने गये।

२७ ता० को प्रात:काल आर्यसमाज किशनपोल के दीपावली यज्ञ में सम्मिलित हुए। **महर्षि दयानन्द के उपकार** विषय पर आचार्य जी का व्याख्यान हुआ। अपराह्न में बस द्वारा अजमेर गये।

पं० बुद्धदेव जी की संन्यास दीक्षा

२८ अक्तूबर १९६२ को प्रात:काल सरस्वती भवन अजमेर की यज्ञवेदी पर श्री **पं० बुद्धदेव विद्यालंकार** ने स्वामी व्रतानन्द जी से संन्यास दीक्षा ली और समर्पणानन्द सरस्वती बने।

वहां २८ को पं० बुद्धदेव जी के संन्यास-संस्कार में सम्मिलित हुए। आवश्यक पुस्तकें खरीदीं। प्रेस का महाभाष्यसम्बन्धी हिसाब किया। २९ को सायंकाल आचार्य जी सिकन्दराबाद चले गये और मैंने वापस गुरुकुल झज्जर के लिये प्रस्थान किया।

स्वामी ओमानन्द जी के साथ चार यात्राएं

—डॉ० सुरेन्द्रकुमार

स्वामी ओमानन्द जी महाराज के जिन गुणों ने मुझे अधिक प्रभावित किया है, वे हैं—त्याग, तप, कर्मनिष्ठा, संघर्षमय जीवन, अथक-परिश्रम, पुरातात्त्विक ऐतिहासिक सामग्री के संग्रह का दीवानापन और 'चरैवेति'='बढ़ते चलो' की सतत लग्न। आर्यसमाज के क्षेत्र में जहां तक मुझे जानकारी है, अन्य क्षेत्रों में भी इन गुणों से समन्वित एक व्यक्तित्व स्वामी ओमानन्द जी के अतिरिक्त मेरी जानकारी में नहीं है। वेशभूषा से वे संन्यासी भले ही ४-४-१९७० को बने हों, लेकिन कर्मणा परिव्राजक वे अपने प्रारम्भिक जीवन से ही रहे। शहीद भगतसिंह की फांसी की घटना से विक्षुब्ध और प्रेरित होकर उन्होंने कॉलेज की शिक्षा को छोड़ दिया तथा स्वतन्त्रता आन्दोलन में सक्रिय योगदान देने के लिये स्वयं को समर्पित कर दिया। स्वतन्त्रताप्राप्ति के पश्चात् इकलौता पुत्र होते हुए भी नरेला में स्थित अपनी लाखों रुपये की सम्पत्ति त्यागकर, तपस्वी बन, सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास आदि कष्टों को सहन करते हुए अथक परिश्रम के साथ निष्कामसेवा में तल्लीन हुये परिव्राजक बनकर विचरण करते रहे। वैदिकधर्म और आर्यसमाज के

प्रचार एवं प्रसार के लिये समाज-सुधार एवं खण्डहरों के अन्तस्तल में छिपी पुरातात्त्विक सामग्री के एकत्रण और अनुसंधान के लिए।

स्वामी जी का सारा जीवन भ्रमण-यात्राओं में ही बीता। उन्होंने सैकड़ों देश-विदेश की यात्राएं की हैं। ऐसी यात्राओं के माध्यम से ही उन्होंने निजी सम्पत्ति, दान, अनुदान से लाखों की पुरातात्त्विक सामग्री जुटाई है, जिस सामग्री से गुरुकुल झज्जर (हरयाणा) और कन्या गुरुकुल नरेला (दिल्ली) में पृथक्-पृथक् पुरातत्त्व-संग्रहालयों की स्थापना की। ये संग्रहालय इन गुरुकुलों के महत्त्वपूर्ण दर्शनीय विभाग हैं, जिन्हें देखने के लिए प्रतिवर्ष अनेक देश-विदेश के दर्शक, पुरातत्त्वविद्, इतिहासानुसंधानकर्त्ता, शोधार्थी गुरुकुलों में पहुंचते हैं। ऐसे विशिष्ट व्यक्ति के साथ उनके निर्देशन में कुछ यात्राएं करने का मुझे भी अवसर प्राप्त हुआ है जिसे मैं अपना सौभाग्य ही समझता हूं।

१. दिल्ली-उत्तरप्रदेश की यात्रा—

२३ मार्च १९६४ को स्वामी जी ने मुझे, श्री बलदेव जी (आचार्य गुरुकुल शुक्रताल, मुजफ्फरनगर), हमारी श्रेणी के साथी श्री योगानन्द जी (वर्तमान विधानसभा अध्यक्ष दिल्ली), श्री आनन्ददेव जी (सेवानिवृत्त प्रवक्ता, दिल्ली प्रशासन) और चन्द्रदेव जी (वर्तमान आचार्य, संन्यास आश्रम, गाजियाबाद) को साथ लेकर जीप से दिल्ली-उत्तरप्रदेश की ओर प्रस्थान किया। पहले स्वामी जी को उत्तरप्रदेश के गांव **उमाही** और **अम्बेहटा** में आर्यसमाज के उत्सवों में भाषण देना था। स्वामी जी के इतिहास अनुसंधान और आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार के कार्य साथ-साथ चलते थे। दिल्ली होते हुए 'सम्राट् प्रेस' पहाड़ी धीरज में पं० जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती से मिलकर उनसे आर्यसमाज के विषय में कुछ विचार-विमर्श करके रात्रि को उत्तरप्रदेश के गांव **सूप** में श्री सुखवीरसिंह जी के यहां जाकर ठहरे।

स्वामी जी का निजी सुख-सुविधाओं की ओर बिल्कुल लगाव नहीं था। स्वामी जी चन्दा, दान आदि से अपनी संस्थाओं का संचालन करते थे, इसलिये कम से कम व्यय की वस्तुओं से अपना काम चलाते थे। इसी भावना के कारण इन्होंने कभी अपने पास नई सजी-संवरी जीप भी नहीं रखी। अनेक यात्राओं में साथ रहकर मैंने देखा है कि इस प्रकार की गाड़ियों से खतरा और कष्ट उठाना उनकी आदत-सी बन गई थी।

गुम्बद पर लोहे की कील जैसी तीन शलाकायें लगी थीं जिनमें बीच की शलाका सीधी और अगल-बगलवाली कुछ गोलाकार होकर बाहर की ओर झुकी हुई थीं। उनमें कोई यन्त्र नहीं लगा था। गांववालों ने बताया कि अगल-बगल की ये शलाकाएं सूर्योदय के उपरान्त घड़ी की सूइयों की तरह घूमती थीं, जिनसे समय का अनुमान होता था। एक बार एक साईंस का अध्यापक आया, उसने जानकारी के लिये इन्हें खोल डाला किन्तु फिर वह ठीक-ठीक नहीं लगा सका। तब से ये नहीं घूमतीं। मन्दिर की ये शलाकाएं प्राचीन भारत में विज्ञान-विद्या की विद्यमानता का संकेत कर रही थीं।

२९ मार्च को **बेहट** कस्बे में एक प्राचीन मन्दिर और उसमें स्थापित ऐतिहासिक कलात्मक मूर्तियों का अवलोकन कर हम **देवबन्द** होते हुए **मुजफ्फरनगर** आए। वहां के बाजार से बर्तनवालों तथा सुनारों के यहां से कुछ सिक्के खरीदकर, **शाहपुर** होते हुए **रसूलपुर** आकर डॉ० महेन्द्रप्रताप जी के घर रात्रि-निवास किया। ३० मार्च को प्रातः गांव **सोरों** श्री कबूलसिंह जी के यहां पहुंचे। उनके पास सर्वखाप पंचायत सम्बन्धी, पंचायतों और मुगल बादशाहों के पत्र-व्यवहार, ताम्रपत्र, हस्तलिखित पुस्तकें आदि पर्याप्त सामग्री थी, जिसमें से कुछ सामग्री को हमने ध्यान से देखा। रात को **गोयला** आकर ठहरे। ३१ मार्च को **गोयला** में सन् १८५७ के क्रान्तिकारी शहीदों की याद में बने साधारण से स्मारक को देखकर, मेरठ होते हुए और वहां से भी दुकानों से सिक्के क्रय करके १ अप्रैल को **शाहदरा** में पहुंचकर भरतपुर के महाराजा सूरजमल के समाधि-स्थल को देखा। दूर-दूर बने कालोनी के मकानों के बीच, यों ही पड़े एक उपेक्षित से स्थान पर बना एक साधारण-सा ईंटों का चबूतरा, जिसे कोई दूर से देखकर केवल यही अनुमान लगा सकता था कि किसी ने यों ही ईंटें चिनवादी हैं, बस यही था आजादी के लिए लड़कर बलिदान होनेवाले बहादुर राजा की याद का स्मारक। हां, उस पर खुदे ये शब्द अवश्य महाराजा के बलिदान की कहानी कह रहे थे—

''ऊं। प्रबलप्रतापी वीरेन्द्रशिरोमणि सम्राट् विश्वेन्द्र सवाई महाराजाधिराज श्री सूरजमल जी अद्भुत पराक्रमी भरतपुराधीश की बलिदान भूमि शाहदरा। मिति पौष वदी द्वादशी १८२० संवत्।''

१ अप्रैल को रात्रिनिवास आर्यसमाज **करौलबाग** में किया। दिल्ली की विविध दुकानों से सिक्के तथा ऐतिहासिक वस्तुएं खरीदीं। २ अप्रैल को प्रातः स्वामी जी दिल्ली के ऐतिहासिक एवं दर्शनीय स्थानों को दिखाने के लिए निकल

इस यात्रा के पहले दिन की रात का वह भयोत्पादक व कष्टप्रद प्रसंग, जब सूप गांव पहुचने से दो-तीन मील पहले रेतभरे कच्चे रास्ते में गाड़ी जवाब दे गई थी, मुझे याद है। रात का सुनसान, गहराया हुआ अन्धेरा, एकान्त वनप्रान्त और उस पर लूटपाट के लिए प्रसिद्ध अपराधबहुल यू०पी० का इलाका। जैसे डर से सारा वातावरण खामोशी से दुबका हुआ हो। हम सब पर घबराहट-सी छागई थी, लेकिन स्वामी जी के लिए ऐसा कुछ नहीं था, जैसे रोजमर्रा की साधारण बात हो और फिर स्वामी जी सहित सभी कच्चे रास्ते पर जीप को धक्का लगाते-लगाते गांव के पास तक लेगये। ठण्डभरे मौसम में भी सब पसीने से तर-ब-तर, सांसें भरे थे लेकिन सुरक्षित थे। रात के ग्यारह बज चुके थे। बातों ही बातों में जब स्वामी जी का ध्यान इस कष्ट की ओर आकर्षित करते हुए नई जीप रखने का सुझाव दिया तो उनका उत्तर था—"**जनता के चन्दे और दान के पैसे को मैं अपनी सुख-सुविधाओं में व्यय करूं, इसे मैं उचित नहीं मानता। समाज और संस्थाओं का कार्य करने के लिये जितने में जरूरी काम चल जाता है उतना ही करता हूं। मुझे चाहे कितना ही कष्ट उठाना पड़े, यह स्वीकार है।**"

इसी प्रसंग में उस दिन ड्राइवर श्री दरियावसिंह 'भगत जी' ने एक घटना सुनाई जो रोंगटे खड़ी कर देनेवाली थी। शायद लखनऊ की ओर जाते समय की बात है। एक दिन यू०पी० के बीहड़ जंगलों में बसे किसी गांव की ओर जारहे थे। तेज बरसात आगई। कच्चे रास्ते कीचड़ से भर गये और कीचड़ में फंसकर जर्जरित जीप का एक्सल टूट गया। गाड़ी का आभास पाकर कुछ ही देर में वहां डाकू आनिकले। जीप को घेर लिया किन्तु जब उन्होंने देखा कि यह तो किसी साधु-महात्मा की जीप है और इसमें तो किताबें ही किताबें भरी हैं, तो उनका बुरा इरादा टल गया।

अगले दिन हम रामपुर होते हुए **उमाही** पहुंचे और वहां आर्यसमाज के उत्सव पर स्वामी जी का **आहार**-विषयक भाषण हुआ। २५ मार्च को एक आर्य-परिवार में **अन्नप्राशन-संस्कार** कराया। परिवारवालों की इच्छा पर और स्वामी जी के आदेश से मैंने और आनन्ददेव जी ने उस अवसर पर अलग-अलग छन्दों के सस्वर श्लोक प्रस्तुत किए। २६ मार्च को स्वामी जी सायंकाल आर्यमसमाज **अम्बेहटा** पहुंचे और वहां दो दिन के उत्सव में उनके दो भाषण हुए, विषय था—**'महर्षि दयानन्द के उपकार'**। २८ मार्च को गांव का भ्रमण करते हुए एक प्राचीन दरगाह देखी। एक ऐतिहासिक मन्दिर देखा। मन्दिर के

हस्तलिखित ग्रन्थ जो भोजपत्र, ताम्रपत्र, कागज आदि पर लिखित हैं, लोहे की तीन सौ अलमारियों में संग्रह करके रखे हुए हैं। इन ग्रन्थों का संग्रह देश-विदेशों से किया गया है। इनमें देशी-विदेशी भाषाओं और अधिकतर संस्कृत के ग्रन्थ हैं। चीन, तिब्बत, मंगोल, रूस, जापान आदि देशों के अनेक विद्वान् उनके अध्ययन अनुवाद-कार्य में रत थे। यह सब देखने के बाद गुरुकुल की ओर प्रस्थान किया। रास्ते में गांव कबलाना में डॉ० सोमवीर के यहां भोजन एवं निवास किया। ३ अप्रैल को प्रातः गुरुकुल झज्जर में लौट आये।

२. पश्चिम हरयाणा-राजस्थान यात्रा—

दिसम्बर का महीना और सर्दी का मौसम था। मुझे, योगानन्द जी, आनन्दवीर जी और श्री रामभज जी वानप्रस्थ (आसन) को साथ लेकर स्वामी जी राजस्थान दिशा में कुछ हरयाणा के स्थानों का भ्रमण कराने के लिए, जीप से रवाना हुए। इस यात्रा में स्वामी जी ने अपने खाने-पकाने का सामान इसलिए साथ रखवा लिया था, क्योंकि कई इलाकों में उनके परिचित परिवार नहीं थे। पहले चरखी दादरी पहुँचे। वहां आर्य महाविद्यालय और चरखी दादरी का एक प्राचीन मन्दिर तथा उसमें रखी कुछ प्राचीन वस्तुओं, हस्तलिखित पुस्तकों, बृहद् नगाड़ों का अवलोकन कर रात को मौजीपुर गांव में निवास किया। प्रातः वहां से चलकर भिवानी के बाजार से सिक्के आदि क्रय करके तोशाम पहुँचे। तोशाम की पहाड़ी पर ब्राह्मी लिपि में एक शिलालेख अंकित है। उसके पास ही एक छोटी-सी गुफा है, जिसमें किसी बाबा का डेरा है। उस लेख को पढ़ने के प्रयास में पहाड़ी पर ही शाम हो गई। शिलालेख के ध्यान में शाम के भोजन का ध्यान ही नहीं किया। तोशाम में उस समय कोई परिचित व्यक्ति नहीं था और विलम्ब होने के कारण उस दिन निराहार रहना पड़ा और हमें रात्रि भी जीप में ही बितानी पड़ी। कई व्यक्तियों से आग्रह करने के बाद स्वामी जी के निवास का एक घर में प्रबन्ध हो सका। वहां के लोगों में अपरिचित मेहमानों के प्रति श्रद्धा का अभाव प्रतीत हुआ। अगले दिन आर्यसमाज लोहारू के उत्सव में स्वामी जी ने इतिहासपरक भाषण दिया। रात्रि-निवास भी वहीं किया। दूसरे दिन राजस्थान की ओर जाते हुये पहले भारत के प्रमुख उद्योगपति बिरला के जन्म-स्थान पिलानी नगर में पहुंचे और दिनभर वहां घूमकर प्रत्येक संस्था एवं दर्शनीय स्थान को देखा। भव्य भवनोंवाले, शिक्षा-संस्थाओं और उपवनों, पार्कों, झरनों से सुसज्जित पिलानी जैसे नगर को देखकर

गये। प्रत्येक स्थान और वहाँ की वस्तुओं के बारे में स्वामी जी को पर्याप्त ज्ञान था, वे तत्सम्बन्धी ऐतिहासिक व ज्ञानवर्धक बातें हमें बताते रहते थे। सबसे पहले ऐतिहासिक और विख्यात विशालकाय जामा-मस्जिद को देखा। उसके अन्दर-बाहर विचरण करते मुसलमानों, उनकी वेशभूषा, बोल-चाल, आचरण को देखकर और उसके इर्द-गिर्द फैली हाथ के विविध औजारों, शिल्पयुक्त वस्तुओं, बर्तनों, बजानेवाले साजों, कलाकृतियों और विशेषरूप से विविध प्रकार के मत्स्य-मांस की चहल-पहलभरी बहुसंख्यक दुकानों को देखकर लग रहा था जैसे इन चीजों का मुस्लिमों के साथ अनिवार्य सम्बन्ध है। उस छोटे-से मस्जिद मोहल्ले में मुस्लिम संस्कृति-सभ्यता उभरकर झलकती थी।

उसके पश्चात् जन्तर-मन्तर को देखा, जो मूलतः एक ज्योतिषीय वेधशाला है, इसमें ग्रहों, नक्षत्रों का ज्ञान करानेवाले कई यन्त्र हैं जो स्थापत्यकला के रूप में हैं। यहाँ एक सूर्यघड़ी के समान समय का ज्ञान करानेवाला 'मिश्र-यन्त्र' है, ग्रह का ज्ञान कराने के लिये 'सम्राट्-यन्त्र', ग्रह-राशि की गति-स्थितियों का ज्ञान कराने के लिये 'जयप्रकाश-यन्त्र' और सूर्य की दक्षिण-उत्तर स्थितियों का ज्ञान कराने के लिये 'रामयन्त्र' निर्मित है। इसे देखने के उपरान्त स्वामी जी जनपथ रोड पर स्थित नेशनल म्यूजियम को दिखाने के लिये ले गये। द्वार के अग्रभाग पर जाते ही लघुस्तम्भ के आकार के रूप में रखे अशोक के शिलालेखों, प्राचीन लकड़ी का बना कलात्मक रथ, अलंकृता नारी की मूर्ति को देखकर ही मन में एक कलात्मक वातावरण का दृश्य उभरने लगता है। यह संग्रहालय चारमंजिली विस्तृत भव्य इमारत में अवस्थित है, जिसमें अमूल्य ऐतिहासिक महत्त्व की मूर्तियाँ, अस्त्र-शस्त्र, कलात्मक वस्तुएँ, सिक्के, ठप्पे, टेराकोटा आदि प्रदर्शित हैं। इसके बाद कुतुब मीनार देखने गए। उसके साथ ही राजा चन्द्रगुप्त द्वारा स्थापित ब्राह्मी लिपि के लेख से अंकित लौहस्तम्भ है जो भारत की अमूल्य ऐतिहासिक धरोहरों में से एक है। स्वामी जी कुतुबमीनार, लालकिला, ताजमहल आदि से सम्बन्धित विवादास्पद व चर्चित लेखक पी०एन० ओक की उन स्थापनाओं के समर्थक हैं, जिनमें इन्हें मूलतः हिन्दुओं द्वारा निर्मित स्थान घोषित किया गया है। कुतुबमीनार भी एक ज्योतिषीय वेधशाला थी। इसकी सिद्धि में स्वामी जी ने कुछ प्रमाणों का भी उल्लेख किया। कुतुबमीनार को देखने के पश्चात् डॉ० लोकेशचन्द्र जी द्वारा हौजखास में संचालित 'सरस्वती विहार' संस्था को देखने गये, जो कि प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का एक अनूठा संग्रहालय है। यहाँ लगभग कई हजार

प्रकार कटाई करके इसी प्रकार की चीजें बना रखी थीं। एक लकड़ी का बना हुआ पृष्ठ था, जिस पर सारी गीता खुदी हुई थी। एक डेढ-दो फुट का लकड़ी का ऊंट था, जिसमें पूरा गांव और उसके खेत, गाड़ी, कुएं, पशु आदि सभी दृश्य चित्रित थे। सरदार शहर से लौटते समय हम गांव के रहनेवाले उस भोले-भाले किन्तु प्रतिभाशाली कलाकार से भी मिले, जो इन वस्तुओं को वनाता था। साधारण-सा घर, गरीब-सा परिवार था उसका। संग्रहालय का मालिक सेठ उससे एक बादाम पन्द्रह-सोलह रुपये में खरीदता था किन्तु बड़े शहरों में और विदेशियों को वही बादाम कई सौ रुपये में बेचता था। वहां से वापस लौटकर हम एक रात आर्यसमाज लोहारू में रुके। शाम और सवेरे का भोजन हम सबने मिलकर आर्यसमाज लोहारू में चूल्हे पर स्वयं पकाया। भोजन के उपरान्त गुरुकुल झज्जर की ओर प्रस्थान किया। रास्ते में **मोहनबाड़ी खेड़े** को भी देखा और गांव में इस खण्डहर से निकली कई प्राचीन मूर्तियां भी देखीं। यह एक अति प्राचीनखण्डहर है जो भूमिसात् होकर लगभग समतल होगया है। इसे देखकर गुरुकुल झज्जर में लौट आये।

३. हरयाणा के खेड़ों (खण्डहरों) की यात्रा

इस ऐतिहासिक यात्रा का उद्देश्य पुरातत्त्वसम्बन्धी सामग्री का संकलन और स्थानों का दर्शन करना तथा तत्सम्बन्धी चित्र लेना था। फोटोग्राफसम्बन्धी आवश्यक सामग्री साथ लेकर स्वामी जी के साथ मैं, योगानन्द जी और डॉ० सूरजभान जी (कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटी के इतिहासविभाग में तत्कालीन रीडर, जो उस समय गुरुकुल झज्जर में आये हुए थे) २२ मई १९६४ को स्वामी जी के साथ जीप द्वारा यात्रार्थ चले। सर्वप्रथम रोहतक होते हुए अस्थल बोहर पहुंचे नाथपंथियों के प्रसिद्ध मठ को देखा तथा उसमें रखी हुई प्राचीन मूर्तियों के फोटो लिये। मठ के तत्कालीन महन्त श्री श्रेयोनाथ जी की स्वामी जी के साथ अति आत्मीयता थी। उनसे भेंट करने के बाद अस्थल बोहर के पास बिखरे प्राचीन खेड़े=खण्डहर को घूमकर देखा। यह खेड़ा अब धरती के समतल रूप में परिणत होचुका है। यह स्थिति इसके अतिप्राचीन होने की द्योतक है। यहां यौधेयों के सिक्के पाये जाते हैं, जो इसे यौधेयों का प्राचीन नगर सिद्ध करते हैं।

महाभारत में रोहतक की चर्चा यौधेयों की राजधानी के रूप में आती है, सम्भवत: सबसे प्राचीन रोहतक इसी स्थान पर था। इसे देखकर पैदल ही रोहतक

संक्षेप में यह कहा जासकता है कि रेगिस्तान के रेतीले और दुर्लभ जलवाले इलाके में बिरला ने अपने धन के बल से जैसे हरा-भरा स्वर्ग उतार दिया हो।

आज यह नगर देश का प्रसिद्ध शिक्षा-केन्द्र है। वहां से **चिड़ावा** आकर श्री वेदव्रत जी शास्त्री के बड़े भाई श्री बृजलाल जी के यहां रात्रि में निवास किया। चिड़ावा आकर हमने रेगिस्तान के जलाभाव के दुःख को अनुभव किया कि कैसे कई सौ फुट गहरे कुओं से ऊंटों की सहायता से या एक साथ रस्सी पकड़कर कई-कई महिलायें पानी खींचने के लिये दूर तक रस्सी को खींचती भागती चली जाती हैं। प्रत्येक पानी की बाल्टी की प्राप्ति के लिये उन्हें यह कठिन श्रम दोहराना पड़ता है, तब जाकर वहां के लोगों को पीने और नहाने का जल उपलब्ध हो पाता है। अगले-अगले रेगिस्तानबहुल इलाकों में यह समस्या और विकटरूप धारण करती जाती है, जहां कुओं द्वारा धरती के गर्भ में पानी ही उपलब्ध नहीं होता और पीने के लिये भी मीलों दूर से ऊंटों पर पानी ढोकर लाया जाता है—विशेषकर ग्रीष्म ऋतु में।

वहां से **झुंझनूं** और चूरू पहुंचे। कहीं-कहीं सड़कें बालूरेत से पटी हुई थीं। दोनों नगरों में प्राचीन इमारतों, उन पर अंकित प्राचीन राजस्थानी भित्तिचित्र-कलाओं के अन्दर सुन्दर नमूनों को देखकर वास्तव में मन में कलाजन्य आनन्द की अनुभूति हुई थी और अनुभव हुआ था कि भले ही रेगिस्तान का सूखा इलाका हो, पर यहां के रेत पर और यहां की जनता की खून-पसीने से कमाये धन के 'कर' पर शाही परम्परा खूब पनपी थी। दोनों नगरों से प्राचीन पुरातात्त्विक सामग्री का अन्वेषण कर इस यात्रा के अन्तिम पड़ाव में **सरदार शहर** पहुंचे। रेगिस्तान के बीच सरदार शहर भी हवेलियों का एक कस्बा है। यहां के सेठों ने कमाया है दूर के इलाकों में जाकर और मातृभूमि के मोह में उसे व्यय यहां किया है। इस कस्बे में एक जैन सेठ श्री बभूतमल दूगड़ प्राचीन सिक्के, मूर्ति आदि वस्तुओं का विक्रयार्थ संग्रह करते थे। स्वामी जी उनसे काफी महंगेभाव में खरीदकर लाते थे। यहां एक सुव्यवस्थित विशाल गोशाला भी देखी और लकड़ी से बनी कलाकृतियों का अपूर्व संग्रहालय भी देखा, जिसमें एक से एक आश्चर्यजनक भव्य कलाकृतियां रखी थीं। उदाहरण के रूप में चन्दन की लकड़ी के बनाये हुए बादाम थे, जो हूबहू असली बादाम की तरह लगते थे और दो भागों में खुलते थे। उनके अन्दर कटाई करके किसी में लालकिला, किसी में ताजमहल, किसी में कुतुब-मीनार बना रखी थी। इसी प्रकार लकड़ी का एक गेहूं का दाना बना रखा था, उसमें भी इसी

यह देखकर कि स्कूल में कोई साधु आकर ठहरा है, स्वयं आकर पूछताछ की और भोजन तथा निवास का प्रबन्ध कर दिया। पूर्वयात्रा में वर्णित तोशाम (भिवानी) गांववासियों के समान इनमें अतिथियों के प्रति उपेक्षाभाव नहीं था, अत: वहां की तरह भूखा नहीं सोना पड़ा।

२८ मई को गांव **खरकपाण्डवान** होकर **किलायत** गांव पहुंचे। किलायत हरयाणा के ऐतिहासिक महत्त्व के स्थानों में से एक विशिष्टस्थान है। यहां महाराजा हर्षकालीन दो मन्दिर हैं जिनकी स्थापत्यकला और चित्रकला अपने ढंग की निराली है। उनका निर्माण इस कला से हुआ है जैसे बिना किसी चूना-मिट्टी के इनकी चिनाई की गई हो। इन मन्दिरों में ईंटों को काट-काटकर सुन्दर चित्रकारी की गई है। अनेक मूर्तियां भी इस गांव में उपलब्ध हैं, जिनमें कुछ वाममार्गीय मूर्तियां देखने को मिलीं। रात्रि में गांव **उचाना** में आकर ठहरे। २९ मई को प्रातः घूमकर उचाना खेड़ा देखा और बाजार से कुछ पुरातात्त्विक वस्तुएं प्राप्त कीं। रात्रि को शहीद स्मारक एवं आर्यसमाज मन्दिर **गुलकणी** में निवास किया। हमने '**ढूंढू**' गांव और वहां तालाब के किनारे बने छोटे-से मन्दिर को भी देखा। इस गांव के बारे में किंवदन्ती है कि महाभारत युद्ध में पराजित होकर जान बचाने के लिये दुर्योधन इस जंगल में आकर छिपा हुआ था। भीम ने यहां उसे ढूंढ निकाला था। उस घटना की याद में इस गांव का नाम 'ढूंढू' चला आरहा है। ३० मई को **राखी गढ़ी** के सुविस्तृत ऊंचे-ऊंचे खण्डहरों के रूप में अवस्थित खेड़े को दूर-दूर तक घूमकर देखा। गांव से कुछ वस्तुओं का संग्रह भी किया। राखी गढ़ी खेड़े की ओर यद्यपि अभी पुरातत्त्वविदों का अधिक ध्यान आकर्षित नहीं हुआ है किन्तु जब कभी इसकी खुदाई होगी, तो अनेक नये रहस्य उद्‌घाटित होंगे। इससे उपलब्ध होनेवाली वस्तुएं, मिट्टी के कंगन, टैराकोटा आदि ठीक मोहनजोदड़ो और हड़प्पा शैली जैसी हैं। राखी गढ़ी से **हांसी** आकर यहां के बाजार से भी पुरातात्त्विक वस्तुयें क्रय कीं। हांसी के खेड़े को देखा और फिर **हिसार** गये। हिसार के बाजार से भी सिक्के आदि लिये। फिर **अग्रोहा** के खेड़े को देखने के लिये चल दिये। यहां महाराजा अग्रसेन का राज्य था और माना जाता है कि उसी से अग्रवालवंश का उद्‌भव हुआ। यह खेड़ा भी हरयाणा के प्राचीन प्रसिद्ध नगरों में से एक है जो पर्याप्त खण्डहरों के रूप में अवस्थित है। अग्रोहा के खण्डहरों पर घूमते और खण्डहर तथा गांव से पुरातात्त्विक वस्तुयें खोजते-खोजते आज का दिन भी बिना भोजन के ही बीता। जब हिसार से चले तो यह निश्चित

के दयानन्दमठ में पहुंचे। अगले दिन ऊंचे-ऊंचे खण्डहरों के रूप में स्थित विस्तृत खोखराकोट को घूमकर देखा और उसके फोटो लिये। सायंकाल **कंवाली** गांव में पहुंचे। यहां स्वामी जी को गांव के आर्यसमाज के उत्सव में भाग लेना था। दो दिन के उत्सव में स्वामी जी के दो-तीन भाषण आर्यसमाज और इतिहास विषयक हुए। २५ मई को **नरेला** पहुंचे। वहां स्वामी जी द्वारा स्थापित एवं उनके प्रयत्नों से निर्मित आर्यसमाज मन्दिर तथा उनकी दान दी हुई कई एकड़ भूमि में उन्हीं द्वारा संस्थापित, निर्मित एवं संचालित **कन्या गुरुकुल नरेला** का अवलोकन किया। वहां की धरती का एक-एक कण तथा भवनों की एक-एक ईंट मानो मुखरित होकर स्वामी जी के श्रम और लगन की यशोगाथा कह रहे थे कि कितनी मेहनत करके, लोगों से थोड़ा-थोड़ा दान एकत्रित करके बिना किसी बड़ी सहायता के दो सामाजिक संस्थाओं का निर्माण किया है। कन्या गुरुकुल नरेला उनमें से एक है।

नरेला से पुनः वापस **सोनीपत** होते हुए गांव **बिलिन खेड़ी** आये और इस गांव के पास स्थित एक प्राचीन खण्डहर को देखा। खेत जोतते समय इस खेड़े से निकली हुई अनेक मूर्तियां इसके आस-पास के गांवों में रखी हुई हैं। कई घरों में जाकर हमने उनको देखा और फोटो भी लिये। **अहीर माजरे** में एक नापित के पास ब्रह्मा की बहुत सुन्दर मूर्ति थी और एक अन्य व्यक्ति के पास विष्णु की मूर्ति रखी थी। स्वामी जी ने दान वा मूल्य में उनको प्राप्त करने का भरसक प्रयास किया किन्तु वे व्यक्ति उन्हें देने के लिये राजी नहीं हुए। २७ मई को प्रातः खेड़ी से चलकर गांव **हाट** (जीन्द) पहुंचे। यहां भी एक खेड़ा है और उसे एक तीर्थ माना जाता है। इसका पुराना नाम '**अटकेश्वर**' कहा जाता है। इस गांव में एक व्यक्ति के पास यहां के खण्डहर से निकला एक बहुत **बड़ा घड़ा** (मांट) रखा है जिसमें १२ मन अनाज आसकता है। उसका तथा गांव में उपलब्ध अन्य ऐतिहासिक सामग्री का फोटो ले, हम **सफीदों** और **असन्ध** पहुंचे। दोनों स्थानों के खेड़ों को देखा और कस्बे में बर्तनवालों, सुनारों की दुकानों से सिक्के खरीदे। असन्ध में हम सिक्के खोजते फिर ही रहे थे कि आकाशवाणी के समाचारों से ज्ञात हुआ—भारत के प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू अब इस दुनिया में नहीं रहे। इस समाचार को सुनकर स्वामी जी शोकाकुल होगये। उस दिन के कार्यक्रम को वहीं पर स्थगित कर, रात को गांव **पाण्डी** आकर एक स्कूल में डेरा डाला। वहां कोई परिचित व्यक्ति नहीं था। अतः भोजनप्राप्ति की आशा हमें नहीं थी किन्तु गांववालों

से सिद्ध होता है। वहां से प्राप्त एक मिट्टी की मुहर से ज्ञात हुआ है कि कभी इसका प्राचीन नाम '**प्रकृतानाक नगर**' था। यह मूलतः यौधेयों का स्थान था, पुनः कुषाणों के अधिकार में आगया, फिर यूनानियों ने अधिकार कर लिया। अनेक बार उजड़ा अनेक बार बसा। इसी कारण यहां पर तीनों प्रकार के राजाओं के सिक्के और सांचे मिलते हैं। आखिरी समय में यहां मुस्लिम राजाओं का अधिकार रहा, इस कारण यहां उनके भी सिक्के पाये जाते हैं। ५ अगस्त १९६४ को इस खण्डहर के कानूनी दृष्टि से अनापत्तिपूर्ण स्थानों की खुदाई के उद्देश्य से स्वामी जी अपने साथ गुरुकुल के पन्द्रह विद्यार्थियों का एक दल लेकर भोजन-वस्त्रादि सभी सामान के साथ नौरंगाबाद पहुंचे और वहां सड़कस्थित धर्मशाला में शिविर लगाया। इस दल में स्वामी जी के अतिरिक्त, अध्यापकों में से श्री इन्द्रदेव जी (स्व० स्वामी इन्द्रवेश जी), तत्कालीन विद्यार्थियों में—मैं, सर्वश्री योगानन्द, आनन्ददेव, चन्द्रदेव (स्वामी चन्द्रवेश) (कक्षा १३ के), दयानन्द, विरजानन्द, देवव्रत (स्वामी देवव्रत), योगेन्द्र (स्वामी दिव्यानन्द), (कक्षा ११ के), सत्यवीर, सत्यव्रत (मकड़ौली), सत्यव्रत (झोझूकलां), ओम्प्रकाश, यज्ञपाल, धर्मपाल, धर्मदेव (कक्षा ९ से) और एक पाचक सामीनाथ थे। हमारे लिये यह समय उपलब्धिप्रद सिद्ध हुआ। यह अनुभव गुरुकुलीय जीवन से एक भिन्न प्रकार का था। गांव के पश्चिम में स्थित राजासर नामक तालाब में नहाते थे और सड़क के किनारे बंजारों की तरह डेरा डालकर रह रहे थे। वहीं खुले में सोते थे।

६ अगस्त १९६४ को मिट्टी के एक कटाव स्थान पर और एक स्थान पर थोड़ी-सी खुदाई करने पर सांचे और टकसाल में काम आनेवाले अन्य उपकरण पर्याप्त संख्या में मिले। इस प्रकार की मूल वस्तुएं दुर्लभ होती हैं। अतः यह एक उत्साहवर्धक उपलब्धि थी। उसके बाद यौधेयों के सिक्कों के कुछ सांचे भी मिले। पंचमार्क और यूनानी सिक्कों के सांचे भी मिले। एक दिन एक स्थान पर खुदाई करते समय एक कमरा मिला, जिसमें जला हुआ शहतीर कोयले के रूप में था। जली हुई हड्डियां, वस्तुएं, राख निकल रही थीं। उससे पता चलता था कि युद्ध के समय नृशंसतापूर्वक नगरों में आग लगा दी जाती थी, जिसमें सब सम्पत्ति, वस्तुएं, आबालवृद्ध-नर-नारी जलकर मर जाते थे। नींव में बालूरेत डालने की प्रथा थी। यौधेयकालीन मकानों की ईंटें लगभग डेढ़ फुट लम्बी और एक फुट चौड़ी होती थीं, पके-गलाये हुए लोहे का मैल भी अत्यधिक मात्रा में प्राप्त हुआ, जो इस बात का सूचक था कि यहां शस्त्रास्त्रनिर्माण का बृहत् कारखाना था। १८

होगया था कि शाम तक भोजन मिलने की कोई आशा नहीं है। अतः काम चलाने के लिये कुछ पकी शकरकन्दियां और भुने चने ले लिये थे। इन्हीं को खाकर दिनभर काम चलाया। शाम को अग्रोहा से हिसार की ओर कुछ मील आगे चलकर चौ० देशराज जी के यहां खेतों में बने निवास पर ठहरे।

वहां से ३१ मई को प्रातः जब एक छोटेसे वन के कच्चे रास्ते से वापस अग्रोहा की ओर लौट रहे थे तो मार्ग में **'बीड़ चिक्कणवास'** के नाम से प्रसिद्ध खेड़ा देखा जो अतिप्राचीनता के कारण भूमि के समतल होचुका है। उस स्थान पर पड़े छोटे-छोटे कंकड़-पत्थर ही इस बात का संकेत कर रहे थे कि यहां कोई किला या नगर रहा है और अत्यधिक मात्रा में बिखरा पके-गलाये गये लोहे का मैल इस बात के प्रमाण प्रस्तुत कर रहा था कि यहां शस्त्रास्त्र बनाने का कोई लोहे का विशाल कारखाना रहा है। 'मण्डूर भस्म' बनाने के उद्देश्य से हम उसे एकत्रित कर ही रहे थे कि अचानक आश्चर्यमिश्रित हर्ष से गद्गद् हो उठे। मुझे वहां यौधेयों के तीन सिक्के मिले, जो यह सिद्ध कर रहे थे कि यह यौधेयों का नगर था। वहां से हम तोशाम पहुंचे और पूर्वयात्रा में वर्णित तोशाम की पहाड़ी के शिलालेख को पढ़ने में कुछ समय लगाया। उसका फोटो लेकर रात को गांव **बामला** आकर निवास किया। १ जून को **नौरंगाबाद** खेड़े को देखा। यह भी मूलतः यौधेयों का नगर रहा है। दोपहर को हम **रोहतक** पहुंचे और सिक्के प्राप्त करने के लिये बर्तन तथा स्वर्णकारों की दुकानों पर घूमे। यह एक संयोग की बात थी कि एक सुनार की दुकान पर यूनानी राजाओं के चांदी के सिक्के पर्याप्त संख्या में मिल गये। काफी प्रयत्न करने पर भी इतने सिक्के स्वामी जी को इससे पहले कभी नहीं मिल पाये थे। किसी कुम्हार को कुछ समय पूर्व मिट्टी खोदते समय ये सिक्के मिल गये थे, जो चांदी के भाव सुनार को बेच गया था। सुनार ने बड़े महंगे भाव से स्वामी जी को बेचे। इस उपलब्धि पर सभी को हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा था। रात्रि को दयानन्दमठ में निवास कर, २ जून को प्रातःकाल गुरुकुल में लौट आये।

४. नौरंगाबाद-उत्खनन यात्रा

नौरंगाबाद खेड़ा जो कि रोहतक-भिवानी रोड पर भिवानी से ७-८ मील रोहतक की ओर स्थित है, यौधेयगण के क्षत्रियों का एक महत्त्वपूर्ण नगर, किला, आयुध-निर्माण का कारखाना और टकसाल रहा है, यह वहां से उपलब्ध सामग्री

भगवती का ग्राम) की ओर यात्रा करते रहे। ढोलवाहा एक प्राचीन ऐतिहासिक स्थान है। इसकी खुदाई में गणेश आदि की प्रतिमाएं प्राप्त हुई थीं। पं० गंगाविष्णु शर्मा (संघोल, लुधियाना) के भाई प्रो० ताराचन्द जी के पास ढोलवाहा में रहकर पुरानी ऐतिहासिक वस्तुओं का अवलोकन किया।

ढोलवाहा से **पठानकोट** आर्यसमाज में रुकते हुए **दयानन्दमठ दीनानगर** में श्री स्वामी सर्वानन्द जी के पास कई दिन निवास किया। आमों का ऋतु होने से आम और दूध का सेवन करते रहे। स्वामी सर्वानन्द जी ने मुझे एक टोकरी आम देकर नहर के किनारे बैठा दिया और कहा कि ठंडे पानी में आम धोते जाओ और चूसते जाओ। टपके के छोटे-छोटे देसी आम थे, मैंने ५२ आम चूस लिए।

दीनानगर से **जम्मू** के लिए प्रस्थान करके आर्यसमाज पुराना हस्पताल रोड जम्मू में जाकर विश्राम किया। वहां के पुरोहित श्री योगेन्द्रपाल शास्त्री (अरणिया-बुलन्दशहर निवासी) ने पूर्ण श्रद्धा से सेवा की। वहीं दीर्घकाय स्वामी सुधानन्द जी भी रुके हुए थे। जम्मू की रिहाड़ी कालोनी के आर्यसमाज में भी आचार्य जी के व्याख्यान हुए। वहां के आर्यबन्धुओं के साथ चित्र भी खिंचवाया। पाकिस्तान से विस्थापित होकर आये श्री हरिराम वानप्रस्थ आदि ने रेहाड़ी कालोनी (जम्मू) में आर्यसमाज की स्थापना करके यज्ञ, सन्ध्या, सत्संग, स्वाध्याय का क्रम निरन्तर चालू रक्खा हुआ था। जम्मू में रहते हुए ही वहां के प्रसिद्ध **रघुनाथ मन्दिर** को भी देखा। जम्मू आर्यसमाज में रहते हुए अनेक आर्यपुरुष अपने-अपने घरों पर भोजन के लिए निमन्त्रित किया करते थे। इसी क्रम में एक बार बहिन शान्तिदेवी ने भी अपने घर पर भोजन के लिए आचार्य जी को निमन्त्रित कर दिया। बहिन जी को आचार्य जी ने बता दिया था कि मैं नमक नहीं खाता। समय पर उनके घर पहुंचकर भोजन आरम्भ किया ही था कि प्रथम ग्रास में ही मुख में जलन होने लगी। सब्जी को ध्यान से देखने पर भी उसमें लाल वा हरीमिर्च दिखाई नहीं दी। बहिन जी से पूछने पर उन्होंने बताया कि आपने नमक के लिए निषेध किया था, सो मैंने नमक नहीं डाला, परन्तु हरीमिर्च बहुत बारीक पीसकर डाली है। आचार्य जी ने कहा बहिन जी जो व्यक्ति नमक भी नहीं खाता हो वह मिर्च कैसे खा पायेगा? इससे बहिन शान्ति जी को अतिकष्ट हुआ। उन्होंने वह सब्जी वापस लेली और तुरन्त दूसरी नई सब्जी बनाकर भोजन कराया। आचार्य जी ने बहुत कहा कि बहिन जी आप और कष्ट न करें, हम दही से ही रोटी खालेंगे, परन्तु

अगस्त को भिवानी गये। वहां ब्रह्मचर्याश्रम तथा करोड़ीमल मन्दिर देखा। गोरासिंह पहलवान के दर्शन किये। तब उसमें ५४२ पौंड भार था। उसने बताया कि मैं प्रतिदिन एक सेर घी, १०-१२ सेर दूध भोजन में लेता था और ग्यारह-ग्यारह मील दौड़ लगाता तथा पन्द्रह सौ दण्ड-बैठक करता था। लेकिन बुढ़ापे में अब वह एक झोंपड़ी में गरीबी की जिन्दगी जी रहा था। उससे मिलकर गुरुकुल झज्जर को प्रस्थान किया और १४ दिन की यात्रा पूर्ण की।

स्वामी जी महाराज के साथ अनेक स्थानों पर जाने का अवसर प्राप्त हुआ था, किन्तु लिखित विवरण मेरे पास इन्हीं यात्राओं का उपलब्ध है। इस विवरण से यह ज्ञात होता है कि स्वामी जी ने तपस्वी जीवन जीते हुए किस श्रम, कर्मठता और कष्टसहिष्णुता से कार्य किया और अपने जीवन तथा गुरुकुल को विकसित एवं प्रतिष्ठित किया। आज वे हमारे बीच नहीं हैं, किन्तु उनकी यादें उनकी याद दिलाती रहती हैं।

स्वामी जी के साथ कशमीरयात्रा

—विरजानन्द दैवकरणि

जुलाई १९६६ को जालन्धर में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की एक बैठक थी। उस बैठक में गुरुकुल झज्जर के आचार्य भगवान्देव जी ने भी भाग लिया था। गुरुकुल झज्जर से चलते समय आचार्य जी ने मुझे (विरजानन्द को) भी साथ लेलिया था। उस बैठक के समय ही तार द्वारा आचार्य जी को सूचना मिली कि ब्रह्मचारी हरिशरण का निधन सर्प के काटने से होगया। इस समाचार से आचार्य जी को हार्दिक कष्ट हुआ। ब्र० हरिशरण आचार्य जी के पुराने साथी थे। इन्होंने १९४७ ई० के हिन्दू-मुस्लिम झगड़े में आचार्य जी को बहुत सहयोग दिया था। सन् १९५७ के हिन्दी रक्षा सत्याग्रह में भी आचार्य जी के आदेश से सत्याग्रही तैयार किये और स्वयं भी जेल गये। उड़ीसा और बिहार में ईसाई बने हिन्दुओं को इन्हीं की प्रेरणा से पुनः वैदिकधर्म में दीक्षित करने का कार्यक्रम हरिशरण जी ने चलाया हुआ था। अपने इस अत्यन्तप्रिय और सहयोगी के निधन से आचार्य जी को वेदना होनी स्वाभाविक ही थी। गुरुकुल झज्जर में लौटते तो उनकी याद आती रहती, जिससे मानसिक कष्ट अधिक ही बढ़ता। इसलिए आचार्य जी ने यह निश्चय किया कि अभी कुछ दिन बाहर रहकर ही समय बिताया जाये। इसी भावना के कारण जालन्धर से बस द्वारा नवांशहर, दसूहा, ढोलवाहा और हरियाना (माई

से निवृत्त होकर लौट रहे थे तो मार्ग में वही थानेदार नदी की ओर जाता हुआ मिल गया। उसने अभिवादन करके अपनी भूल के लिए क्षमा मांगी तो आचार्य जी ने कहा—कोई बात नहीं। वह आपका कर्त्तव्य था कि संदेहशील और अपरिचित व्यक्ति से पूछताछ करें। परन्तु पुलिसवालों को इतनी समझ तो होनी ही चाहिये कि आकार-प्रकार और चेष्टाओं से सच-झूठ का पता लगा सकें।

वस्तुत: वह थानेदार जम्मू से ही हमारे पीछे गुप्तचरी करता आरहा था। आचार्य जी ने अखनूर के सत्संग में थानेदारवाली घटना की चर्चा सबके सामने करदी थी, उस समय वह थानेदार भी वहीं कहीं सुन रहा होगा, इसलिए उसने प्रात:काल आचार्य जी से क्षमायाचनावाली बात कहदी।

अस्तु! अखनूर से जम्मू वापस आकर श्रीनगर जाने के लिए छोटी बस में आरक्षण करवाकर **श्रीनगर** (कश्मीर) के लिए प्रस्थान किया। लगातार चौदह घण्टे तक ऊंचे पहाड़ों की चढ़ाई-उतराई पार करते-करते श्रीनगर पहुंच गये। मार्ग में जवाहर टैनल के बाहर बस इसलिए रोकनी पड़ी क्योंकि उस दिन पहले सामने से आरही गाड़ियों को मार्ग देना था।

रात्रि में श्रीनगर के आर्यसमाज हजूरी बाग में जाकर विश्राम किया। वहां पं० नेत्रपाल जी शास्त्री (अरणिया-बुलन्दशहर) पुरोहित थे। वे आचार्य जी से परिचित थे, अत: निवास और भोजनादि की कोई समस्या उपस्थित नहीं हुई। श्रीनगर में रहते हुए शिकारे में बैठकर डलझील की सैर की और जेहलम नदी पर बने हब्वा कदल आदि सात कदलों (पुलों) को देखा।

श्रीनगर के पास पहाड़ी पर बने शंकराचार्य के मन्दिर को भी देखा। मन्दिर पहाड़ी की चोटी पर बना होने से दर्शक लोग नीचे से ऊपर तक एक ही बार में न चढकर बीच-बीच में रुककर विश्राम करते-करते ऊपर चढ पारहे थे, किन्तु हम कहीं भी खड़े न होकर सीधे एक ही बार में चढ़ते चले गये। वहां से लौटकर केसर की खेती, शाहजहां द्वारा बनवाये गये निशातबाग और चश्मेशाही आदि को देखते हुए गुलमर्ग तथा पाण्डवों का दुर्ग भी देखा। उस दुर्ग की दीवार में स्लेटी रंग के इतने विशाल चौकोर प्रस्तर खण्ड बहुत ऊंचाई तक एक-दूसरे पर रखे हुए थे। उस युग में इतने भारी पत्थरों को इतनी ऊंचाई पर किस साधन से रक्खा गया होगा यह अत्यन्त विस्मय की बात है।

बहिन जी ने अपना अतिथि सत्कार पूरा करने की ठान रखी थी। जम्मू में ही स्ट्रेटो (इण्डोग्रीक) आदि की कुछ मुद्राएं भी एक सर्राफ से खरीदी थीं।

सन् १९६५ में भारत-पाक युद्ध हुआ था। उस समय जम्मू के निकटवर्ती क्षेत्र छम्ब-जोड़ियो आदि में पाकिस्तान के सैनिकों ने अनेक ग्राम लूटे, जलाये और निरपराध जनता की हत्याएं कीं। ऐसे क्षेत्र को देखने के लिए आचार्य जी ने यत्न किया और हम दोनों जम्मू से बस में बैठकर चल दिए। अभी आधी दूर ही गये थे कि एक स्थान पर पुलिस ने गाड़ी रुकवाकर हम दोनों को उतारकर थाने में पहुंचा दिया। वे हमें पाकिस्तान का गुप्तचर समझ रहे थे। थानेदार ने आचार्य जी से पूछा तो इन्होंने गुरुकुल झज्जर से चलने से लेकर वहां तक की यात्रा की पूरी जानकारी देदी। पुनरपि उन्हें विश्वास नहीं आया तो थानेदार ने सिपाहियों से कहा इनका परीक्षण करलो। मैं तो इसका अभिप्राय समझा नहीं, परन्तु इतना सुनते ही आचार्य जी ने थानेदार पर बुरी तरह फटकार लगाई और कहा कि सब कुछ सच-सच बताने पर भी तुम्हें विश्वास नहीं हुआ कि हम कौन हैं, पुलिसवालों की दृष्टि तो इतनी पैनी होनी चाहिए कि अपराधी को तुरन्त पहचानलें। बाद में आचार्य जी से पूछने पर ज्ञात हुआ कि परीक्षण की बात यह थी कि थानेदार ने सोचा कि यदि ये मुसलमान हैं तो इनका खतना किया हुआ मिलेगा, इसीलिए वह परीक्षण कराने की बात कह रहा था।

यह सब होने पर थानेदार ने कहा—आज आप आगे नहीं जासकते। यदि आगे कुछ देखना ही है तो आप जम्मू आर्यसमाज के प्रधान से परिचयपत्र लिखवाकर लेआयें और कल आगे जाकर जो देखना हो वह देखलें। इस पर वापस जम्मू आगये और अगले दिन आर्यसमाज के प्रधान से पत्र लेकर छम्ब-जोड़ियो के पूरे क्षेत्र का निरीक्षण किया। वैसे आर्यसमाज के प्रधान ने निवेदन किया था कि यदि कोई कठिनाई समझते हो तो मैं साथ चलूं, परन्तु आचार्य जी ने कहा आप कष्ट न करें, हम स्वयं ही चले जायेंगे।

पाकिस्तान द्वारा किये गए संहार को देखकर और उसके चित्र लेकर वापस जम्मू आगये और अगले दिन आर्यसमाज **अखनूर** में जाकर ठहरे। वहां के आर्यसज्जन नाम से तो आचार्य जी को जानते थे, परन्तु दर्शन पहली बार किये थे। बड़ी प्रसन्नता से स्वागत-सत्कार करके बिठाया और रात्रि में व्याख्यान भी कराया। प्रातःकाल चार बजे उठकर दैनिककर्मों से निवृत्त होने के लिए चनाब (चन्द्रभागा) नदी की सहायक नदी पर जाकर शौच, व्यायाम, स्नान और सन्ध्या

श्रीनगर में दुल्हेड़ानिवासी श्री लाला टेकचन्द रहते थे। उनके सुपुत्र श्री आत्माराम भी वहीं अपना कार्य करते हैं। उन्होंने आचार्य जी को अपने घर बुलाकर भोजन करवाया और स्टूडियो में ले जाकर दो फोटो खिंचवाये, एक प्रसिद्ध चित्र जो आजकल प्रायः छपता है वह तथा दूसरा आचार्य जी के पैर स्पर्श करते हुए था। ये चित्र २ अगस्त १९६६ को लिए गए थे।

श्रीनगर से गुलमर्ग पहुंचने पर एक नदी में स्नान किया, उसका जल बर्फ की भांति शीतल था। आचार्य जी ने तथा मैंने स्नान करते हुए एक-दूसरे के चित्र भी लिए। स्नान से पूर्व आचार्य जी शौच के लिए गये तो मैंने एक झाड़ी में जड़ी बूटी देखने के लिए हाथ डाला तो बिच्छू के डंक की तरह पीड़ा हुई, मैंने सोचा बिच्छू होगा, उसे देखने के लिए दुबारा हाथ डाला तो वही दशा पुनः हुई। जब तक आचार्य जी वापस आये तब तक मेरा हाथ सूज गया था, इसे देखकर आचार्य जी बोले यहां एक **बिच्छूबूटी** होती है, उसी के कारण यह हुआ है। निकट ही एक व्यक्ति बकरियां चरा रहा था, उसे बुलाया और पूछा तो वह हिन्दी नहीं जानता था, हम कश्मीरी भाषा से अपरिचित थे। इसलिए उसे संकेत से सूजा हुआ हाथ और वह बूटी दिखाई। तो वह तुरन्त समझ गया। उसने बिच्छू बूटी के पास से ही सांठी के पत्तों जैसी एक अन्य बूटी उखाड़कर उसका रस मेरे हाथ पर मसल दिया, उससे शान्ति होगई और कुछ देर बाद सूजन भी कम होगई। आचार्य जी ने कहा कि अनजाने में किसी जड़ी-बूटी को छेड़ना वा खाना नहीं चाहिये, पता नहीं कौन-सी बूटी कैसी हो?

उड़ी में ही सैनिकक्षेत्र में एक व्यक्ति मांसाहारी सैनिकों के लिए भेड़ काट रहा था, मैं अकेला जाकर उसे देखने लगा, थोड़ी देर तक उसका काटना और बहता हुआ खून देखते रहने से मुझे चक्कर आगया। आचार्य जी ने दौड़कर मुझे सम्भाला और कहा कि कमजोर दिलवाले को ऐसी चीजें नहीं देखनी चाहियें। बहुत बाद की बात है—एक बार जीप दुर्घटना में आचार्य जी के सिर में चोट आई तो उन्हें टांके लगाकर सी दिया गया, जब विलिंगडन (राममनोहर लोहिया) हस्पताल, दिल्ली में आचार्य जी टांके कटवाने गये तो मैं साथ था। टांके कटते देखकर मुझे चक्र आगया, आचार्य जी बोले मेरे टांके बाद में काटना, पहले इसे सम्भालो, सो नर्स ने मुझे कोई दवा पिलाकर बैंच पर लिटा दिया, कुछ देर बाद सामान्य होगया।

श्रीनगर में रहते हुए ही मैंने आचार्य जी से कहा कि मेरे भाई सूबेदार श्री नौरंगसिंह जी यादव कश्मीर में ही सैनिक के रूप में सेवा कर रहे हैं, उनसे पत्र-व्यवहार करके देखना चाहिये। सो उनको ५६ ए.पी.ओ. के द्वारा पत्र भेजा तो तुरन्त उत्तर आया जिसमें लिखा था कि श्रीनगर से ६३ मील पश्चिम उड़ी में हमारी सेना है। आप लोग उड़ी तक पहुंच जायें, आगे मैं मिल लूंगा। इस पत्र के अनुसार हम उड़ी पहुंचकर सैनिकक्षेत्र में गये और वहां एक अधिकारी से कहा कि सूबेदार नौरंगसिंह यादव से मिलना है, मैं उनका भाई हूं। उन्होंने कहा—ठीक है, उन्हें सूचना देदी जाएगी, परन्तु आप यहां तक कैसे पहुंचे। इस पर मैंने भाई साहब का पत्र दिखा दिया, पत्र पढकर लेफ्टिनेंट कर्नल सम्पूर्णसिंह के मुख पर चिन्ता की रेखायें उभर आईं और वे गम्भीर होगये। पुनरपि उन्होंने भाई को टेलीफोन से सूचना दी। उस समय भाई साहब आठ-नौ किलोमीटर की चढाई पर रुस्तम नामक पहाड़ी पर नियुक्त थे। सूचना मिलते ही शीघ्रातिशीघ्र आकर हम से मिले और रहन-सहन का पूरा प्रबन्ध कर दिया। वहां पांच दिन रहे। इन दिनों आचार्य जी ने सैनिकों को वीरता तथा धर्म के उपदेश देकर उत्साहित किया, जिससे उन पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा।

लेफ्टिनेण्ट कर्नल सम्पूर्णसिंह की चिन्ता का यह कारण था कि सैनिकों को अपने निवास का पता गुप्त रखना होता है। भाई ने पत्र में अपने स्थान का पूरा पता इसलिए लिख दिया था कि हमें पहुंचने में कठिनाई न हो। पुनरपि यह भय था कि यदि यह पत्र शत्रु के हाथ लग जाता तो वे इसका लाभ उठाकर भारतीय सेना की हानि कर सकते थे। अस्तु! इस प्रकरण को भाई जी ने जैसे-तैसे करके समाप्त कर दिया होगा।

५ दिन पश्चात् जब हम श्रीनगर लौटने के लिए बस में बैठे तो भाई ने एक व्यक्ति की ओर संकेत करके बताया कि यह गुप्तचर है और आपके पीछे श्रीनगर से ही लगा हुआ है, परन्तु आप लोग चिन्ता न करें। हम श्रीनगर लौट आये और वहां से चिनार की लकड़ी से बनी अनेक कलाकृतियां, पेपर-मसी का सामान, सर्दी से बचने के लिए आग डालकर छाती के पास रखने की मिट्टी की एक कांगड़ी और कश्मीरी लोई खरीदकर कश्मीरी कला से बनी दो बड़ी पेटियों में भरकर लाये।

आर्यसमाज हजूरीबाग से आचार्य जी ने योगानन्द जी के नाम एक पत्र भेजा था, वह पत्र इसी ग्रन्थ में छपा है।

सम्मानों से कहीं अधिक था तथापि शासन की ओर से इस कार्य को मान्यता मिल जाना आपके लिये नहीं, राष्ट्र के लिये गौरव की बात है।

साहित्य-सृजन

साहित्य और जीवन दोनों 'सत्' हैं। जब-जब भौतिक सत्य और चेतना सत्य का संयोग हुआ तब-तब साहित्य का सृजन हुआ है। मम्मट साहित्य के आनन्द को ब्रह्मानन्दरस सहोदर कहता है। साहित्य शब्द के भावों में बहकर समुद्र में जाना और क्षाररूप में परिवर्तित होजाना असत्य तो नहीं किन्तु भाप बनकर बरसना क्या वाल्मीकि को ही अभिप्रेत था? इसलिये कहा है—

''वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान।''

आह! दीन-दु:खियों के कष्ट से या परपीड़ा के परिताप से अथवा समाज के अध:पतन के दु:ख को देखकर प्रकट हुई हो, कोई भिन्नता नहीं है।

साहित्य की स्थिति चेतनसत्य के अनुभव एवं व्यवहार के पश्चात् दृष्ट सत्य को सुरक्षित रखने में होती है। उस सुरक्षित सत्य से ही समाज अनुप्राणित होकर अपना लक्ष्य प्राप्त करता है। यदि 'साहित्य' शब्द को वैश्यों के सदृश वैयाकरणों की तुला पर तोलें तो पायेंगे कि वे भी हमारे उद्देश्य की पूर्ति में सहयोग कर रहे हैं। **सहितस्य भावः साहित्यम्** जिसमें हित की भावना निहित हो। व्यवहार के पश्चात् साहित्य का निर्माण होता है अतएव उसमें परोपकार की भावना विद्यमान होनी ही चाहिये। जिससे कष्ट का निवारण होगया हो वह हित है। कष्ट, दु:ख, पीड़ा आदि का तिरोहित कर देना जिस साहित्य का उद्देश्य हो वह ही साहित्य कहलता है।

साहित्य की अबाधगति मनुष्यों को बांध लेती है। ऐसे बन्धन में कौन नहीं बन्धना चाहता जिस के बन्धन में तो सुख मिले ही, बन्धनोपरान्त भी सुख मिलता रहे। प्रगति को गति मिले, विचार-तरंगें अपने किनारों को तोड़ डालें, नये आयाम स्थापित हों और बार-बार पुनरीक्षण में नई ईक्षणशक्ति को जन्म मिले। ऐसा अमर साहित्य युगों तक युगान्तरकारी कहकर स्मरण किया जाता है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के द्वारा आर्यसमाज नामक समाज-सुधारक संस्था ने ईसा की १९वीं शताब्दी में जन्म लेकर पराधीन भारत में नये रक्त का संचार

राजकीय-सम्मान

स्वामी ओमानन्द जी ने संस्कृतभाषा की महती सेवा की थी। आपके दोनों गुरुकुलों—गुरुकुल झज्जर तथा कन्या गुरुकुल नरेला से संस्कृत के सैकड़ों विद्वान् स्नातक-स्नातिकायें बनकर देश के विभिन्नभागों में संस्कृत तथा राष्ट्रभाषा का प्रचार प्रसार कर रहे हैं। स्वामी जी ने इन दोनों संस्थाओं के प्रकाशनविभागों की ओर से महाभाष्य, काशिका, छन्द:शास्त्र, निरुक्त, दर्शन आदि दर्जनों संस्कृत के बड़े ग्रन्थों का प्रकाशन करवाया था। पुरातत्त्व तथा इतिहास के क्षेत्र में तो आपकी सेवायें बेजोड़ थीं। आपकी इन्हीं सेवाओं के कारण हरयाणा सरकार के भाषा विभाग की ओर से ३१ मार्च १९६८ ई० में चण्डीगढ़ में एक भव्यसमारोह में आपका सम्मान किया था। हरयाणा सरकार की ओर से दिया गया यह पहला राजकीय सम्मान था। आपके साथ इस वर्ष हिन्दी के लिये पं० मौलीचन्द्र शर्मा तथा उर्दू के लिये श्री ख्वाजा अहमद अब्बास को राजकीय सम्मान मिला था। समारोह में आपको हरयाणा के राज्यपाल श्री बी०एन० चक्रवर्ती ने एक प्रशस्तिपत्र, एक शाल तथा पांच सौ रुपये भेंट किये थे।

तत्पश्चात् दिल्ली अलीपुर के श्रद्धानन्द कालिज में चौ० हीरासिंह जी की अध्यक्षता में २८ अगस्त १९६९ को एक भव्य स्वागत समारोह का आयोजन हुआ जिसमें दिल्ली के तत्कालीन उपराज्यपाल श्री आदित्यनाथ झा ने इनके संस्कृत पाण्डित्य का सम्मान करने हेतु एक ताम्रपत्र भेंट कर दिल्ली राज्य की ओर से आचार्य जी का सम्मान किया था। इस अवसर पर उप-राज्यपाल महोदय ने आचार्य जी की प्रशस्ति में स्वयं बनाया हुआ श्लोक सुनाया था।

इस प्रकार हरयाणा और दिल्ली राज्यों की ओर से स्वामी जी की सेवाओं का आदर किया गया।

राष्ट्रीय-पण्डित

इससे पूर्व आचार्य जी की सेवाओं का मूल्यांकन करते हुये भारत सरकार के शिक्षा-मंत्रालय की संस्तुति पर भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति महामहिम श्री वाराहगिरि वेंकटगिरि ने आचार्य जी को भारत के स्वतंत्रता दिवस (१५ अगस्त १९६९) पर राष्ट्रीय-पण्डित की उपाधि से विभूषित किया था। आपको यह अलंकरण राष्ट्रपति भवन में एक भव्य स्वागत समारोह में दिया गया और राष्ट्र ने आपकी सेवाओं को राजकीय सत्कार प्रदान किया। यद्यपि आपका कार्य इन

३. इतिहासपरक ग्रन्थ

१. भारत के प्राचीन मुद्रांक। २. भारत के प्राचीन लक्षणस्थान। ३. हरयाणा का संक्षिप्त इतिहास। ४. हरयाण के वीर यौधेय। ५. वीरभूमि हरयाणा। ६. हरयाणा की संस्कृति। ७. भारत के प्राचीन शस्त्रास्त्र। ८. वीर हेमू। ९. शेरशाह सूरी। १०. आर्यसमाज के बलिदान। ११. महारानी सीता। १२. राजा नाहरसिंह। १३. राष्ट्रीय पक्षी मोर।

४. यात्रा संस्मरण

१. कालापानी यात्रा। २. रूस में १५ दिन। ३. जापान यात्रा। ४. मेरी विदेश यात्रा। ५. नैरोबी यात्रा। ६. विदेश-यात्रा 'मैंने इंग्लैण्ड में क्या देखा'। ७. यूरोप-यात्रा।

स्वामी जी द्वारा प्रकाशित विशिष्ट साहित्य

जहां स्वामी ने अपना लिखा हुआ साहित्य प्रकाशित किया है, वहां 'हरयाणा साहित्य संस्थान' प्रकाशन विभाग की स्थापना करके सैंकड़ों अन्य पुस्तकों का प्रकाशन भी किया है। कुछ प्रमुख ग्रन्थ इस प्रकार हैं—

१. चारों वेद मूल। २. सामपदसंहिता। ३. उपनिषत्समुच्चय। ४. षड्दर्शन आर्यभाष्य (८ जिल्द)। ५. निरुक्तभाष्य (२ जिल्द)। ३. छन्दःशास्त्रम्। ७. काव्यालंकारसूत्राणि। ८. अष्टाध्यायी सूत्रपाठ। ९. व्याकरणमहाभाष्य (५ जिल्द)। १०. काशिका। ११. लिंगानुशासनवृत्ति। १२. फिट्सूत्रप्रदीप। १३. सत्यार्थप्रकाश। १४. संस्कारविधि। १५. कुलियात आर्य मुसाफिर। १६. कारिकाप्रकाश। १७. छान्दोग्योपनिषद्। १८. बृहदारण्यकोपनिषद्। १९. धर्मनिर्णय (४ भाग)। २०. मन की लहर। २१. महर्षि दयानन्द के सिद्धान्त आदि।

१. आचार्य मेधाव्रत कविरत्न द्वारा विरचित संस्कृत साहित्य।
२. पण्डित बस्तीरामकृत भजन-साहित्य।
३. स्वामी वेदानन्द वेदवागीशकृत रचनायें।
४. वैद्य बलवन्तसिंहविरचित चिकित्सा-साहित्य।
५. मुनि देवराज विद्यावाचस्पतिकृत पुस्तकें।

इस प्रकाशन संस्था का कार्य करते हुये अन्य प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित साहित्य का भी बहुत प्रचार प्रसार किया है। इनमें कुछ के नाम इस प्रकार हैं—

किया। आर्यसमाज तथा स्वामी दयानन्द के द्वारा शिक्षा और साहित्य के रूप में मानवसमाज की जो सेवा कीगई है, वह इतिहास का एक स्वर्णिम और क्रान्तिकारी अध्याय है किन्तु उस स्वर्णिम अध्याय को शिक्षा के क्षेत्र में स्वार्थ के राजनैतिक धुयें ने काला कर दिया और साहित्यसेवा की भावना को क्षुद्र, संकीर्ण भावों के बाजार में नीलामी में भी बोली न पाकर अनाथ होना पड़ा। इसी अनाथ साहित्यसेवा के यत्किंचित् उत्तराधिकारी बिना बोली दिये ही परोपकारभावना से प्रेरित स्वामी ओमानन्द सरस्वती हैं। व्यापारिक लाभ के बिना साहित्यप्रकाशन, सामान्य जनता के लिये साहित्य का सृजन एवं अध्ययन अध्यापन की आर्ष-प्रणाली को इस अर्थप्रधान युग में भी अपनाकर साहित्य की जो सुरक्षा स्वामी जी ने की वह अन्यत्र दुर्लभ है। भौतिकरूप में साहित्य का भी कार्य उक्त तीनों प्रकारों के साथ-साथ किया है। कभी अर्थ-लाभ की दृष्टि से प्रकाशनमात्र एवं कभी परोपकार भावना से इनका समन्वय अपने जीवन में करके एक अनुपम साहित्य-सेवा का रूप हमारे सामने रक्खा है। जिसके सामने हम सबका सिर श्रद्धावनत है और रहेगा।

जहां श्री स्वामी ओमानन्द जी भाषण और उपदेश द्वारा जन-सुधार और ज़नजागृति करते रहे हैं वहां प्रचार को स्थायित्व प्रदान करने के लिये अपने ज्ञान को लिपिबद्ध करके नये साहित्य का सृजन, प्रकाशन और प्रसारण भी करते रहे। इनके द्वारा विरचित साहित्य में चार प्रकार के ग्रन्थ हैं।

१. कुरीतिनिवारण और समाज-सुधारसम्बन्धी ग्रन्थ

१. बालविवाह से हानियां। २. पापों की जड़ शराब। ३. शराब से सर्वनाश। ४. हमारा शत्रु तम्बाकू। ५. मांस मनुष्य का भोजन नहीं। ६. ब्रह्मचर्यामृत। ७. ब्रह्मचर्य के साधन (१-११ भाग)। ८. व्यायाम का महत्त्व। ९. रामराज्य कैसे हो।

२. आयुर्वेदविषयक ग्रन्थ

१. भारतीय जड़ी-बूटी आक। २. नीम। ३. पीपल। ४. बड़। ५. सिरस। ६. घरेलू औषध हल्दी। ७. लवण। ८. मिर्च। ९. अदरक। १०. सोंठ। ११. गोदुग्ध अमृत है। १२. शाकभाजी द्वारा चिकित्सा। १३. सर्वविषचिकित्सा। १४. विच्छूविष-चिकित्सा। १५. नेत्ररक्षा। १६. स्वप्नदोष चिकित्सा। १७. श्लीपद चिकित्सा। १८. गोघृत अमृत है। १९. कण्टकारी, २०. कमल, २१. स्वर्णक्षीरी, २२. मधु।

१. सार्वदेशिक सभा दिल्ली। २. गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली। ३. राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली। ४. दयानन्द संस्थान दिल्ली। ५. आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली। ६. द्राक्षादेवी प्यारेलाल परोपकारी ट्रस्ट दिल्ली। ७. परोपकारिणी सभा अजमेर। ८. आर्यसाहित्य मण्डल अजमेर। ९. विरजानन्द शोध संस्थान गाजियाबाद। १०. समर्पणानन्द शोध संस्थान दिल्ली। ११. आचार्य प्रकाशन, दयानन्दमठ रोहतक। १२. रामलाल कपूर ट्रस्ट रेवली (सोनीपत)। १३. आर्यसमाज चौक प्रयाग। १४. चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी। १५. तारा पब्लिकेशंस वाराणसी। १६. सत्य प्रकाशन मथुरा। १७. गुरुकुल प्रभात आश्रम टीकरी (मेरठ)। १८. गुरुकुल कांगड़ी हरद्वार। १९. उपदेशक विद्यालय यमुनानगर।

इनसे अतिरिक्त जयपुर, जोधपुर, आगरा आदि के अनेक प्रकाशकों से भी विशेष साहित्य का आदान प्रदान चलता रहता था।

साहित्य की सुरक्षा

शिक्षा के द्वारा साहित्य की सुरक्षा के रूप में श्री स्वामी जी द्वारा किया गया कार्य आश्चर्यजनक परिणामों का देनेवाला है। गुरुकुल झज्जर और कन्या गुरुकुल नरेला के सैकड़ों स्नातक स्नातिकाओं ने अपने अध्ययन अध्यापन के द्वारा नवचेतना पाकर भावी समाज के लिये जो मार्ग प्रशस्त किया है वह केवल साहित्य की गतिशीलता को ही नहीं बनाये रखेगा अपितु उसे और भी विस्तृत एवं सुरक्षित करेगा।

श्री स्वामी जी ने प्राचीन संस्कृत और उड़िया साहित्य की ८०० हस्तलिखित पुस्तकों का संग्रह करके उनकी जो भौतिक सुरक्षा की थी, वह भी साहित्य के प्रति उनकी गहरी निष्ठा एवं श्रद्धा की परिचायिका थी। साहित्य की गरिमा को दृष्टिगत रखकर ही स्वामी जी ने सन् १९८३ में सत्यार्थप्रकाश जैसे अद्‌भुत ग्रन्थ को ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण कराने का गुरुतर कार्य किया। ४२७ पृष्ठों में पूर्ण हुए इस ग्रन्थ के प्रत्येक पृष्ठ का भार २.५० किलो है। इसी प्रकार ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका भी १२० पृष्ठ ताम्रपत्रों पर खोदे जाचुके थे, वह कार्य अधूरा रह गया। यह भी भावी-पीढ़ी के लिये साहित्य को दीर्घकाल तक सुरक्षित और चिरस्थायी रखने का अर्थसाध्य एक विशिष्ट साधन है।